UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180542

UNIVERSAL
LIBRARY

H 81.01
S53B
H 2921
OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

28 DEC 1988

GUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.01 Accession No. H 2921

Author S53B

Title

book should be returned on or before the date last marked below

8 DEC 1988 75

JAN 1989 53

EB 1989 53

MANA UNIVERSITY

मध्यमा परीक्षोपयोगी पुष्पः—८

ब्रजमाधुरीसार

की

टीका

लेखक
श्री शिवप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य

प्रकाशक
रीगल बुक डिपो, नई सड़क, देहली।

प्रथम संस्करण सन् १९५१ मूल्य ६)

प्रकाशक
श्री रामचन्द्र गुप्त
व्यवस्थापक
रीगल बुकडिपो
नई सड़क, देहली।

सूचना

जो कवि मध्यमा (बिशारद) सं० २००७, २००८, २००९ के लिए पाठ्य क्रम में स्वीकृत है, उन्ही कवि के कविताओं के अर्थ भावार्थ, इत्यादि दिए गए हैं।

प्रकाशक

मुद्रक—
आला प्रेस,
चांदनी चौक, देहली

दो शब्द

प्रस्तुत टीका हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा हिन्दी परीक्षार्थियों के सहायता रूप में लिखी गई है। पाठ्य पुस्तक की भाषा दुरुहता होने के कारण अधिकतर विद्यार्थी ब्रजभाषा के कठिन शब्दों का अर्थ समझ नहीं पाते थे। विद्यार्थियों की सभी कठिनाइयों को दृष्टि-कोण में रखते हुए प्रस्तुत टीका का निर्माण हुआ है।

मैंने अपने अध्ययन तथा अध्यापन के अनुभव से उस टीका को परीक्षोपयोगी बनाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी है। पद्यों के शब्दार्थ, भावार्थ, सरलार्थ तथा जहां तहां टिप्पणि आवश्यक समझी गई है वहां दे दी गई है।

मुझे आशा ही नहीं परन्तु पूर्ण निश्चय है कि विद्यार्थी गण इस पुस्तक से लाभवंत होकर कृतार्थ करेंगे।

विनीत
लेखक

विषय सूची

कवि				पृष्ठ
सूरदास	...	...	...	१
नंददास	...	...	...	३२
हित्तहरिवंस	...	...	...	६२
आनन्दघन	...	...	...	७३
नागरीदास	...	...	...	८७
भगवतरसिक	...	...	...	११३
ललितकिशोरी	...	...	...	१४२
देव	...	...	...	१५७
भारतेन्दुहरिश्चन्द्र	...	...	...	१८७

रसखानि - २२१
बिहारी २५१
रत्नाकर २९१

ब्रज माधुरीसार की टीका।

सूरदास

चरणकमल.....तिहिपाई ॥ १ ॥

शब्दार्थ = चरणकमल = कमल के समान चरण, बन्दौं=नमस्कार करना, राई = राजा, पंगु = लंगड़ा मूक = गूंगा, रंक = गरीब, छत्र = राज छत्र, कृपामय = दयालु, गिरि = पर्वत।

सरलार्थ = सूरदास जी कहते हैं कि मैं महाराज श्रीकृष्ण जी के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ। जिसकी कृपा से लंगड़ा पर्वत लांघ सकता है, अन्धा सब कुछ देख सकता है, बहिरा सब सुन सकता है, गूंगा बोल सकता है, गरीब सिरपर छत्र धर कर चल सकता है, अर्थात् जिन की कृपा से गरीब अमीर बन जाता है, उन दयालु स्वामी के चरणों को नमस्कार करता हूँ।

मेरी तो गति.....द्वार पर-यौ गाऊ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—गति = लाज, अन्तहि=पास, तिहारो = तुम्हारा, कामधेनू मनचाहा फल देने वाला एक गाय, अजा = बकरी, हय = घोड़ा, गयन्द = हाथी, गर = गला, पाटंबर = रेशमी या पीत, अम्बर = वस्त्र, अम्बा = आम सेवर = शम्बल वृक्ष का फल, खार = खारा, कत = क्यों, कूर = क्रूर, आंधरो = अन्धा।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं। हे नाथ! तुम ही तो मेरी लाज हो, फिर तुम्हारे पास भी मैं क्यों दुःख पाऊं। तुम्हारा कहलाकर अब मैं किसी का कहलाऊँ कामधेनू को छोड़कर बकरी कैसे दुहाऊँ। घोड़े हाथी से उतर कर गधे पर चढकर कैसे दौड़ूँ। सोने और हीरे को छोड़ गले में काँच कैसे बांधू, कुंकुम का तिलक मिटाकर मुखपर कालिख कैसे लगाऊँ। रेशमी वस्त्र त्याग कर गूदरी कैसे पहनूं। आम के मधुर फल को छोड़

शम्बल के फल के लिए कैसे दौड़ू । समुद्र की लहरों को छोड़कर खारे पानी में कैसे नहाऊं। स्वामी ! मैं दुष्ट एवं अन्धा तुम्हारे द्वार पर पड़ा हुआ तुम्हारा गुणगान कर रहा हूँ। अर्थात् हे भगवान ! तुम ही मेरा भरोसा हो। तुम्हारे बिना संसार की सभी चीजें तुच्छ हैं।

मेरो मन अनत.....छोरी कौन दुहावै ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अनत = दूसरी जगह, सचु = सुख, कमलनैन = श्रीकृष्ण, महात म = महात्म्य, कूप = कुआ, खनावै = खोदना, मधुकर = भ्रमर, अम्बुज रस = कमलों का रस, करील = कैर = टींट, छेरी = बकरी।

स्पष्टार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि मेरा मन श्रीकृष्ण जी को छोड़कर और कहाँ सुख पा सकता है। जैसे जहाज का पक्षी उड़कर फिर जहाज परही आकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी इधर उधर घूम फिर कर भगवान के पास आकर ही सुख प्राप्त करता है जो श्रीकृष्ण के महात्म्य को छोड़कर और किसी देवता का आराधन करता है, वह दुर्बुद्धि, गंगा के परम पवित्र जल को छोड़ के प्यासे के कुआ खोदने के समान है, अर्थात जिस प्रकार गंगा के जल को छोड़ प्यास बुझाने के लिये कुआ खोदना मूर्खता है, वैसे ही श्रीकृष्ण जी को छोड़ अन्य देवाराधन मूर्खता है। जिन भवरों ने कमलों का रसास्वादन किया हो, भला उन्हें करील फल कैसे भाने लगे। कामधेनू के समान मन चाहा फल देने वाले प्रभु को छोड़ बकरी कौन दूहता है।

आजु जो.....जिवत न पीठ दिखाऊं॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गहाऊं = पकड़वाऊँ, शान्तनु = कुरूवंशी एक प्रतापी राजा, स्यन्दन = रथ, महारथ = अर्जुन, कपिध्वज = अर्जुन के रथ की ध्वजा, सपथ = प्रतिज्ञा, सरिता = नदी, रन विजय-सखा = श्रीकृष्ण।

सरलार्थ = भीष्म पितामह कहते हैं कि यदि आज मैंने भगवान को शस्त्र न पकड़वाया तो गंगा माता को लज्जित करूं तथा शान्तनु, पुत्र न कहलाऊं। मैं कपिध्वजा के साथ महारथी अर्जुन के रथ को तोड़ डालू यदि यह प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकूं तो भगवान मुझे क्षत्रियों की गति न दें। मैं पाण्डवों की सेना के सामने दौड़ कर खून की नदियाँ बहा दूँ। सूरदास

जी लिखते हैं कि भीष्म पितामह कहते कि मैं श्रीकृष्ण को जीते जा पीठ न दिखाऊँगा। अर्थात् श्रीकृष्ण जी के सामने से हार मान कर न भागूंगा।

विशेष=यह प्रसंग उस समय का है, जब कि भीष्मपितामह ने श्रीकृष्ण के महाभारत के युद्ध में हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा को भंग करने का प्रण किया।

हम भक्तन के.....चक्र सुदर्शन जारौ ॥ ५॥

शब्दार्थ—परि तिग्या=प्रतिज्ञा, टारे=टालना, पयादे=पैदल, भीर=कष्ठ, सुदर्शन चक्र=भगवान का एक हथियार।

सरलार्थ-श्रीकृष्ण जी कहते हैं अर्जुन! सुनो, मैं भक्तों का हूँ और भक्तों मेरे हैं, यह मेरी प्रतिज्ञा का व्रत टालने से नहीं टल सकता। मैं भक्त के काम के लिये हृदय में लाज रख पैदल ही दौड़ पड़ता हूँ। जहाँ जहाँ भक्तों पर कष्ट आता है वहां दौड़कर उन्हें बचाता हूँ। जो मेरे भक्तों से वैर करता है। वह मेरा ही शत्रु है। विचार कर देख! भक्त हित के लिये ही तो मैं तुम्हारा रथ हाँक रहा हूँ। अतः मेरे भक्त की जीत ही मेरी जीत है, तथा भक्त की हार मेरी हार है। हे अर्जुन! सुनो, भक्त विरोधियों के लिये तो मैं अपना सुदर्शनचक्र भी चलता हूँ।

वा पट पीत.....निकट भये हैं अति ॥ ६॥

शब्दार्थ-पट पीत=पीताम्बर, कर=हाथ, धावनि=दौड़ना, वानि=वेश, वानः, रूप, आतुर=व्याकुल, कच=बाल, सैल=पर्वत, प्रन=प्राण, कान=मर्यादा, आनि=आकर

सलरलार्थ—भगवान कृष्ण के उस पीताम्बर का फहराना, हाथ में चक्र धारण कर के पैरों से दौड़ना मुझे भूलता नहीं। बालों में मिट्टी लिपटाये, व्याकुल होकर रथ से उतर कर आते हुये भगवान ऐसे दिखाई दे रहे हैं। मानों मस्त हाथी समझ कोई शेर पर्वत से निकल कर आ रहा हो। जिस भगवान ने वेदों की मर्यादा को भंग कर के मेरे प्रण को रखा है, सूरदास कहते वहीं भगवान श्रीकृष्ण आकर हमारे सहायक हों

मना रे.....रे सठ 'सूर' गवाँर ॥ ७ ॥

शब्दार्थ–माधव = श्रीकृष्ण, मोद=प्रसन्नता, कुसमन=फूल। परिमिति = सीमा, अन्त=अनत,वारि = पानि, प्रीत = प्रेम, कुरंग = हिरण, राच्यों = अनुरक्त, = पछमनो = पीछे, सर = बाण, उर = छाती, त्रास = डर, अनु दिन = प्रतिदिन, संघाती = साथी, संभारत = सेवा करना, खग = पक्षी, मीन = मछली, लौ = समान, सीधै = ढूढ़े, ठौर = स्थान, पावन = पवित्र, संग = सहायक, सठ = दुष्ट, रचिगण = तीन, सत्व, रंज, तम, तत्व-विधान = पाँच भूतों की रचना अग्नि पृथ्वी वायु जल, आकाश पांच भूत कहलाते हैं, जिन से मानव शरीर की रचना होती है, चिकुर = बाल, असन = भोजन, औसर = समय, समय पर, अजस = अपयश, बीच = रक्षा, कहवाँ = कहाँ, मुओ = भरा, कुमीच=बुरी मौत, अंक = प्रकार

सरलार्थ–सूरदास जी कहते हैं कि हे मन, तू भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रेम कर काम क्रोध लोभ मद, एवं मोह, आदि सभी विपरीत बातें छोड़ दे। भौंरा भोगो के वश वन वन घूम कर आनन्द मनाता है, दुःख नहीं मानता सब फूलों पर बैठकर रस लेता है और इसीलिये कमल में आप बन्ध जाता है। प्रियमत के प्रेम की सीमा को सुनकर चातक अपने प्रियत्तम ओर ताकता रहता है, और वन की आशा से सब कष्ट झेलता है कहीं और से जल नहीं लेता। कमल के काम को देखों ! कि उसने जलसे प्रेम किया है वह प्राण दे देता है पर उससे प्रेम नहीं त्यागता और अपने प्रेमी जल के साथ ही सूख जाता है ।

मछली अपने प्रेमी जल का वियोग नहीं सह सकती, पर जल उसकी बात तक नहीं पूछता अतः तू उस के प्रेम की दशा को देख कि फिर भी उसके हृदय से जल के प्रति प्रेम जरा भी नहीं घटता।

हिरण के प्रेम को यादकर जो राग सुन कर मोहित हो जाता है, फिर वह पीछे कदम नहीं रखता भले ही अपने हृदय पर शिकारी का बाण सहता है। शिकारी का मधुर राग सुनकर ही हिरण आता है।

सती नारी के जलने को देख, जो अपने प्रियतम के प्रेत रूप शरीरके साथ जल जाती है। फिर भी चिता उसके प्रेम को फीका नहीं कर सकती

क्योंकि वह प्रिय के रंग में रंगी होती है।

लोक और वेद जिससे रिक्त हैं, नयन जिसे देखकर डरते हैं वह चोर जारी के कार्य हृदय से कभी नहीं त्यागता वैसे ही उस का सर्वस्व नाश क्यों न हो जाय। इस लिये कि वह चोरों से प्यार करता है।

साधु-समाज रूपी रत्न अगर तूने पा भी लिया है, और प्रति दिन प्रेम-कथा भी चाहे सुनी हो, पर यदि तेरे हृदय में लाज नहीं उत्पन्न हुई तो सब व्यर्थ है।

जो हमारे जीवन और प्राणों का सदा साथी है, उसी ईश्वर भगवान को, हे मन! तू ने सहज ही भुला दिया है।

हे महामूर्ख! एवं अज्ञान बुद्धि मन! जिस प्रभु की वेद पुराण स्मृति नर एवं देवता सभी सेवा करते हैं, तू भी उसी भगवान की क्यों नहीं सेवा करता। अर्थात् मन! तुझे भी उसी भगवान की सेवा करनी चाहिये।

सूरदास जी कहते हैं मैं और कहां तक कहूं। मैंने तो जल थल में खग मृग मछली पतंग आदि सब जगह उसको ढूंढ लिया है, पर वे प्रभु कहीं पर भी नहीं मिले।

सूरदास जी कहते हैं कि परिपूर्ण पवित्र एवं प्राणों के नाथ अत्यन्त दयालु और कृपालु भगवान ही हमारे सखा हैं, और उन्हीं के हाथ में हमारा जीवन है।

हे दुष्ट! तेरे स्वामी भगवान ने तेरा साथ कभी नहीं छोड़ा है, वह भगवान तेरा हमेशा इसी प्रकार पालन पोषण करते रहते हैं, जिस प्रकार तम्बोली पान का।

जिस ने दुःख से निकाल कर तुझे पयपान कराया, और तीन गुणों से युक्त पांच तत्वों की रचना द्वारा जड़ से चेतन बनाया, उसी भगवान को हे मन! तू भूल बैठा है। अर्थात् जिस भगवान ने तुझे यह मानव शरीर दिया है उसे ही तू ने भुलादिया।

जिस भगवान ने समय समय पर पैर, बाल, हाथ, नाखून, आंख नाक और कान तथा भोजन वस्त्र आदि दिये हैं और रुचि के अनुसार माता पिता तथा बन्धु दिये हैं; उसी को तू ने क्यों भुला दिया?

मृत्यु ने जाना तथा सारे संसार से सुना कि तू संसार में कितना अपार अपयश कमा रहा है, तब तेरी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है और अनबूझे मार २ बाहर निकाल देते हैं।

हे दुर्बुद्धि ! कौन जानता है कि तू कहां और किस बुरी मौत से मरे, नीच ! भगवान को भूल कर क्या सुख चाहता है ?

सूरदास जी कहते हैं कि हे दुष्ट मन ! यदि तेरे हृदय में तनिक भी लज्जा नहीं तो सौ बार कहके कोई लाभ नहीं, गँवार ! तूने तो एक बार भी भगवान को नहीं भजा।

कहाँ लौं .....बलि जाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—कुंवर = कृष्ण, कनक = सोना, कुलहि = टोपी. सुभग = सुन्दर, मघवा = इन्द्र, सुदेश = सुन्दर, बगशइ = फैले हुये, कंज = कमल, अलिअवली = भंवरों की पंक्ति, लुनाइ = लाली, गुरुअसुर = शुक्र. देव-गुरु = वृहस्पति, भौम = मंगल, दूध दन्त दुति = सफेद दांतों की कान्ति, खद्य त = बिजली, खंडित वचन = तोतले वचन, जलपाई = बोलना, घुटुरन = घुटनों के बल।

सरलार्थ—भगवान की सुन्दरता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, कुंवर कृष्ण कनक के आंगन में खेल रहे हैं, जिन्हें देखने से छबि आंखों में छा जाती है। अनेक रंगों की सुन्दर टोपी भगवान के सिरपर सुशोभित हो रही है, मानो ऐसा प्रतीत होता है कि नव बादलों के ऊपर इन्द्र धनुष चमक रहा हो। मोहन के मुख पर फैले हुए अत्यन्त सुन्दर और कोमल बाल मन को हर रहे हैं। उन को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों सुन्दर कमल पर भवरों की पंक्ति विराज मान हो। नीली सुफेद पीली और लाल मणियों के लटकने से भाल की सुन्दरता ऐसी प्रतीत हो रही है मानो शनि शुक्र वृहस्पति तथा भौम एकत्रित हुये हों। अतीव अनूठी भगवान के श्वेत दांतों की कान्ति को तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। कृष्ण जी के किलकारी मार के हंसने में दांत कभी छुप जाते हैं तथा कभीदिखाई देते हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों की माला छिप रही हो या दिखाई दे रही है। कृष्ण जी के तुतले

बचनों से बड़ा सुख प्राप्त होता है। सूरदास जी कहते हैं कि शरीर में मिट्टी लगाये हुये तथा घुटनों के बल चलते हुये श्री श्याम कृष्ण जी पर मैं बलि जाता हूं।

आज गई.....बलि जाइ री ॥६॥

शब्दार्थ—चैन = सुख चैन, मेघ धुनि=मेघों की ध्वनि, सदन = घर, बैकुण्ठ=स्वर्ग लोक, लटकनि=लटें, बाल, गोरोचन = गौ के मस्तक निकला हुआ एक सुगन्धित पदार्थ, विधु = चन्द्रमा, आनन=मुख, सोम = चन्द्रमा, गोती = सम्बन्धी, सीपज=मोती, घना=शेर के नाखून युक्त गले का एक आभूषण, द्वैज ससि = द्वितीया का चांद, ..लराशि = समुद्र, भेइ = भेद, रसना=जीभ।

सरलार्थ—सूरदास वर्णन करते हैं कि कोई गोपी किसी अन्य गोपी से कहती है—हे सखि! आज मैं नन्द जी के घर गई थी। उनके घर के चैन अर्थात सुख का क्या वर्णन करूं? वहां सभी प्रकार ग्वाल बाल गौ दूह रहे थे, और सर्वत्र दधि मथने से ऐसी ध्वनि आ रही थी, मानों बादलों की गम्भीर गर्जना हो। उनके घर की शोभा का तो मैं क्या वर्णन करूं? वह तो वैकुण्ठ लोक से भी अधिक सुशोभित हो रही थी। खेलते हुये कृष्ण ने नववधू जान कर बुला लिया. उनके मुख को देखते ही जादू सा लग जाता है, अतः उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। कृष्ण जी के भौंहों पर बाल लटक रहे हैं तथा पंच रंग की मणि सजी हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो बृहस्पति शुक्र शनि तीनों एक होकर लाल मस्तक पर सुशोभित हो रहा हो। उन्होंने पास ही गोरोचन का तिलक लगाया हुआ है, जो कमल की बिन्दु-सा प्रतीत होता है, जिसे देख कर ऐसा जान पड़ता है मानो प्रिय के जागरण से कमल समझ कर रात्री में भ्रमर जाग पड़ा हो। कृष्ण जी के चन्द्र मुख पर बड़ी २ आंखे शुसोभित हो रही हैं, तथा उनके नाक में मोती लटक रहा है, ऐसा प्रतीत होता है मानो अपना सम्बन्धी समझ कर चन्द्रमा ने उसे अपने साथ ले लिया हो। कृष्ण जी के गले में मोतियों की माला शोभा दे रही थी। और उसी

के बीच में शेर के नाखूनों का आभूषण भी छवि पा रहा था मानो अनुपम तारों सहित दूज का चांद हो। उनके अंग अंग की शोभा का क्या वर्णन करूं ?

उस बाल गोपाल का वर्णन करके तो अनेक कविगण अपनी हंसी करा बैठे हैं। उस अपार शोभा के सिन्धु भगवान कृष्ण जी की तो कोई उपमा ही नहीं उनके रूप को देख कर तो मैं थक गई हूं, फिर भी उनके भेद को न जान पाई हूं। यदि मेरी जीभ होती, तो उनके रूप का खूब वर्णन करती। गोपी कहती है वह यशोदा का पुत्र कृष्णजी चिर जीवें, मैं उन पर वारि जाती हूं।

जसोदा.....जो नन्द सामिनी पावै ॥१०॥

शब्दार्थ—हलरावै = हिलाना, झुलावै=बहलाना, निदरिया = निद्रा अधर = ओंठ, सैन=इशारा, अन्तर=इसी बीच में।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि यशोदा माता हरि को पालने में झुला रही हैं। वह हिलती है तथा जो सो गा गा कर प्यार करके कृष्ण जी का मन बहलाती है। यशोदा जी गाती है—हे नींद ! तू क्यों नहीं आकर मेरे लाल को सुलाती ? तू शीघ्र क्यों नहीं आती ? मेरा लाल तुझे बुला रहा। हरि कभी पलकें बंद कर लेते हैं, और कभी ओंठ फड़ फड़ाते हैं, यशोदा जी हरि को सोया हुआ जान कर और चुप रह कर संकेत करके कहतीं है इसी बीच श्री कृष्ण जी व्याकुल होकर उठ खड़े होते हैं, तब यशोदा जी मधुर गाना गाना प्रारम्भ करती हैं। सूरदास जी कहते हैं जो सुख देवता एवं मुनियों को भी दुर्लभ है, वही सुख नन्द की स्त्री यशोदा जी ने प्राप्त कर लिया है।

छोटी छोटी गुडियां..... वचन वर ॥११॥

शब्दार्थ—गुड़ियां = पैर, कंज दलन = कमलों के पत्तों पर, ठुमक-ठुमक = धीरे २ चलना, मुखर =शब्दायमान, हाटक =सोना, वर = सुन्दर, पियरी =पीली, भीनी =रस भरी, वारिद =बादल, कटुला = माला, मसि विन्दु =कलिख का टीका, असम सर =कामदेव।

सरलार्थ—सूर दास जी कहते हैं कि कृष्ण जी के छोटे २ पैर हैं, और छोटी २ अंगुलियां हैं। उनके नाखूनों की अतीव सुन्दर छटा कमलों के पत्तों पर मोती के समान प्रतीत होती है। वह धीमे २ चल कर सुन्दर आंगन में खेल रहे हैं। उनके पायजेब रुन झुन शब्द के साथ बज रहे हैं। सोने तथा रत्नों से जटिल किंकनी उनकी कमर में विराजमान हैं। उनके कमल जैसे कोमल सुन्दर हाथ में राखी बन्धी है। बालक कृष्ण जी ने पतली तथा अतीव सुन्दर पिछौरी ओढी हुई है। उनके गले में शेर के नाखुनों की बनी माला पड़ी है। उनके बाल लटके हुये हैं। कहीं नजर न लग जाय, इसलिये माथे पर लगाई गई कालिख की बिन्दी मुनियों के मन को हरती है। कृष्ण जी की आंखें काजल से शोभायमान हैं। उनकी चितवन हृदय हरने वाली है। उनकी मुख की शोभा पर अनेक कामदेव न्योछावर किये जा सकते हैं। उन श्रीकृष्ण जी को यशोदा जी चुटकियां बजा कर नचाती हैं। तथा प्रसन्न होकर प्रेम से गाती है एवं कृष्ण जी के मन बहलाती हैं। कृष्ण जी किलकारियां मार के जब हंसते हैं तो उनके दो दांत चमक जाते हैं, ऐसे बालक श्री कृष्ण जी के तुतले सुन्दर वचन मेरे मन में बसें।

मैया मोहि.....हौं माता तू पूत ॥१२॥

शब्दार्थ दाऊ=बलराम, खिजायो=चिड़ाना, तातु=पिता, रिस=क्रोध, चकई=चुगली करने वाला, धूत=धूर्त, सौं=सौगंध।

सरलार्थ—कृष्ण जी बलराम जी शिकायत करते हुये माता यशोदा से कहते हैं—हे मा! बल भैया मुझे बहुत चिडाते हैं। और वह मुझे कहता है कि तुझे मोल लिया गया है, तुझे माता यशोदा ने कब पैदा किया है? क्या कहूं? इसी क्रोध के मारे मैं खेलने नहीं जाता। मुझे बलराम बार बार कहता है कि—तुम्हारी माता कौन है तथा पिता कौन? क्योंकि नन्द जी भी गोरे हैं, और यशोदा जी गोरी हैं, फिर तू काले शरीर वाला क्यों है? इस पर सब ग्वाले तालियां मार २ हंसते हैं, और बलराम उन्हें सिखाता है। और तू भी मुझे ही मारना सीखी है, बलराम पर तो जरा भी कभी गुस्सा नहीं करती। कृष्ण जी

के मुख से ये रिस भरी बातें सुन सुन कर यशोदा बड़ी प्रसन्न होती है और कहती है हे कृष्ण ! सुन, बलराम तो बचपन से चुगलखोर तथा धूर्त है। सूरदास जी वर्णन करते हैं, कि माता यशोदा कहती हैं कि बेटा ! मुझे गौ की सौगन्ध है, तू मेरा ही बेटा है एवं मैं ही तेरी माता हूं।

मो देखत जसुमति .....सारंग पाणि ॥१३॥

शब्दार्थ—ढोडा = पुत्र, गाढ़े करि = जोर से, सांटी = डन्डा, वाइ = खोल कर, अखिल = सारा, चकृत = चकित, सारंग-पाणी = विष्णु रूप श्री कृष्ण।

सरलार्थ—एक गोपी यशोदा से कहती है कि हे यशोदा ! अब ही मेरे सामने तेरे पुत्र कृष्ण जी ने मिट्टी खाई है। यह सुन कर यशोदा जी को गुस्सा आ गया और कृष्ण जी की भुजा पकड़ कर ले आई। यशोदा जी ने एक हाथ में जोर से कृष्ण जी की भुजा पकड़कर दूसरे हाथ से डण्डा, और कहा कृष्ण ! शीघ्र मिट्टी उगल नहीं तो अभी तुझे डन्डे से मारती हूं। तब श्री कृष्ण जी माता से कहते हैं, माता ब्रज के सभी ग्वाल बाल तेरे आगे झूठे ही बनावटी बात कहते हैं। यदि तू मेरी बात नहीं मानती तो मैं मुह खोल कर दिखा देता हूं। यह कह कर कृष्ण जी ने अपने मुंह में संपूर्ण ब्रह्माण्ड दिखला दिला। जिस में समुद्र, सुमेरु पर्वत, नदी, बन पर्वत आदि देख कर यशोदा मन में बड़ी चकित हुई, और हैरानी में यशोदा जी को यह भी ज्ञात न रहा कि कब उसके हाथ से डण्डा गिर पड़ा। यशोदा व्याकुल होकर कृष्ण की भुजा को भी छोड़ दिया। सूरदास वर्णन करते हैं, कि यशोदा जी कहने लगी—बेटा ! कृष्ण मैं तुझ पर बलिजाऊ, तू अपना मुंह बंद करले।

चोरी करत कान्ह.....सूरदास बलिजाई ॥१४॥

शब्दार्थ—धरि पाये = पकड़े गये, निशि वासर = दिन रात, अत्याचारी = शरारतीं, रिस = गुस्सा, मुख तन = मुख की तरफ।

सरलार्थ—कोई गोपी कहती है, हे कृष्ण आज तो तुम चोरी करते पकड़े गये हो। दिन रात तुमने मुझे बहुत सताया है, अब तो

हाथ आ गये हो मेरे सभी दूध दहीं को खाकर तू ने बड़ी शरारत कर रखी है। हे लाल! अब तो फन्दे में पड़ गये हो, कहां जावोगे। कृष्ण जी कहते हैं मुझे तेरी सौगंध है कि मैंने जरा भी मक्खन चखा नहीं, सारा का सारा ग्वाले खा गये हैं। यह कह मुखकी तरफ देख कृष्ण जी हंसने लगे, इस पर गोपी का सारा गुस्सा ठण्डा पड़ गया, ग्वालनी ने कृष्ण जी को छाती से लगा लिया। सूरदास जी कहते हैं कि मैं उस कृष्ण जी पर बलि जाता हूं।

देखि सखी .....नेति नेति श्रुति छन्दन ॥१५॥

शब्दार्थ—बने = शृंगार किये हुये, सिखंडी = मोर पंख, अलक = बाल, खंजन = एक विशेष पक्षी. फंदन = जाल, दसन = दांत, कल बदन = धीमी २ आवाज, धरे = बन्द करके रखना, असुर निकन्दन = राक्षसों के नाश करने वाले, नेति नेति = ऐसा नहीं है।

सरलार्थ एक गोपी कहती है हे सखी! देख भगवान वन से शृंगार करके आ रहे हैं। उनके सिर पर मोर के पंखों का मुकुट है। मुख में मुरली, और मस्तक पर चन्दन का तिलक लगा है। उनके सिर पर घुँघराले बाल हैं, चँचल आंखें जिन्हें देखने से अति आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो जाल में बंधे दो खंजन पक्षी, उड़ कर आये हों। उनके ओठ लाल हैं, और जब कृष्ण जी मन्द २ मधुर ध्वनि से गाते हैं तो उनके दांतों की छवि अति सुन्दर प्रतीत होती है ऐसा प्रतीत होता है मानो लाल मणि में मोती बन्द करके रखे हों। भगवान गोप का वेश बनाये गोकुल में गौ चराते हैं। तथा राक्षसों का नाश करने वाले हैं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपी कह रही है मैं उस भगवान का सुयश वर्णन करती हूं जिस की वेद मंत्रों ने नेति नेति शब्द से व्याख्या की है।

मैया, मैं न..... मारत ताहि रिंभाई ॥ १६ ॥

शब्दार्थ = गाई = गौ, सिगरे = सब घिरावत = इकट्ठा करवाना, पत्याहि = विश्वास करना, सौं = सोगन्ध, रिसायत = कुपित होकर, पठवति = भेजना, बहराइ = बहलाना, रिंगाई = चलाकर।

सरलार्थ=श्रीकृष्ण जी अपनी माता यशोदा जी से कहते हैं कि हे माता मैं अब गौ नहीं चराऊंगा। क्योंकि सारे ग्वाल भुझ से ही गौ घिरवाते हैं। यदि तुझे विश्वास नहीं तो अपनी सौ देकर बलराम से पूछ ले। यह सुन कर यशोदा जी गुस्से होकर गोपों को देखती हैं। और कहती हैं कि मैं तो अपने लाल स्याम को मन बहलाने के लिये भेजती हूँ। सूरदास जी कहते हैं पर गोप मेरे छोटे से लाल कृष्ण को पैर चला चलाकर मार देते हैं।

मेरे साँवरे.....देखत 'सूरदास' जन फूल ॥ १७ ॥

शब्दार्थ-अधर=ओंठ, समाधि=योगी की वह दशा जिसमें योगी अपने मनको निरोध कर लेते हैं। सुरवधू=देव स्त्रियाँ, राश=राशि, पायस=जल, चराचर=जड चेतन, बेनु=बंशरी, पाषाण=पत्थर, बछ्वा=वत्स, विटप=वृक्ष, चुचात=चू रहा, समीर=हवा, अभिराम=सुन्दर, दाम=दामिनी, लावण्य=सुन्दरता, काम=कामदेव, फूल=प्रसन्न होता है,

सरलार्थ-सूरदास कहते हैं कि जब स्याम श्रीकृष्ण जी अपने आठों पर रख मधुर बंशरी बजाते हैं तो मुनि एवं सिद्धों की समाधि भी टूट जाती है। जिसे सुनकर देवताओं के विमान भी थक जाते हैं, अर्थात् रुक जाते हैं। देवताओं की वधुयें चित्र लिखित सी हो जाती हैं।

जिसे सुन कर सभी आनन्द की उमंग में भर जाते हैं। जल थल की सभी अचल चीजें हिल जाती है बंशरी के मधुर राग को सुनकर चराचर की दशा ही कुछ विपरीत सी हो जाती है। उसे सुनकर पत्थरों में से झरने वह निकलते हैं गन्धर्व भी उसके गान पर मुग्ध हो ज ते हैं। और उसे सुनकर पक्षी तथा हिरण मौन हो जाते हैं। तथा फल फूल एवं पत्तों आदिके खाने की सुध बुध उन्हें भूल जाती है। गाय भी बंशरी के राग को सुन चकित सी हो जाती है एवं दांतों से तिनका नहीं लेती अर्थात् घास खाना छोड़ देती है। गाय के बच्छों ने दूध पीना छोड़ दिया है, पक्षि मन में धैर्य त्याग बैठे हैं। और उसे सुनकर वृक्ष और बेल चंचल हो गये हैं तथा उनके ये पत्ते फूट आये हैं। जिन बृक्षों के पत्ते चंचल हैं वे पास जाने अति व्याकुल हैं और उनका शरीर अनन्दति

और रोमांचित है और उनकी आँखों से अनुराग चूरहा है। मधुर मुरली को सुन कर चंचल हवा भी थक गई है। नदियों का जल रुक गया है। उसकी ध्वनि सुन कर वृज की स्त्रियाँ पुत्र देह और घर की सुध बुध भूल चलपड़ी हैं। उसे सुन कर तो समीर भी थक गया है और जमना जी का पानी उल्टा वहने लगा है। मन को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण के तन श्याम और आँखे बड़ी बड़ी है। श्रीकृष्ण जी का तन बादल के समान नीला सुन्दर है। उनके पीला वस्त्र नवीन एवं सुन्दर है। नवीन बादलों में चमकने वाली बिजली के समान उनका मुकुट है। और उनकी सुन्दरता करोड़ों काम देवों के समान है। उन्हों ने अपने मनमोहन रूप से कामदेव का अभिमान हर लिया है। मेरे प्यारे नन्दलाल को जिस के साथ वृजबालायें हैं, जमुना के किनारे नये कुञ्जों में देख कर लोग प्रसन्न होते हैं।

माई री.....एहि अनराम ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—भाई= सखी वदति =समझती, पीठ =आसन, चिकुर = बाल, स्थावर =जड़, चर =चेतन, श्री= लक्ष्मी ।

सरलार्थ—सूरदास जी वर्णन करते हैं कि एक गोपी दूसरी से बंशरी का वर्णन करती हुई कहती हैं कि—सखी श्रीकृष्ण जी बंशरी आज अति अभिमान के कारण किसी को कुछ नहीं समझती कृष्ण जी के कमल के समान सुन्दर मुख को देखकर उसे सुख का राज्य मिल गया है। वह कृष्ण जी की छत्रछाया में ढीठ बनकर पीठ मोड़ लेती है और वहाँ सुन्दर सभा में वाल रूपी चवर अतीव सुन्दर प्रतीत होते हैं। और जमना के जलको सुमुद्र में भी नहीं जाने देते अर्थात् वंशरी की मधुर ध्वनि सुन जमना का जल रुक जाता है इस प्रकार यह बंशरी स्वग से देवताओं के विमानों को पृथ्वी पर बुलालेती है। अर्थात् स्वर्ग के देवता भी बंशरी की मधुरता प्राप्ति के हेतु अपने विमानों में बैठ कर भू लोक में आजाते हैं इसने सभी अजेय जड़ चेतन को जीत लिया है। और यह बंशरी वेद की बिधि को मिटाकर अपनी ही नई रीति पर चलती है इस बंशरी के वश में सारे देवता मनुष्य मुनि तथा। नाग

हैं। यहाँ तक ही नहीं, बल्कि भगवान विष्णु ने इसी बंशी के प्रेम के कारण अपनी पत्नी कमला को भुला दिया है।

मुरली तऊ .....अधर सुसीस डुलावती ॥ १६ ॥

शब्दार्थ– ठाडो करि = खड़ा करके, कनौंडे = एहसान मन्द, नारि = गर्दन, पौढि = लेटना, अधर-सज्या = ओंठ रूपी शैय्या, पलुटावती = दबवाती है।

सरलार्थ –एक सखी सखीसे कहती है—हे सखि ! सुना है कि यद्यपि यह बंशरी श्रीकृष्ण जी को अनेक नाच नचाती है, फिर भी यह गोपाल को बड़ी अच्छी लगती है। यह कृष्ण जी को एक पैर पर खड़ा रखती है, और उन पर अपना बड़ा अधिकार जताती है। कृष्ण जी के कोमल अंगों पर एक आज्ञा के समान चढ़ी रहती है, इसी लिये कृष्ण जी की कमर टेढी हुई रहती है। अत्यन्त नम्र चतुर और एहसानमन्द कृष्ण जी की गर्दन को यह बंशरी झुका देती है। और यह बंशी कृष्ण जी के ओठ रूपी शैय्या पर लेट कर हाथों से अपने पैर दबवाती है। भौंहें, नासापुट फड़कते देख हम पर कुपित होती है। तथा कृष्ण जी को प्रसन्न देख क्षण भर में ही उनके ओंठो तथा सिर को हिला देती है।

ब्रजहिं बसे.....आनन्द पुञ्ज बढायो ॥ २० ॥

शब्दार्थ—आपुहिं = अपने स्वरूप को, प्रकृति = माया, पुरुष = परमात्मा, सुख करण = आनन्द प्राप्ति के लिये, अलप = मन्द।

सरलार्थ—सूरदास जी कहता है कि हमने ब्रज में रह कर भ अपने स्वरूप (भगवान) को भूला दिया है। माया और परमात्मा को एक ही समझो। इन केवल बातों में ही भेद हैं। वेद और उपनिषद यह बताते हैं कि जल थल सब में भगवान व्याप्त हैं। आत्मा एक ही है पर सुख के कारण दो तनु बना दिये हैं। उनके सुख को देख कर मन्द मन्द हंस कर आनन्द का समूह बढ़ जाता है।

विशेष—इस पद्य में बताया गया है कि आत्मा और परमात्मा वास्तव में एक ही है पर थोड़ी देर के लिये पृथक् २ हो जाते हैं। इसे ही द्वैतवाद कहते हैं।

करि मन नन्द नन्दन ध्यान.....पलक परन न देत ॥२१॥

शब्दार्थ—नन्द नन्दन = कृष्ण जी, विषय रसपान = भोग विलास, मराल = हंस, राग=सुन्दर शब्द, मलयज= मलयगिरी सम्बन्धी, सुरसरी=गंगा, सरोज=कमल, चलित=चंचल, गंडमंडल = कपोल का स्थान, कच = बाल, सिखि = मोर, श्रीखण्ड = चन्दन, कोदण्ड = धनुष, प्रान पति=श्रीकृष्ण।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि हे मन! श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर। संसार की विषय वासनाओं का त्याग कर के भगवान के शीतल चरण कमलों की सेवा कर। उनके जानु जंघा त्रिभंगी तनी सुन्दर हैं मानो सुन्दर सुनहरी दंड हो। उनकी कमर पर पहनी हुई पीले वस्त्र की कछनी की छवि कमल केसर के समान दिखाई देती है। उनकी किंकिणियों का रव अतीव सुन्दर है। उनकी नाभि के बीच रोमावलि की छटा अति भली है। उनके गले में मोतियों की माला है। तथा छाती पर बनमाला शोभायमान है। ऐसे प्रतीत होता है मानो गंगा के किनारे पर स्याम वर्ण तमाल की लता हो। उनकी भुजायें कमल के समान तथा हाथ पत्तों के समान हैं। वे अपने मुख पर मधुर वंशी रखे हैं। सुगन्धित धूलि उनके मुख चन्द्र पर बड़ी सुशोभित हो रही है। उनके लाल ओंठ और गाल तथा नाक आंखे अतीव सुन्दर हैं। उनके गाल पर कुण्डल हिल रहे हैं, मानो कामदेव नाच रहा हो। उनके बाल घुंघराले हैं, मस्तक पर तिलक, तथा सिर पर मोर के पंखों का मुकुट है। ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव धनुष बाण चढाये हो। उस भगवान की छवि नजरों में समा जाती है, और उस प्राणनाथ भगवान की शोभा को देख कर पल भर भी पलकें नहीं पड़ता अर्थात् टक टकी लगा आंखें उन्हें देखती ही रह जाती है।

लोचन भृंग भये.....मुयि मुयि पैठत ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—भृंग=भौंरा, घनि=घना, वारिज = कमल, हंसान प्रकाश विभास=प्रभात का उजेला।

सरलार्थ—सूरदास जो वर्णन करते हैं एक एक गोपी, अन्य गोपी से कहती है कि हे सखि। मेरी आंखें भौंरा बन गई हैं। उन्होंने लोक

लज्जा रूपी घने बन की लताओं को छोड़ कर स्याम के रूप रस रूपी कमल लोचन पर जाकर बैठ गये हैं। उनके पराग संपुट के पराग के लालच से उनसे जा लिपटी हैं। प्रभात का उजेला देख वहां निकलती है पर फिर वहीं बैठ जाती है। और मेरी ये आंखें उनके कमल रूपी हाथों चरणों पर बैठती फिरती हैं। अर्थात् जिस प्रकार भौंरा कमल पर बैठ कर उसके रस का आस्वादन लेता है, उसी प्रकार मेरी आंखें भी भगवान के स्वरूप के रस का आनन्द लेती हैं, उसे छोड़ती तक नहीं।

नैन भये बोहित.. ...वह छवि महा प्रकाशि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—बोहित=जहाज, लाग लगाव = लालच, ओछे = छोटे, वासन=पात्र-वर्तन, सुखराशि=सुख का समुह।

सरलार्थ—सूरदास जी वर्णन करते हैं कि मेरी आंखें जहाज के काक के समान हो गई हैं। बार बार उड़ कर जाती हैं पर पार नहीं पाती, फिर उसी पर आकर बैठती हैं। अर्थात् जिस प्रकार जहाज का काक उड़ कर फिर उसी पर आकर बैठ जाता है, उसी तरह मेरी आंखें भी यदि एक बार भगवान को छोड़ जाय, फिर उन्हीं को आकर अपनाती हैं। इनकी दशा अब ऐसी हो गई है कि अब वह पश्चाताप कर रही है। मेरे रोकने पर भी वे उठ कर चली जाती हैं, पर कहीं पर भी समुचित स्थान नहीं पातीं। यह समुद्र तो एक छोटे पर्वत के समान है, जिसमें कहां सुख धरा है? सुनो, यह चतुर कहलाते हैं, तथा उनकी छवि अतीव प्रकाशमान है।

रास रस रीति.....अरु नित्य जर देह पाऊं ॥२४॥

शब्दार्थ—रास रस रीति = भगवान की भक्ति का रहस्य, निगम अगम=वेद शास्त्र, भाव = प्रेम, दम्पति=स्त्री पुरुष राधा कृष्ण।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि भगवान की भक्ति का रहस्य वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारी कहां वह बुद्धि, कहां वह मन, कहां वह चित्त जो भ्रम को भुला दे। अर्थात् भ्रम रहित मन हमारा नहीं है। यदि हम वेद शास्त्रों की बातें करते हैं तो यह नहीं मानता, और इसे माने बिना यह मन कभी भगवान क भक्ति का रस प्राप्त

नहीं कर सकता। प्रेम में ही जो उनका जप करता है, वह ही उन्हें प्राप्त करता है, बिन प्रेम के उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रेम में ही उनका वास है। यही अपना मन्त्र ज्ञान तथा ध्यान है, अतः मैं राधा कृष्ण के भजन का गान करता हूं। मैं तो प्रभु से बार २ यही वर मांगता हूं कि मेरी ये दो आंखें बनी रहें, और हमेशा मनुष्य की देह प्राप्त करता रहूं जिससे आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं।

वांसुरी विधि हुँ ते प्रवीन.....याही सों अनुराग॥ २५॥

शब्दार्थ—विधि=ब्रह्मा, वदन=मुख, विभूति=ऐश्वर्य, चतुरानन=ब्रह्मा, थान=स्थान, जुगुल=दोनों, मराल=हंस, आरोहन=चढना, मानस-हंस=मन रूपी हंस, श्री=लक्ष्मी, पदरैन=चरण धूलि, ताग=यज्ञोपवीत।

सरलार्थ—सूरदास जी वंशी की महिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि यह बंशी ब्रह्मा से भी अधिक चतुर है। इसके समान किसे कहें? इसने तो सारे संसार को अपने वस में कर रखा है। ब्रह्मा ने तो चार मुखों से ही उपदेश देकर जड़ चेतन की मर्यादा स्थापित की, पर जब यह अभिमानिनी अपने आठ (छिद्र) मुखों से गर्जती है तो इसके सामने ब्रह्मा की रीति कैसे चल सकती है। ब्रह्मा ने तो एक कमल पर ही स्थान बना कर विपुल ऐश्वर्य प्राप्त किया था, पर यह तो भगवान के दो कमल-करों पर बैठ कर बड़ी अभिमानी हो गई है। ब्रह्मा जी ने तो विष्णु जी के एक बार ही सिखाने पर सब गुण सीख लिये थे, पर इस वंशरी को तो श्रीकृष्ण हर समय ही कुछ सिखाते रहते हैं। ब्रह्मा तो एक ही हंस की पीठ पर बैठ कर अतीव प्रशंसनीय बने, पर इसने तो सभी गोपियों के मन रूपी हंसों को अपनी सवारी बनाया हुआ है। भगवान के हृदय में बसने वाली लक्ष्मी भी जिन श्री कृष्ण जी के चरण कमलों की धूलि चाहती हैं, वह मुरली कृष्ण के मुख को सुख दायक सिंहासन बनाकर उस पर विराजमान है। इसने कृष्ण के अमृत के समान मधुर ओठों का पान करके सारी कुल मर्यादा

नाश कर दी है। शिखा और सूत्र--यज्ञोपवीत किसी को भी यह धारण नहीं करती, पर फिर भी कृष्ण जी का इस में प्रेम है।

जसोदा बार बार ..... दुःखित नन्द की घरनी ॥२६॥

शब्दार्थ—हितु=हित करने वाला, छगन मगन=कृष्ण का बचपन का प्यारा नाम, टेरत टेरत=पुकारते पुकारते।

सरलार्थ—जब कृष्ण जी मथुरा यशोदा जी कहती हैं—यशोदा बार बार कहती हैं कि क्या कोई ब्रज में हमारा उपकारी है, जो कृष्ण को जाने से रोक सके? मेरे प्यारे लाल का वहाँ क्या काम? जो कंस ने उसे मथुरा बुलाया है। अक्रूर जी तो काल रूप बन कर मेरे प्राण लेने के लिए आया है। कंस चाहे मेरी सभी गौओं को हरले, मुझे पकड़ कर कारागार में डाल दे, पर मेरा कमल नयन मेरी आँखों के सामने खेलता रहे, यह सुख मुझसे न छीने। मैं तो दिन रात कृष्ण का मुख देखकर जीती हूं तथा रात को उसे अपनी गोद में लिपटा लेती हूं। यदि दुर्भाग्य-वश कृष्ण के बिछुड़ने पर मैं जी भी गई, तो हँस हँस कर किसे बुलाऊंगी। कमल नयन के गुणों को पुकारते २ मेरे ओंठ तथा वदन कुम्हला जाता है। सूरदास जी कहते हैं कि कहां तक वर्णन करूं। यशोदा जी कृष्ण वियोग से बड़ी दुःखी हैं।

मेरे कुँअर कान्ह.....कौड़ी हूं न लहे ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—वैसे हि=ज्यों का त्यों, नेत=मथानी, गुनि=याद करके, उरहन=उपालम्भ, हो=था।

सरलार्थ—यशोदा जी कहती हैं कि मेरे कुँअर कृष्ण के बिना सब कुछ ज्यों का त्यों रखा रह जायगा। कौन अब प्रातः उठ कर मक्खन लेगा और कौन हाथ से मेरी मथानी पकड़ेगा। यशोदा जी का द्वार अब पुत्र बिना सूना हो गया है, उनके गुणों को याद करके यशोदा बड़ी दुःखी हो रही है। दिन निकलते ही कौन ग्वाले घर नहीं घेरेंगे, और कौन उपालम्भ नहीं देगा। ब्रज में जो आनन्द था, उसे तो मुनि मन से भी प्राप्त नहीं कर सकते। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण के बिना गोकुल की कौड़ी भी कीमत न रहेगी।

प्रीति करि.....नैननि नीर बह्यौ ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—पतंग=एक छोटा सा पक्षी,जो दीपक पर जल कर मर जाता है, अलिसुत = भौंरे का पुत्र, जलसुत = कमल, सारंग=हिरण ।

सरलार्थ—गोपियां उद्धवजी से कहती हैं हे उद्धव ! प्रेम करके किसी ने भी सुख नहीं लिया । देख, पतंग ने दीपक से प्रेम किया तो अपने आप को जला बैठा । भ्रमर ने कमल से प्रेम किया तो वह अपने को बन्धा बैठा—अर्थात् भ्रमर का कमल से प्रेम होने कारण उसकी संपुट में सारी रात बन्द रहता है। हिरण ने गान से प्रेम किया तो अपनी जान देनी पड़ी, अर्थात् व्याध गान के द्वारा ही मुग्ध करके हिरण को मारता है । और हमने जो कृष्ण से प्यार किया, उसका तो कहना ही क्या ? तुम हमारी हालत देख ही रहे हो । सूरदास जी वर्णन करते हैं, कि गोपियां उद्धव से कहती हैं प्रभु के बिना हमारा दुःख दूना हो गया है और हमारी आंखें आँसु बहा रही हैं ।

बहुत दिन .. ..तज्यो सिन्धु करि खारो ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—बासर = दिन, न्यारो=निराला, अनियारो=नुकीला ।

सरलार्थ—हे प्यारे पपीहे ! तुम बहुत दिन तक जीवो । तुम दिन रात नाम लेकर बोलते रहते हो, इसी लिये विरह के ज्वर से तुम्हारा तन काला पड़ गया है । आप दुःखी हो तथा दूसरे के हृदय को दुःखित जान कर तुम ऐसा करते हो, इसी लिये तुम्हारा यह चातक नाम है । देखो, सभी सखियों के हृदय के दुःख को विचारो, जिनके बिछुड़ने का दुःख ही अनोखा है । प्रेम का नुकीला बाण जिसे लगता है उसे ही जान पड़ता है कि दुःख क्या है ? सूरदास जी कहते हैं कि—हम प्रभु रूपी स्वाति बून्द के लिये सिन्धु को खारा समझ त्याग दिया है ।

काहे को पिय.....चन्द्र जरैगो ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—सूल=कष्ट, दावा=आग, पुहुपावलि=पुष्पमाला, निसा-पति=चन्द्रमा ।

सरलार्थ—हे पपीहे ! क्यों पी पी रटता है, ऐसा करने से प्रियतम का प्रेम तेरे प्राणों को हर लेगा । और क्यों व्यर्थ नयनों को भर लाती

हो; क्योंकि इस प्रकार रोने से कष्ट दूर नहीं होंगे। तुम क्यों इतनी लम्बी २ सांस लेती हो, क्योंकि ऐसा करने से शत्रु विरह रूप अग्नि जलायगी। कोयलें सुगन्धित पुष्पमाला आदि के छूने से तुम्हारे हृदय का हार जल जायगा। अपने वदन को गृह में छिपा कर बैठ, नहीं तो लोग चन्द्रमा उदय हुआ समझेंगे। सूरदास जी कहते हैं हे सखि! इन आंखों से चन्द्र को मत देख! नहीं तो यह चन्द्र तुझे जला देगा।

नाथ अनाथन.....ब्रज कीजै ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—बूड़त = डूबना, वारक=एक वार, पतियां=चिट्ठियां।

सरलार्थ—गोपियां उद्धव जी से कहती हैं—हे नाथ! हम निराश्रितों की सुधि लो। गोपियां, ग्वाले, गायें, बछड़े आदि दिन प्रति दिन कमजोर हो रहे हैं। आंखों से जल की धारा तीव्र वेग से बह रही है जिसमें सारे ब्रजवासी बहे जा रहे हैं उन्हें क्यों नहीं बचा लेते हो। हमारी इतनी प्रार्थना सुन लो और एक बार पत्र भेज दो। अपने नौका के समान पार करने वाले चरण कमलों का दर्शन देकर संसार का यश प्राप्त कीजिये। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि एक बार ब्रज में आकर हमारी मिलन आशा को पूर्ण कीजिये?

सीख इन.....गिरिवर धर प्यारे ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—घन=बादल, अरघ स्वास=आह, द्रुम=पेड़।

सरलार्थ—हे! सखि हमारी इन आंखों से तो अब बादल भी हार गये हैं क्योंकि वर्षा तो अपनी ऋतु आने पर ही होती है पर हमारे नयन तो हमेशा बरसते रहते हैं। और सदा दुखी और उदास रहते हैं। हमारी आह रूपी तेज वायु ने न जाने कितने वृक्षों को जला दिया है। हमारे वचन रूपी पक्षी दुख के मारे शरीर में समा गये हैं। कृष्ण को स्मरण कर हमारी आंखें इस प्रकार बरसती हैं मानो काले बादल बरस रहे हों। 'सूरदास' जी कहते हैं कि सारा ब्रज ग्राम डूब रहा है अब इसे कौन सम्हाले। जब कि यहां हमारे प्रियतम कृष्ण नहीं है।

नैना भये.....ते धुनि मारे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सुनियत = सुनते हैं। निनारे = न्यारे, नीई=देख कर।

सरलार्थ—हमारे नयन अब बिलकुल निराश्रित हो गये हैं। हम सुनते हैं कि श्रीकृष्ण जी मथुरा से चले गये हैं। कृष्ण तो जल है और हम मछलियां हैं फिर हम अलग कैसे रह सकते हैं। हम तो चातक हैं और हरि बादल है हम चकोर हैं और कृष्ण चन्द्रमा है। उनके मुख की सुधा जैसी माधुरिता बड़ी ही प्यारी है। हम तो मधुवन में आपके दर्शन की इच्छा से निवास करते हैं। उनका मार्ग देखते २ हमारे नयन हार गये हैं। सूरदास जी कहते हैं कि हमने ऐसी प्रीति की है कि मरने पर भी नहीं मरते हैं।

ब्रज पर बदरा.....लागे राजन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—बदरा=बादल, ग्रीवा = गरदन, पिथवन = कोपलें, तनु = शरीर, परपीरवा = दूसरे की पीड़ा जानने वाला। राजन = शोभित।

सरलार्थ—ब्रज पर बादल गरजने को आ गये। हे सखि सुन कृष्ण ने मधुवन को फौज भेजी है।

चारों तरफ से हमारा शरीर विरह ने घेर रखा है अब कैसे भजन करें। तुम तो कहती थी कि श्रीकृष्ण पर-पीड़ा को जानने वाले हैं और संकट में काम आते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण की महिमा और यश से सारी मथुरा सुशोभित हो गई।

राधा माधव.....नित नई नई ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—राचे= रंगना, रसना = जिह्वा, पठई = भेजना।

सरलार्थ—राधा और माधव का परस्पर मिलन हुआ। राधा कृष्ण और कृष्ण-राधा कीट भृंग के समान मिल कर एक रूप हो गये। माधव तो राधा के रूप बन गये और राधा माधव के रूप में मिल गई। कृष्ण और राधा का यह अमर प्रेम हमारी जिह्वा नहीं कह सकती है। कृष्ण ने हंस कर कहा कि हम में और तुम में कुछ अन्तर नहीं है और राधा को ब्रज भेज दिया। सूरदास जी कहते हैं कि राधा और कृष्ण जी नित ही ब्रज में नई नई क्रीड़ायें करते हैं।

उधो, ब्रज की दशा.....जाहि दूसरो भावै ॥३६॥

शब्दार्थ—जोग कथा = योग की कथा, परमारथ = ज्ञान, परवीण= चतुर, फेन = झाग, निर्गुण = निराकार, बहाऊँ = दूर करूँ ।

सरलार्थ—गोपियां उद्धव से कहती हैं हे उद्धव ! ब्रज की दशा का विचार करो, इसके बाद अपनी इस सिद्धि और योग की कथा का विस्तार करना । जिसके लिये तुम्हें माधव ने भेजा है, उस का जरा तुम अपने हृदय में बिचार करो । विरह और ज्ञान में कितना अन्तर है, क्या तुम नहीं जानते ? उद्धव ! तुम तो चतुर कहलाते हो और हमेशा उनके निकट रहते हो, फिर जल में डूबते के लिये झाग का सहारा क्या बतलाते हो, अर्थात जिस प्रकार जल में डूबते हुये के लिये झाग का सहारा व्यर्थ है, उसी प्रकार हमारे लिये तुम्हारी योग की कथाओं का कथन व्यर्थ है । श्री कृष्ण जी की वह मनोहर मुस्कान और उनकी चितवन हम अपने हृदय से कैसे निकाल सकती हैं । तुम्हारी ये योग-कथाएं मुक्ति की बातें भगवान की उस मुरली पर न्यौछावर करती हैं । जिन गोपियों के हृदय में कमल नयन बसते हैं, उन्हें निराकार कैसे अच्छा लग सकता है ? सूरदास जी कहते हैं कि हम उस भजन को दूर करती हैं जिस भजन में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देव अच्छा लगता हो ।

उधो ना हम बिरहिनि.....छाँड़ि जगत उपहास ॥३७॥

शब्दार्थ— घट = शरीर, पंकज=कमल, बिरहत=फटजाना, राजिव = कमल, उदास = निरपेक्ष ।

सरलार्थ—गोपियां उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! न हम वियोगिनियां हैं और न तुम सच्चे दास हो । कृष्ण की गुण गाथा को कहते सुनते ही तो हमारे शरीर में प्राण हैं । उसे छोड़ कर तो प्राण आकाश को उड़ जायेंगे । जल से बिछुड़ने पर वियोगिनी मछली अपनी जीवन की आशा को छोड़ देती है । दासता के भाव को पपीहा नहीं छोड़ता, भले ही वह प्यासा सहता रहे । सुन्दर कमल और कीचड़ में विरह डाल कर विधाता ने जल को भी निराश कर दिया । कमल (सूख जाने

पर भी उस का दोष नहीं मानता और चन्द्रमा से उसकी सरल उदासी रहती है। दशरथ ने भी अपने प्रिय राम को बनवास देकर उसके वियोग में प्राण छोड़ते हुये अपने प्रेम का पालन किया था। इसी प्रकार, उद्धव ! हम भी संसार के उपहास की चिन्ता न करके श्याम के प्रति अपने प्रतिव्रत धर्म का पालन कर रहीं हैं।

सब जग तजे .....एक देह के काजै ॥३८॥

शब्दार्थ--नोत = लिये, स्वाति = नक्षत्र, कुरंग = हिरण, व्याध = शिकारी, निमिष = पलक मारना, जोवत = देखना, रीते = खाली, अलि = सखि, काजै = लिये।

सरलार्थ--गोपियां कहती हैं—हे उद्धव ! प्रेम के लिये तो हम ने सारा संसार छोड़ दिया है। चातक स्वाति नक्षत्र में गिरी हुई बूंद को नहीं छोड़ता, अपितु स्पष्ट रूप से उसे पुकारता है। जल के महत्व को समझती हुई भी मछली दृढ-पूर्वक प्राण छोड़ देती है। इसी प्रकार मृग संगीत के प्रेम को नहीं छोड़ता यद्यपि व्याध आकर उसे मार डालता है। चकोर पलक भरने लिये भी नेत्र बन्द नहीं करता, बल्कि युगों तक निरन्तर चांद को देखता रहता है। दीपक के प्रकाश को देखते ही पतंगा अपने शरीर को जला देता है। अभी तक उसका हृदय प्रेम से खाली नहीं हुआ। हे सखा ! भला बताओ, तो कि श्याम के साथ हमने जो जो बातें की हैं वे हमें कैसे भूल सकती हैं। हम इस एक शरीर के बनाये रखने के लिये ही सब कुछ क्यों छोड़ दें।

कोई ब्रज बाँचत .....रहहिं चरन दिन राति ॥३९॥

शब्दार्थ—पाती = पत्र, कांती = छूरी, परसत = छूने से, ताती = गरम, अंक = अक्षर, मदन = कामदेव, सरघाती = तीर की मार।

सरलार्थ—गोपियां कहती हैं—इस ब्रज में कोई भी पत्र को नहीं पढ सकता, फिर कृष्ण क्यों लिख लिख कर भेजता है ? इस विरह की छुरी को सहना बड़ा कठिन है। आंखे आंसुओं से भरी हैं, कागज अति कोमल है, और हाथ की अंगुलियां बहुत गरम हैं। छूने से यह (पत्र) जलता है. देखने से भीग जाता है, इस प्रकार दोनों प्रकार से

हमारे हृदय में दुःख होता है। सूरदास जी कहते हैं, इन अंकों को कैसे समझ सकते हैं। कामदेव के तीर को सहना बड़ा कठिन है। हम तो श्याम सुन्दर को देख कर ही जीती हैं, और उनके चरणों में ही दिन रात रहती हैं।

उर में माखन .....और न कोई सूझै ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—गडे = बस गये, निकसत = निकलना, अड़े = फंसे, अहीर = ग्वाला, छुडे = छोड़ना।

सरलार्थ—गोपियाँ कहती हैं—हमारे हृदय में माखन चोर-कृष्ण बस गये हैं। हे उद्धव! अब वे किसी प्रकार से निकालने पर भी नहीं निकलते, क्योंकि टेडे होने से फंस गये हैं। यद्यपि कृष्ण ग्वाला है तो भी छोड़ा नहीं जा सकता। वहाँ जाकर वे बड़े कुल वाले यदुवंशी बन गये हैं पर हमें तो वे बड़े नहीं लगते—अर्थात् हमारे लिए तो वे पहले जैसे ग्वाले ही हैं। हम तो कुछ नहीं जानती कि कौन बसुदेव हैं? और कौन देवकी। श्यामसुन्दर को देखे बिना हमें तो कुछ भी नहीं सूझता।

उधो, मन माने की बात ..... सोई ताहि सुहात ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—दाख = एक मेवा, चकोर = एक पक्षी, मधुप = भ्रमर, पात = पत्ता।

सरलार्थ—गोपियाँ कहती हैं—हे उद्धव! मन के मानने की बात है। देख! विष का कीड़ा दाख छुवारा आदि अमृत फलों को छोड़कर बिष ही खाता है। और यदि चकोर को कपूर दिया जाय तो वह भी उसे न लेकर अंगार से ही तृप्त होता है। भौंरा काठ में घर करता है और कमल के पत्तों में बन्ध जाता है। इसी प्रकार पतंगे का दीपक से क्या हित है? लेकिन वह दीपक पर जलकर मर जाता है। सूरदास जी वर्णन करते हैं, गोपियाँ कहती हैं—जिसका मन जिससे लग जाता है उसे वही सुहाता है।

कहाँ लौं कहिए.....पथिक न वहि पग जात ॥४२॥

शब्दार्थ—बिहात = बीतना, कृसगात = कमजोर शरीर, हिम-हत =

पाले से मारा हुआ, प्रेम आतुर उर=प्रेम से व्याकुल हृदय, वायस = कौआ।

सरलार्थ—उद्धव जी कृष्ण से कहते हैं—हे कृष्ण! व्रज की बात कहां तक वर्णन करूँ! तुम्हारे विना उन लोगों के जैसे दिन बीतते ह॰ सो सुन! गोपियां ग्वालों गायें बच्छे आदि सभी मलिन मुख तथा कमजोर शरीर वाले हो गये हैं। मानों सरदी के पाले से मारे हुये पत्तों से रहित बड़े दानी कमल हों। वे जिस किसी व्यक्ति को इधर से आया हुआ समझते हैं तो उसे तुम्हारा कुशल समाचार पूछते हैं। और प्रेम से व्याकुल हृदय होने के कारण चलने नहीं देते, बल्कि उस के चरणों में लिपट जाते हैं। (तुम्हारे वियोग में) कोयल चातक बन में बस नहीं पाते, और कौएं बलि नहीं खाते। सूरदास जी कहते हैं-कि पथिक सन्देश न कोई पूछले, इस डर से उस रास्ते जाते तक नहीं जाते।

चित दै सुनो स्याम प्रवीन.....जियहि आशा लीन ॥४३॥

शब्दार्थ—प्रवीन = चतुर, हीन = कमजोर, तमोल = पान, वसन = कपड़े, मोतन = मेरी ओर, खसि=खिसकना, मुद्रावली = अंगूठी, ग्रसित आपद = आपत्ति में फंसी, भट = योद्धा, आशालीन = आशा युक्त।

सरलार्थ—उद्धव कृष्ण से कहते हैं—हे चतुर कृष्ण! ध्यान देकर सुनो। मैंने तुम्हारे विरह में कमजोर हुई राधा को देखा है जिस ने तेल, पान, आभूषण आदि सभी त्याग दिये हैं, और उसके अंगों के कपड़े मलीन रहते हैं। वह इतनी कमजोर हो गई है कि बायें हाथ में पहना हुआ कंकन, कमजोर होने के कारण निकल जाता है। जब मैं तुम्हारा सन्देश कहने लगा तब वह सुन्दरी मेरी ओर (सन्देश सुनने की इच्छा के)चली आई। उसकी अंगूठिय ां खिस कर चरणों में गिर कर उलझ गई, इसलिये, वह अशक्त होने के कारण भूमि पर गिर पड़ी। वह मुख से कुछ बोल नहीं सकती थी क्योंकि उसका गला भर आया था। वह दीन आखों में आंसू भर कर रोने लगी, मानो बड़ी आपद में फंसी हो। वह एक बड़े योधा के समान बड़ा साहस करके और

संभल कर उठी। सूरदास कहते हैं—हे कल्याणकारी प्रभु! वह तुम्हारी आशा में ही जीती है।

मधुकर, ये मन .....कान्ह वियोग भरे ॥४४॥

शब्दार्थ—मधुकर=उद्धव, अरे=फंसे हुये, राचे=लीन, वक्र= [illegible] =कमल, विसरात=भूलना, उर=हृदय गम्भीर=गहरा, अन्ध कूप=अन्धेरे से भरा कुआ, गरल=विष, वरु=चाहे।

सरलार्थ—गोपियाँ, करती हैं हे उद्धव! यह मन बिगड़ गया है। यह गीता के ज्ञान को नहीं समझता, बल्कि हरि की मुस्कान में फँस गया है। यह तो बाल रूप कृष्ण जी के रूप रस में रंगा हुआ है। इसलिये वक्र होने के कारण अड़ गये हैं। जिस प्रकार करोड़ यत्न करने परभी कुत्ते की पूंछ सीधी नहीं होती, उसी प्रकार हरि के चरण में कमलों को यह भूलता नहीं, और उनके शीतल चरणों में बिचरता रहता है। योग की भक्ति एक अन्धेरे कूप के समान है जिसे देख कर यह मन डर कर दूर भागता है। हरि के प्रेम के सौभाग्य से भाग भरा है। अमृत से गरल भी नष्ट हो जाता है। सूरदास जी कहते हैं, चाहे ऐसे ही नष्ट हो जाय, पर कृष्ण के वियोग से भरा रहेगा।

उधो, मन नाहीं दशबीस.....पुरवो मन जगदीश।

शब्दार्थ—हुतो=था, आराधे=अराधना करना, जथा=यथा, कोटि-बरीस=करोड़ो वर्ष, रसिकन=प्रेमी, पुखो=पूराकरो।

सरलार्थ—गोपियाँ कहती हैं। हे उद्धव! हमारे पास कोई दश बीस मन तो हैं नहीं। एक जो था वह श्याम के साथ ही चला गया, अब ईश्वर की आराधना किस मन से करें। कृष्ण के बिना सभी क्षीण हो गई हैं जैसे सिर के बिना शरीर हो जाता है। हम साँसो को अटकाये आशा में करोड़ों वर्षों तक जीती रहेंगी। तुम तो कृष्ण के मित्र हो। और सारी योग सिद्धियों के देवता हो। तुम यहाँ लौट कर प्रेमियों की बातों से जगदीश के मन को भर देना।

उधो मोहि ब्रज बिसरत . ... हँसत ब्रजनाथ ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—बिसरत, भूलना, तन = ओर, सघन = घने, दत्हयो=दही, सजायो=सजाया हुआ, सिरात=बीतना।

सरलार्थ—श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते है कि हे उद्धव! मुझे व्रज भूलता नहीं। वृन्दावन और गोकुल की ओर आना, घने वृक्षों की छाया, प्रातः काल माता यशोदा तथा नन्दजी को देख सुख पाना, और मक्खन और दही से युक्त रोटी का प्रेम से खिलाना, गोपी ग्वाल बालों के संग खेलकर तथा हँस कर सारा दिन बिताना, नहीं मालुम होता है। सूरदास जी कहते हैं, वे व्रजवासी धन्य हैं जिन के साथ व्रजनाथ कृष्ण जी हंसते हैं।

अब मोहि निस . . . . ताहू कृतहि न मानै ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—आकुलाई=व्याकुल. निकलि = निकलना, प्राची = पूर्व दिशा, तातो = गरम, मदन=कामदेव, चाप = धनुष, सर = बाण, पासन= जाल, कृतहि=उपकार को।

सरलार्थ—एक विरहिन गोपी कहती है। अब मुझे रात देख कर डर लगता है। बार बार व्याकुल देह से मन निकल २ कर भागता है। पूर्व दिशा में पूर्ण चाँद का देख कर मेरा तन तपने लगता है। मानो काम देव ने विरहिन के बदन को क्रोध से लाल कर दिया है। और कलंक युक्त मोह रूपी धनुष पर बाण चढाये हुये हो। चारों तरफ किरणों के जाल को फैलाये हुये ऐसी प्रतीत होती है मानो हठ पूर्वक योगिनियों को बांध रखा हो। हे दुष्ट! सुन, जिस का यश सारा संसार जानता है वही मेरा प्राणपति है। सूरदास जी कहते हैं, जो संसार सागर में डूबने से बचता है उसके उपकार को भी यह मानता नहीं।

हमारे माई, . . . ये बनते न ढरे ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मोरऊ=मोर, बरजे = रोकना, अरे = फँसना।

सरलार्थ—हे सखि! इन मोरों का हम से बैर हो गया है। बादल गरजते हैं, रोकने से मानते नहीं, जिन्हें देखकर मोर कूकने लगते हैं। कृष्ण जी भी इनके शब्द सुन २ कर अपने सिर पर रख लेते हैं। और इसलिये ये हमें मारते हैं। कृष्ण जी ढीठ हो गये हैं। हे सखि! समझ में नहीं आता कि किस कारण कृष्ण जी हम से अड़े हैं। सूरदास

जी कहते हैं। कृष्ण जी परदेश बसते हैं और ये बन से नहीं हटते।

ब्रजवासिन सो कह्यो.....मोपे कह्यो न जाई ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—नेरे = निकट, निशदिन=रात दिन, मुकुट = दर्पण,

सरलार्थ--कृष्ण जी सब ब्रज वासियों से कहते हैं कि मुझे सब से ज्यादा ब्रज प्यारा है। मैं तुम से दूर नहीं रहता है, बल्कि हमेशा तुम्हारे निकट रहता हूं। जो मेरा भजन करता है, मैं भी उसे दिन रात भजता हूं। अर्थात् याद रखता हूं। जैसे दर्पण में अपना रूप अपने समान दिखाई देता है, इसी प्रकार सब लोगों को कृष्ण जी शान्त्वना देते हैं। उनकी आखों में जल छा जाता है। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण जी कहते हैं कि कृष्ण जी के प्रेम का कथन मुझसे नहीं किया जा सकता।

नमो नमस्ते.....सो तरे भव पार ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—मदन सदल = कामदेव के समान सुन्दर, त्रय,गुण = सत्व रज, तम तीन, गुण, तुव = तेरा, पचि = थकना, वपुरो = बेचारा, अरूण = लाल, असित=कृष्ण, सित = सुफेद, मामे = जिसमें, शब्दादिक= शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, पांच इन्द्रियों के विषय, अधिष्ठाता = अध्यक्ष, अस्थान = स्थान, पुहुमि=पृथ्वी, पट तर = समता, सुक = तोता भव पार = संसार से पार।

सरलार्थ–सूरदास जी कहते हैं। कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को मैं बार बार नमस्कार करता हूं। माया लोभ क्रोध और मान ये सब तीन गुणों के जाल के समान हैं। काल सदा बाण साधे रहता है। फिर ये नर कैसे तेरा स्मरण कर सकता है। हे भगवान! तुम निर्गुण निराकार हो। हम तुम्हें जानते २ थक गये फिर भी जान न सके। यह बेचारा मनुष्य तुम्हारे तत्व को नहीं जान सकता। भगवान्। तुम समय समय पर जगत में लाल श्याम श्वेत रूप धारण करके अवतार लेते हो। द्वापर में भगवान का रंग लाल था, कलि में श्याम, और सत्ययुग में सुफेद। यह संसार मिथ्या कैसे कहा जा सकता है। जहां तेरा गुण गान करके मनुष्य संसार से पार होते हैं। भगवान की प्रेम भक्ति के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। हे नाथ! वह भी तुम्ही कृपा करके देते हो।

हम जो भी सब संसार में देखते हैं वह सब भगवान् ! तुम्हारी ही कृपा का फल है। हे प्रभु ! यह शरीर गांव के समान है जिस में शब्द आदि विश्राम स्थान हैं। हे भगवान ! तुम अधिष्ठान हो, पर संसार ने तुम्हरे स्थान को नहीं जाना। नाथ तुहारी स्वास में संपूर्ण पृथ्वी है, पर स्वारू रूप हम उस बात को नहीं जानते। भगवान् ! क्या कहते मैं तुम्हारी स्तुति करूं पर मेरी वाणी नमस्कार नमस्कार उच्चारण करती है। हे ईश्वर ! तुम ही जगत पिता हो इसी लिये हम प्रभु ! तुम्के नमस्कार करते हैं। तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं. जिससे हम तुम्हारी समता कर सकें। जिस प्रकार तोता वेद स्तुति का गान करता है उसी प्रकार हम भी हैं ! जो भगवान् का उच्चारण करते हैं वो संसार से पार हो जाते हैं।

जैसे राखहु.....तुम्हारे चरण गहौ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—तुरंग = घोड़ा, वहौ = ठोऊ, अनुचर = दास सेवक ॥

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं—हे प्रभु ! जैसे रखोगे वैसे ही हम रहेंगे। मैं मुख से क्या कहूं। तुम तो सभी जनो के दुःख सुख को जानते हों। हे कृपा निधि ! कभी भोजन करता हूं तो कभी भूखा रहता हूं। कभी घोड़े पर चढता हूं कभी हाथी पर और कभी भार होता हूं। हे कमल नयन सुन्दर कृष्णा जी मैं तो आप का ही अनुचर हो गया हूं। भक्तो पर दया करने वाले हे प्रभु। मैं तुम्हारे चरण पकड़ता हूं।

सुआ चलु वा बन.....बड़े भाग्य जो पाऊ ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—सुआ = तोता, जीव से अभिप्राय, अमरित, रस = अमृत रस, केरो = का, काल मँजार = काल रूपी बिलाव।

सरलार्थ—हे तोते अर्थात् जीव ! चल, उस वन का रस ले जिसवन दिव्य गो लोक, में कृष्ण नाम के अमृत रस को कान रूपी पात्र भर भर पीते ह। जीव ! कौन तेरा पुत्र है और किस का तू पिता है। यह संसार का भ्रम मिथ्या है, अर्थात् इस संसार में कोई किसी का नहीं। यूँ मेरी मेरो क्या करता है। तुम्के काल रूपी बिलाव ले जायगा। हरि के नाना रस युक्त मुक्ति क्षेत्र को चल, मैं तुम्के दिखाऊँ। सूरदास जी

कहते हैं। साधुओं की संगति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है।

रे मन मूरख.....सिर धुनि धुनि पछतायो ॥५३॥

शब्दार्थ विषयरस=भोग वासनाओं का रस, राँच्यो=लीन हो गया, समर=एक शम्बल वृक्ष।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं। हे मूर्ख मन तूने जन्म व्यर्थ ही विता दिया। अभिमान करके भोग वासनाओं में फंसा रहा, श्याम की शरण में कभी न आया। यह संसार शम्बल के फूल के समान है। जिसे देख कर तू भूल गया है। जब उसे चखने लगा है। तो उसकी रूई उड़ जाती है, हाथ कुछ नहीं आता। अर्थात् जैसे शम्बलका फूल देखने में ही सुन्दर लगता, पर उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार यह संसार तत्व रहित है। अब मन में सोच करने से क्या होता है। पहले कुछ भी नहीं किया। अब तू भगवान के भजन बिना सिर धुन धुनकर पछताता है, पर अब क्या हो सकता है!

जा दिन मन पंछी.....सत संगति में पैहैं ॥५४॥

शब्दार्थ—पंछी=पक्षी, तन तरुवर=शरीर रूपी वृक्ष, प्रीतम=प्रियतम, ताल=शरीर, कुटुम्ब कबीला=स्त्री पुत्र आदि, अपजसु=निन्द।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं—हे मन! जिस दिन यह पंछी-प्राण उड़ जायेंगे उस दिन तेरे शरीर रूपी वृक्ष के सब पत्ते झड़ जायेंगे, अर्थात् मरने के बाद कुछ भी नहीं रहता। घर वाले कहते हैं—इसे जल्दी निकालो, कहीं भूत बन कर यह किसी को खा न जाय। जिस प्रियतम से प्रगाढ़ प्रीति थी, वही उस वक्त देख कर डरता है। अब कहां वह शरीर और कहां वह शोभा, देखते २ मिट्टी में मिल जाता है। भाई बन्धु और स्त्री पुत्र आदि सभी याद करके पछताते हैं। भगवान के बिना संसार में अपना कोई नहीं। संसार में केवल यश और अपयश रह जायगा। जो देवताओं को भी दुर्लभ है, वह यश, हे मन! तू सत्संगति में पा लेगा।

रे मन, जन्म अकारथ.....अन्तर क्यों इतरात ॥५५॥

शब्दार्थ—अकारथ = व्यर्थ, बहुरि = फिर, सन्निपात = एक भंकर रोग, रसना = जीभ, वाणी, जम = मौत, इतरात = घमंड करता है।

सरलार्थ—हे मन! तेरा जन्म व्यर्थ ही बीत गया। बिछुड़ कर पत्तों का फिर मिलन नहीं होता। तुझे सन्निपात हो जायगा तथा कफ तेरे गले को रोक लेगा तब तू जीभ से ठीक बात भी न कर सकेगा। हे मूर्ख! माता पिता के देखते २ तेरे प्राणों को मृत्यु ले जायगी। क्षण भर में करोड़ों युग बीत जाते हैं, फिर नरक की बात क्या? इस संसार की प्रीति की शम्बर के साथ तेते की प्रीति के समान, जिस खाते ही रूई उड़ जाती है। हे पागल! मृत्यु के फंदे में न पड़। भगवान के चरणों में चित्त लगाले। सूरदास जी कहते हैं—यह शरीर व्यर्थ ही है, फिर तू हृदय में क्यों घमंड करता है?

कहां सुख ब्रज को.....मम काम ॥५६॥

शब्दार्थ—बंसी वट = एक वट वृक्ष, बाम = स्त्रियां, अन्तर सुख = आत्मानन्द, विरह = विरह का आनन्द।

सरलार्थ—सूरदास जी कहत हैं—ब्रज जैसा संसार में सुख कहां? कहां वह सुख देने वाला यमुना के किनारे का वट वृक्ष? जिस के सम्बन्ध में यह मन हमेशा सोचता रहता है। कहां वे बन धाम? और कहां राधा तथा वे ब्रज बालायें? कहां वह रास लीला से प्राप्त होने वाला आत्मा नन्द? कहां वे नारियां। और कहां वे वृक्ष तथा झूमने वाली लतायें और कहां वे वन के कुञ्ज और कहां गोपियों के बिना विरह से प्राप्त होता सुख? इनसे प्राप्त होने वाला आनन्द आज ब्रज को छोड़ संसार में कहीं पर भी लक्षित नहीं होता।

सदा एक रस एक.....गावत अति आनन्द ॥५७॥

शब्दार्थ—अनूप = अनुपम, जुगल स्वरूप = राधा कृष्ण, तत्व = पचीस तत्व, श्रीपति = विष्णु, गोपाल = महा विष्णु, श्रीवल्लभ = श्री वल्लभा चार्य, तत्व = प्रेम भरी भक्ति।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं-अनादि अनूप श्री राधा कृष्ण जी सदा एक रस और अनश्वर हैं वे करोड़ों वर्ष बीतते नहीं जानते तथा वे सदा विहार करते हैं। संसार के सभी तत्वों के वे देव हैं माया आदि उन्हीं के वश है। प्रकृति का रूप और विष्णु नारायण आदि सभी उसी महा विष्णु के अंश हैं। कर्म, योग, ज्ञान, और उपासना आदि सभी भ्रम हैं जिस में सभी भ्रमे हैं। श्री वल्लभाचार्य गुरू ने इस तत्व को सुना कर उनकी लीला के भेद को बताया है (सूरदास जी ने वल्लभाचार्य से दिक्षित होकर भगवान का गुण गान करना प्रारम्भ किया था)। उस दिन से मैंने हरि की लीला का गान करके एक लक्ष पदों की रचना की है। उसी के सार को सूर सारावली में मैंने बड़े आनन्द के साथ गाया है।

हरि हरि हरि.....हरि कथा होवे जहां ॥५८॥

शब्दार्थ—सुमिरन = याद करना, उर = हृदय, वासा = वास।

सरलार्थ—सूरदास जी कहते हैं—हरि हरि स्मरण करो। हरि के चरन कमलों को हृदय में धारण करो। हरि की कथा जहां भी होती है वहां गंगा भी चल कर आ जाती है। वहां यमुना, सिन्धु, सरस्वती आ जाती है तथा गोदावरी भी आने में देर नहीं लगाती। जहां हरि की कथा होती है वहां सब तीर्थ निवास करते हैं। अतः भगवान कृष्ण का स्मरण करना चाहिये।

नन्द दास

पहले रास पंचाध्यायी का आरम्भ करते हुए श्रीशुकदेव जी को प्रणाम किया है। क्योंकि रास लीला का प्रकरण श्रीमद् भागवत से लिया गया है और श्रीमद् भागवत शुकदेव जी का गाया हुआ होने से शुक शास्त्र कहलाता है।

पृष्ठ ४८ शब्दार्थ—श्री सुक = शुकदेव जी, नीलोत्पल दल=नील कमल की पंखुड़ियां, भ्राजै=सुशोभित होता है, अलक = बाल, अलि-अवलि = भौंरों की कतार, दिपति = कान्ति, चमक, निकर = समूह तिमिर= अंधकार, लक्षणा से अज्ञान, अपन = स्थान, घर, रतनारे = लाल

घूम घुमारे = जागने के कारण कुछ नींद भरे से, गड मंडल = गाल, अलिन्द = भौंरा,

पदार्थः— बन्दन.....अविकारी.

ग्रन्थ के आरम्भ में मैं कल्याण कारी, परम दयालु, श्री शुकदेव मुनि को प्रणाम करता हूँ, जो कि सभी विकारों से रहित होने के कारण शुद्ध स्वरूपी है, ज्ञान की ज्योति से प्रकाशमान है, सदा सौम्य हैं और राग द्वेष आदि विकारों से प्रभावित नहीं होते।

हरि लीला.....मग में।

वे नित्य ही श्री कृष्ण की लीलाओं के अनुभव से उत्पन्न आनन्द से मतवाले हुए संसार में विचरा करते रहते हैं। उनकी महिमा बड़ी विचित्र है, वे संसार मार्ग में किसी आकर्षण से आकृष्ट हो सकते नहीं। शुकदेव जी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे एक स्थान पर केवल इतनी देर रुकते थे, जितनी देर में एक 'गाय' दुही जाती है।

नीलोत्पल.....विराजै।

यहां शुकदेव जी के नख शिख का वर्णन करते हैं। नीले कमल की पंखुड़ियों के समान उनके सांवले अंग हैं जिन में नया यौवन सुशोभित हो रहा है। कमल के समान मुख पर घुंघराले बाल बिखरे हुए हैं, मानों भौंरों की पंक्ति सुशोभित है। वस्तूत्प्रेक्षा।

सुन्दर भाल.....दिवाकर।

उनका सुन्दर मस्तक दिव्य कान्ति से चमक रहा है जानों अनेक चन्द्रमा उग आये हैं। (अष्टमी के चन्द्रमा से मस्तक की उपमा दी जाया करती है) श्री कृष्ण की भक्ति का प्रतिबिम्ब या छाया है। अर्थात् उस कान्ति में श्री कृष्ण की भक्ति की परिछाई झलकती है, जो कि अज्ञान रूप अन्धकार के नाश के लिये करोड़ों सूर्य रूप है। उत्प्रेक्षा और परम्परित रूपक हैं।

कृपा रंग.....घूम घुमारे।

उनके लाल २ नेत्र बड़े सुशोभित हैं, वे करुणा के घर हैं, कृष्ण

प्रेम रूपी अमृत को पीकर आये नशे से आलस्य युक्त हो कर कुछ निदियारे से हो रहे हैं। रूपक अलंकार है।

स्रवन.....बरसै

उनके कान कृष्णामृत के घर हैं अर्थात् नित्य ही श्री कृष्ण की कथा वा गुण कीर्तन सुनने वाले हैं। दोनों कपोल भले सुशोभित हैं, श्री कृष्ण के प्रेम से उत्पन्न या अनुभूत होने वाले आनन्द से आनन्दित भौंरे हैं। उनकी मन्द २ मुस्कान से पुष्प रस की सी वर्षा हो रही है, अथवा 'प्रेमानन्द मलिन्द' को मधु का ही विशेषण मान लिया जाय। तब यह अर्थ होगा कि प्रेम रस के अनुभव से उत्पन्न आनन्द के लिये भ्रमर रूप पुष्प रस की मन्द २ मुस्कान से वर्षा हो रही है। हृदय में जो कृष्ण प्रेम के कारण आनन्द है, उस में मधुरता अवश्य होगी, इसलिये मधु में मिलिन्द का आरोप किया है। मधु शब्द व्यंजना से अपने माधुर्य को प्रकट करता है, वही मधु मन्द २ मुस्कान से बरस रहा है। सारांश यही है कि उन की मन्द २ मीठी मुस्कान कृष्ण प्रेम के आनंद को प्रकट कर रही है।

पृष्ठ ४६. शब्दार्थ—कम्बु कंठ = शंख जैसी गर्दन, भीर = समूह, पनारी = नाली, पानी बहने के लिये बनाई गई नाली, आजानु बाहु = घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाले, मकरंद = पुष्प रस, मधुकर = भ्रमर, दिन-मणी = सूर्य, पुरि = छिप कर, पसरि परयो = फैल पड़ा, उनेक = घर, स्थान, भागवत दिवाकर = श्रीमद् भागवत पुराण रूपी सूर्य, आगर = आगार, घर, मगन भये = डूब गये, लुप्त हो गये, छिप गये।

पद्यार्थ:— उन्नत.....मसि भीनी

उनकी नासिका ऊंची है और कुछ झुकी हुई होने से मानों तोतों की चोंच की शोभा छीन ली है, नीचे होंठ बिम्ब के समान हैं, इन दोनों अर्थात् नासिका और अधरों के मध्य एक अनारे की काली २ सुन्दर रेखा सुशोभित है, अर्थात् छोटी २ मूंछे आने लगी। शुकदेव जी के विषय में कहा जाता है कि वे १६ वर्ष की अवस्था के ही रह थे, अर्थात् इससे अधिक अवस्था का अन्य प्रभाव उनके

शरीर पर न होता था। इस पद्य के पूर्वार्ध में व्यतिरेक, निदर्शना और उत्तरार्ध में रूपकादि शयोक्ति अलंकार हैं।

कम्बुकंठ.....निसै।

उनकी ग्रीवा शंख के समान है। यह सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार है। उस ग्रीवा को रेखायें देखने मात्र से हरिधर्म अर्थात् भगवान् धर्म का बोध हो जाता है। जिन्हें देखते ही काम, क्रोध, मद, अर्थात् अहंकार लोभ और मोह या ममता नष्ट हो जाती हैं। भाव यह है, जिन रेखाओं के देखते ही हृदय में हरिभक्ति उत्पन्न हो जाती है और कामादि विकार नष्ट हो जाते हैं।

उरवर ....कन्हाई।

उन की छाती पर भी कान्ति का अवर्णनीय समूह है जिसमें सदा श्रीकृष्ण की मूर्ति झलकती रहती है। अर्थात् उनके हृदय में सदा श्रीकृष्ण का वास रहता है।

सुन्दर.....पनारी

उनके सुन्दर उदर भाग पर बड़ी रोम-पंक्ति शोभित है मानो हृदय रूपी तालाब से आनन्द रस भरी नाली बह चली हो। वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार

तारस.....लहरी

उस आनन्दरस की कुण्ड रूप नाभि ऐसी गहरी है, अर्थात् नाभि मन के उस आनन्द या प्रेम रस का कुण्ड रूप है। उदर भाग में पड़ी हुई तीन चलें तीन रेखायें मानों उस कुण्ड में रस की उमड़ती लहर हैं। इस में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

अति सुदेश.....प्रेम सुधारस

उन का कटि भाग, नाभि से निचला भाग सिंह के समान पतला है, वह यौवन रूपी मद से दर्शकों को आकृष्ट सा करता है, प्रेमामृत के जल की वर्षा करता है। उससे हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है।

गूढ़ जानु.....डोलै।

उन के घुटनों की अस्थियाँ खाल से ढकी हुई हैं, भुजायें घुटनों तक लम्बी हैं। यह सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार महापुरुष होने के

लक्षण हैं। उनकी चाल मस्त हाथी के समान है। वह गंगा आदि नदियों को भी जो कि स्वयं ही पवित्र होती हैं, पवित्र करते हुए पृथ्वी पर विचरते रहते हैं।

सुन्दर पद.....लोभी तहँ

जहाँ जहाँ उनके सुन्दर चरण कमलों का पराग बरसता है, वहीं सदा उस पराग के लोभी मुनियों के मन रूपी भ्रमर गण भंडराने लगते हैं। अर्थात् जहाँ २ शुकदेव जी जाते है, वहीं उन के दर्शनों को और उपदेश सुनने के लिये मुनिवृन्द पहुँच जाते हैं।

जब दिनमणि.....घुमड़ घुरि

जब श्रीकृष्ण रूपी सूर्य ओझल हो कर आँखों से दूर हो गये, तभी सम्पूर्ण संसार में अज्ञान रूप अन्धकार सहसा उमड़ कर फैल चला पहले और इस पद में परम्परित रूपक है।

तिमिर.....विभाकर

आज्ञान से प्रभावित सम्पूर्ण लोक वासियों के दुःखों को देखकर दयालु शुकदेवजी ने अनोखे प्रभाव वाला श्रीमद्भागवत रूपी सूर्य उदित किया। रूपक अलंकार।

जे ससार.....कपाकर

जो इस अज्ञानान्धकार से पूर्ण संसार रूपी भवन में भटक रहे थे मार्ग टटोलते फिरते थे, दयालु शुकदेव जी ने उनकी भलाई के लिये यह श्रीमद्भागवत रूप बिचित्र प्रदीप प्रज्वलित किया।

पृष्ठ ५०—शब्दार्थ

निगम सार=वेदों का निचोड़, अगम=आप्रप्य, अज्ञेय, मणी=यहाँ श्रेष्ठ से अभिप्राय है। पंच प्राण=शरीर में पाँच वायु माने गये हैं। प्राण अपान, समान, उदान, व्यान। उडुराज=तारा पति चन्द्रमा, नागरि नायक=चतुर कामिनियों का नेता, रंध्रन=छेदों में, मध्य भाग में, बितान चन्दोवा, आघा =घटना, चतुर=असम्भव कार्य को भी करदेने में निपुण, नादब्रह्म=शब्दरूप ब्रह्म, कल=मधुर. बाम बिलोचन= सुन्दर नेत्र बाली।

पदार्थः—श्री भागवत.....अगम अति

पर्व पद से सम्बन्ध है। वह दीपक कौन सा था, इस लिये आप नाम और प्रभाव का वर्णन करते हैं। वह दीप श्रीमद् भागवत नाम का है, अत्यन्त सुन्दर है, महाबुद्धिमान् नित्य युवा रहने वाले श्री शुकदेव जी ने वेदों के निचोड़ रूप उस श्रीमद्भागवत को प्रकाशित किया। वह किसी गुरुकी कृपा से प्राप्त हुए बिना अत्यन्त अज्ञेय है।

ताही में मनि.....मुनि गाई।

यह पांच अध्यायों वाली पंचाध्यायी उस श्रीमद्भागवत में भी उत्तम प्रकरण है। यह बड़ो रहस्य मयी है इस के भेद को साधारण व्यक्ति नहीं जान सकता। जिस प्रकार शरीर में पाँचों वायु बिशेष महत्व रखते हैं, उसी प्रकार यह भी भागवत में विशेष रस के स्थल हैं, इसको मुनि शुकदेव जी ने इस अनोखे ढंग से गाया।

परम .....कीनी

मेरे एक मित्र बहुत ही सहृदय हैं। यहां मित्र का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्होंने मुझे रास पंचाध्यायी रचने की आज्ञा दी। इसी कारण जैसी मेरी बुद्धि थी, यह अपनी निरभिमनिता प्रकट करने के लिये लिखा है, इसी के अनुरूप यह रास कथा भाषा में लिखी है।

नन्ददास जी ने इतने पदों के अनन्तर १ का अंक लगाया है। यह संख्या-विभाग सम्भवतः उन्होंने वर्णन क्रम के अनुसार किया हो।

ताही छिन.....नायक

यहां से रास लीला का आरम्भ होता है। पहले चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं। उसी क्षण शृंगार में उद्दीपन करने वाला नक्षत्रपति चन्द्रमा उदित हुआ। उसके चारों ओर तारे उगे हुए थे। मानों विलास कुशला कामिनी का प्रिय अपनी प्रिया के केसर तिलक से सुशोभित हो। प्रिया के मस्तक पर लगा तिलक का केसर उसके भी आ लगा हो। उत्प्रेक्षा।

कोमल.....गुलाल ज्यों

उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणें उस बन में फैल कर ऐसी प्रतीत

होती थीं जैसे कामदेव ने होली खेली हो और उसी का उड़ाया गुलाल चारों ओर छाया हुआ हो। उत्प्रेक्षा अलंकार।

फटिक.....तनाई

स्फटिक मणि या बिल्लौरी पत्थर की एक कतार सी चन्द्र किरणें जब लताकुञ्जों के मध्य भाग में फैल गई, मानों उस सुन्दर भाग पर कामदेव ने सफेद चान्दनी टांग दी हो। उत्प्रेक्षा अलंकार।

मन्द.....आई

सुन्दर चन्द्रमण्डल धीमा २ चलता हुआ ऐसा सुशोभित होता था, मानो प्यारे विष्णु अपने रूप का ही खेल देखने के कौतूहल से झलक दिखा रहे हैं। अर्थात् मानों चन्द्र-बिम्ब के रूप में विष्णु स्वयं रास क्रीड़ा देखने को झांक रहे हों।

तब लीनी.....मु-रली

तब श्रीकृष्ण ने अपने कमल के समान हाथों में योगमाया के समान जगत् को मोहित करने वाली और असम्भव को भी सम्भव कर दिखाने में चतुर वंशी ले ली और वह अधरों के मधुर स्वर से जब मिश्रित हुई। अर्थात् कृष्ण ने वंशी बजानी आरम्भ की।

जाकी धुनि तें.....सुख सागर।

जिस वंशी की ध्वनि से ही अत्यन्त रहस्य भरे वेद और शास्त्र प्रकट हुए। शब्द रूप ब्रह्म की सुखमय मोहिनी शक्ति जान कर वेदों का सार उस वंशी की ध्वनि से अभिव्यक्त हुआ, यही उसका भाव है। ब्रह्म का स्वरूप आनन्द है और संगीत-ध्वनि आनन्दमयी होती है अतः नाम को ब्रह्म के नाम से लिखा है। इसी कारण आगे मोहिनी शब्द का प्रयोग है। उस संगीत रूपी ब्रह्म की योगमाया जगत् को मोहित कर देने वाली है।

पुनि मोहन.....होय जस

फिर कृष्ण ने उस मुरली को अधरों पर रख कर मोहक स्वर से कुछ ऐसा गान किया, इस सुन्दर लय और ध्वनि से वंशी को बजाया कि घरों में बैठी हुई सुन्दरियों के भी मन को उस स्वर ने हर लिया।

पृष्ठ ५१ शब्दार्थ

तरणि = सूर्य, मणि पाषाण = सूर्यकान्त-मणि, पावक = अग्नि, आन = अन्य, पंचभूत = पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पांच महाभूत कहे जाते हैं। धातु पात्र = लोहे का बर्तन, पाषाण = पारस पत्थर, प्रारब्ध = भाग्य, अघ = पाप, गृह संगम = घर का मोह, विहंगम = पक्षी।

पद्यार्थ—मोहन.....तिन हूं।

श्रीकृष्ण की उस मोहिनी वंशी की ध्वनि सभी ने सुनी, जिसका जैसा रूप, जैसी भावना थी, उसने उसी रूप में उस ध्वनि को मन में अनुभव किया। जिनके हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम था, उन्हें वह ध्वनि विशेष मोहिनी लगी।

तरनि.....परसे

उदाहरण देते हैं, जैसे सूर्य की किरण और सूर्यकान्त मणि को सभी कोई देखते हैं परन्तु सूर्य की किरण पड़ने के बिना सूर्य कान्त मणि—आतसी शीशा आग नहीं पकड़ता। पहले पद को मिला कर यहां उदाहरण अलंकार बना।

सुनत.....अटकी नहिं।

बंशी की ध्वनि सुनते ही व्रज वधुएँ उस ध्वनि का मार्ग पकड़ कर चल दीं, जो घर में भी डरती थीं, ऐसी कोमल मन वाली वे गोपियां उस समय व्रज के पेड़ों और कुञ्जों के समूह में से जाती हुईं कहीं नहीं अटकीं। इससे गोपियों की आतुरता की विशेष अवस्था स्पष्ट हो जाती है।

नाद.....अधिकारी।

इस ध्वनि रूप अमृत का मार्ग बहुत ही रहस्यमय और तंग है, उस पर केवल व्रज वधुएँ ही चल सकती हैं, और कोई उसका अधिकारी या पात्र नहीं है।

सुद्ध प्रेम .....जगत उजारी।

वह व्रज युवतियां शुद्ध सात्विक प्रेम स्वरूपिणी थीं, उनकी आ

पांचों सृष्टि कारक तत्वों से पृथक होकर श्रीकृष्ण में रम रहीं थीं। भला उन्हें कोई क्या कह सकता है उनका क्या वर्णन कर सकता है, अथवा उन्हें कौन रोक सकता है. वह तो बिजली सी जगत को प्रकाशित करने वाली हैं। पहले का समर्थन करने के लिये दूसरा पद कहा है। कार्य कारण भाव होने से काव्य लिंग अलंकार है।

जे रुकि.....पच्यौ रम।

जोकि गुणमय शरीर के कारण, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा. द्वेष आदि शारीरिक गुण कहे जाते हैं, भीतरी भाव या आत्मा को गुणमय शरीर कहा जाता है। इस प्रकार जो इस गुणमय शरीर में किसी कारण घर पर रुक गईं. और व्याकुल हो रही थीं, उनके पुण्य और पाप से बने भाग्य के कारण प्राप्त इस शरीर में वह कृष्ण प्रेम पचा नहीं, अर्थात् पूर्व जन्म के कर्म के कारण जो उन्हें यह स्त्री शरीर मिला था, उसमें घर पर रुक जाने पर भी वह गोपियां अपने कृष्ण प्रेम को दबा न सकीं।

परम.....छिन में।

जिन्हें अत्यन्त असह्य श्रीकृष्ण का विरह दुःख सताने लगा, उनके हृदय को इतनी वेदना हुई कि करोड़ों वर्षों तक नरक भोगने रूप दण्ड वाले पाप एक क्षण भर में नष्ट हो गये।

धातु पात्र.....को है।

जब कि लोहे का बर्तन पारस पत्थर को छूकर सोना बन जाता है। भला नन्दकुमार से प्रेम करके उनकी यह दशा हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है।

ते पुनि. .....विहंगम।

वह गोपियां भी घर बार का मोह छोड़ कर उसी बन मार्ग की ओर चलीं। जैसे पक्षी नये घर से प्रेम छोड़ कर पिंजरे से उड़ जाता है।

कुञ्ज.....व्रज बाल।

वह सभी गोपियां दीन दयालु श्रीकृष्ण को बन के कुञ्जों में ढूँढती

फिर रही थीं, परन्तु उन्हें प्राण प्यारे मोहन नहीं मिले तो व्रज-बालाय बहुत दुःखी हुई।

पृष्ठ-५२ शब्दार्थ—केतकी=केवड़ा, जुड़ावहु=शीतल करो।

विरहाकुल.....विरहीजन।

पद्यार्थ—सभी गोपियां विरह से व्याकुल होकर वन की लताओं से भी कृष्ण के विषय में पूछने लगीं। कोई कहे कि भला लतायें तो जड़ हैं, उनसे क्या कोई पूछेगा, अतः समर्थन करते हैं। विरह वेदना से पीड़ित व्यक्ति जड़ या चेतन का विचार नहीं करते। अर्थान्तर न्यास अलंकार है।

हे मालति .....इत।

हे मालती, हे जाति, हे जुही, तुम मन लगा के मेरी भली बात सुनो। भला बताओ, मान या प्रणाय-कोप को दूर कर देने वाले और मन को हर लेने वाले प्यारे गिरिधारी क्या तुमने इधर कहीं देखे हैं?

हे केतकि .. ..मूसे।

हे केवड़े की लते! क्या तुमने इधर से रूठ कर जाते प्यारे को देखा है? अथवा क्या नन्दलाल ने मुस्कराकर इधर तुम्हारा मन भी चुरा लिया है!

हे मुक्ताफल... .....नन्द के लाला।

हे मुक्ताफल की लता! गले में मोतियों की माला धारण किये विशाल नैन वाले नन्द के पुत्र को तुमने भी देखा है। यहाँ मोतियों के समान फलों वाली किसी बेल से अभिप्राय है।

हे मदार.....वीर गति।

हे मंदार, हे कल्प वृक्ष, हे श्रेष्ठ करवीर,(एक प्रकार का लाल फूल वाला वृक्ष) तुमने भला कहीं बड़े बुद्धिमान्, धैर्यशाली, मनको हरने वाले मन्दगति वाले श्रीकृष्ण कहीं तुमने देखे हैं?

हे चन्दन.....बतावहु।

हे चन्दन, दुःख को दूर करने वाले, तुम सन्ताप को हरने वाले हो, अतः हम सभी के हृदय की जलन शान्त करो। संसार के वंदनीय, चन्दन के समान शान्ति देने वाले नन्द नन्दन को हमें बताओ।

पूछौरी.....न होई ।

अरी सखियो ? इन लताओ से पूछो जो कि खिले फूलों से लदी हुई हैं, उस परम सुन्दर प्यारे कृष्ण के स्पर्श बिना इनको खिलने का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता ।

हे सखि.....हरि ।

ऐ सखी, जरा इन मृगों की वधुओं का पीछा करो, इन्हें क्यों नहीं पूछती हो, इनके नेत्र आनंद से डहडहे, आंसुओं से भरे हुए हैं । इन्होंने कृष्ण को कहीं अभी देखा है । अनुमान अलंकार है ।

अहो सुभग.....वलि ।

कोई गोपी कहती थी, अहा ये वायु जो कि सुन्दर है और वन के फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित है, स्थिरता से मन्द २ चल रही है । सो अवश्य इसने सुख के नित्य भवन, दुख को दूर कर देने वाले प्यारे कृष्ण इधर से जाते देखे हैं । मैं इस वायु पर न्यौछावर होता हूं ।

हे चम्पक.....विहारी ।

हे चम्पा के फूल, तुम्हारी शोभा सबसे निराली है । भला बताओ तो कुञ्जों में रमण करने वाले हरि जहां भी हों, जरा बताओ तो सही । अर्थात् तुम प्रसन्न दीखते हो, अतः तुम्हारी ओर से कृष्ण गये होंगे । भला बता तो दो ।

शब्दार्थ पृष्ठ ५३—उतंग=ऊँचा, लोक मनि=लोक श्रेष्ठ, तीनों लोकों में श्रेष्ठ, पनस=कटहल, रसाल=रसीले, सुन्दर ।

हेकदम्ब.....लहि ।

पद्यार्थ—हे कदम्ब, नीम और आम के वृक्षों, भला तुम चुप चाप क्यों हो । हे वट वृक्ष ! तुम तो बहुत ऊंचे हो, भल इधर उधर कहीं तुम्हें श्याम दिखाई देते हैं ?

हु ।

हे अशोक के वृक्ष, तुम्हारा नाम ही अशोक या शोक रहित है, अतः हमारे शोक को हर कर त्रिभुवन-श्रेष्ठ प्रियतम का पता बता दो । हे कटहल ! तुम तो बड़े ही रसीले मीठे हो, इन मरती स्त्रियों को [illegible] कर जीवित करदो ।

जमुन.....तीरथ वासी

इस के अनन्तर गोपियों ने यमुना तट के निकट खड़े वृक्षों से पूछा। कुछ उत्तर न मिलने पर सभी उदास होकर कहने लगीं कि ये तो तीर्थ स्थानों पर रहने से कठोर मन हो गये हैं, ये भला उन का पता क्यों बतायेंगे। (प्रतीत होता है, नन्द दास जी के समय भी आज की भांति पण्डे लोग झगड़ालू ही थे)।

हे जमुना.....वहति है।

हे यमुना, तुम जान बूझ कर मन में हठ ठान रही हो, जो जल संसार को पवित्र करता है, उसे प्रत्यक्ष बहाये ले जा रही है। (ऐसी श्रेष्ठ वस्तु को तो संभाल कर रखना चाहिये, तुम बहाये ले जा रही हो) अथवा तुम जान बूझ कर जगत का उद्धार करने वाले कृष्ण को अर्थात् उनकी नीली कान्ति को पानी में प्रत्यक्ष धारण किये हो। फिर भी बताती नहीं हो।

हे अवनी.....प्रान पियारे।

हे पृथ्वी, भला तू ही बता, हमारे हृदय को चुराने वाले प्राण प्यारे माखन चोर कहीं तूने तो छिपा कर नहीं रखे हैं? ऐसा हो तो बतादो।

हे तुलसी.....विथा हमारी।

हे तुलसी, तुम तो बड़ी कल्याणी हो, मंगल कारिणी हो, गोविन्द के चरण तुम्हें बड़े प्यारे हैं, अथवा श्रीकृष्ण को तुम अति प्यारी हो, अतः तुम नन्दलाल से हमारी व्यथा, हमारी वेदना क्यों नहीं सुनाती हो?

जहँ आवत.....वन माई।

मार्ग में जहां कहीं घने पेड़ों से छाये हुए अंधेरे कुञ्जों के समूह आ जाते थे, वहीं वे गोपियां अपने मुख की चान्दनी में चलती थीं उनके मुख की कान्ति से उस वन को सुन्दर करती हुई उसी प्रकाश में चलती थीं।

इहि विधि.....मन भाई।

इस प्रकार पुत्तलियों की भांति वन में आंखों, पिंडरियों और पत्तों

से लताओं से पूछती हुई हार थक कर अपने आप ही श्री कृष्ण की सुन्दर लीला करने लगीं।

मोहन ..... को हैं !

रसीले मोहन की बाल लीला करनी इन गोपियों को ही शोभा दे सकती थीं, क्योंकि सभी उनके प्रेम में इस प्रकार लीन हो गईं कि उन्हें यह ज्ञान भी नहीं रहा कि हम कौन हैं। अर्थात् उन्हें अपने पराये की सुधि भी नहीं रही। तभी वह कृष्ण लीला कर सकीं। अन्यथा यह जान कर कि हम तो स्त्रियां हैं, कृष्ण पुरुष हैं, लीला कैसे कर सकतीं।

जो अनेक... ... .वितरत हैं।

जो श्री कृष्ण निरन्तर हृदय में ध्यान करने वाले अनेक महायोगियों को एक ही रूप में एक ही बार आनन्दानुभव करा देते हैं। भाव यह है कि योगी लोग हृदय में श्रीकृष्ण का ध्यान तो करते हैं, परन्तु भगवान् स्वयं उनके हृदय में एक क्षण के लिये भी कभी ही जाते हैं। अन्यथा वे लोग केवल निराकार मान कर इसी ज्ञान के अनुभव से सन्तुष्ट हो लेते हैं। उसी आनन्द को ब्रह्मानन्द के नाम से पुकारते हैं। वह आनन्द एक ही समय में एक रूप से अनुभव में आता है। रास लीला में भी श्रीकृष्ण एक साथ एक ही रूप में अनेक मूर्ति धारण करके सब को सुख देते थे। इस से यह भी प्रकट कर दिया कि श्रीकृष्ण मग्न हो कर लीला करती हुई गोपियों में से प्रकट होगया थे और जिस २ ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया था, उन सभी को उन्होंने एक रूप से सन्तुष्ट किया।

जे गी जन... .....रचि पचि !

योगीजन वन में जाकर मर पच कर अर्थात् बड़े प्रयत्न से हृदय को निर्मल कर के कामादि षड़ रिपुओं को जीत कर मन को शुद्ध कर आसन जमाकर उस हृदय में भगवान् को लाना चाहते हैं।

कुछ छिन.....अति रुचित कारि।

परन्तु भगवान् जो कि बडे चतुर हैं। कुछ क्षण के लिये भी उनके मनों

में नहीं जाते। वे ही श्रीकृष्ण उन ब्रजबालाओं के वस्त्र पर बड़ी प्रसन्नता से बैठे।

पृष्ठ:—५४—शब्दार्थ

कमल कर्णि का = कमलका मध्य भाग जहाँ केसर उगता है। अपबस अपने वश में शृंखला = जंजीर व मायादिक मरकण मणि = पन्ना, अम्बर = वस्त्र

पद्यार्थ—कोटि कोटि.....छवि पाई।

यद्यपि अनेकों करोड़ ब्रह्माण्डों में एक श्रीकृष्ण का ही अधिकार है, सम्पूर्ण विश्व के स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं, तथापि ब्रज की युवतियों के मध्य सांवरे रूप में भगवान् अति ही सुशोभित हुए।

ज्यों नव मंडल.....स्यामविराजै।

गोपियों से घिरे श्याम की शोभा बताता है कि जैसे नवग्रह मण्डल के मध्य में कार्णिका शोभित होती है, इसी प्रकार सभी सुन्दरियों के मध्य में श्रीकृष्ण भी विराजते थे। यहाँ जैसे होने से वाक्यार्थोपमा अलंकार है।

तब बोले..... ...हमारो।

तब नन्दकुमार श्रीकृष्ण गोपियों से बोले कि मैं आप लोगों का बड़ा ही ऋणी हूँ। तुम हमारा अपराध अब तक प्रत्यक्ष न आने का दोष मन से दूर क्यों नहीं करती हो।

कोटि कल.....तबौ तो।

हे मन हर लेने वाली युवतियों मैं आप लोगों के लिये यदि करोड़ों कल्प पर्यन्त प्रत्युपकार करता रहूं तो भी तुम सब से उऋण नहीं हो सकता अर्थात् तुमने अपनी शुद्ध प्रेममयी भक्ति से मुझे ऐसे प्रसन्न किया है। कि उसके अनुरूप जो कुछ किया जाय वह थोड़ा ही है सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

सकल विश्व.....मोहित है।

भगवान् कहते हैं कि यद्यपि मेरी माया ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने वश में करलिया है परन्तु आपकी प्रेममयी मोहिनी मुझे भी वश में कर रही है। व्यतिरेक व्यंग्य है।

तुम जु करी.....सम तोरी ।

हे नवल किशोरी—नव युवतियो, तुम ने जो किया है, वैसे कोई भी नहीं कर सकता ! लौकिन या सामाजिक और वेद की पतिव्रत धर्म रूपी मर्यादा तुम ने तिनके के समान तोड़ डाली है । अर्थात् तुमने पति, पिता माता आदि स्वजनों का विचार और शास्त्रीय मर्यादा की चिन्ता न करके सच्चे भाव से मुझे भजा है, इस प्रकार कोई नहीं कर सकता है ।

सकल तियन..... ..झलकै जस ।

अब रासलीला आरम्भ होती है । सांवरे प्रियतम उन सम्पूर्ण गौर वर्ण बालाओं के मध्य ऐसे सुशोभित होते थे । जैसे रत्नों की माला के मध्य नीलम नाग सुशोभित होता है । वाक्यार्थोपमा अलंकार है ।

अब मरकत .....माला ।

नई खान से निकलो मरकत मणि के समान कृष्ण थे और व्रज की बालायें स्वर्ण और रंग बिरंगी मणियों के समान थी दोनों किसी ने प्रसन्न हो कर वृन्दावन को रंग बिरंगी माला पहनाई हो ।

नूपुर.....जु-रली

रासलीला में होने वाली धानि का वर्णन करते हैं । नूपुर, चूड़ियाँ, तगड़ी की घंटियां हाथों की ताली सुकर वंशी, ताल, मृदंग, उमंग और खंजरी के स्वर से मिश्रित अन्य पद से सम्बन्ध है ।

मृदुल.....रली पुनि ।

इन वाद्यों की कोमल और मीठी टंकार और झंकार की ध्वनि से मिली हुई । इसका भी अगली पंक्तियों से सम्बंध है ।

तैस्विय.....हारनकी

उसी प्रकार हाथों की मृदंग पर पटकन और होंठों से ताली बजाने की चटकन, नाचते समय सुन्दर कुण्डलो और हारों की इधर उधर हिलाने से झलक हो रही थी । अर्थात् नृत्य में इस प्रकार की ध्वनियाँ हो रही थी ।

पृष्ठ —५५.....शब्दार्थ

दामिनी=बिजली, बिलुलित = इधर उधर हिलती हुई। बेनी = चोटी अलिसेना = भ्रमरपंक्ति, रव = शब्द स्रमिति = थकी हुई

पद्यार्थ —सांयरे.....माला

सांवले प्रियतम के साथ ब्रजबालायें ऐसी नाच रही थी, जानों बादलों के समूह में सुन्दर बिजली खेल रही हो। उत्प्रेक्षा।

सुन्दर वनियों की पीठ पर उनकी चोटी ऐसी लटकती हिल रही थी जैसे चंचल लताओं के साथ २ भ्रमरों की पंक्ति भी घूमती है। वाक्यार्थोपमा अलंकार है।

मोहन .....पटकी

प्यारे मोहन की मीठी मुस्कान, मोर पंखों के मुकुट का इधर उधर झुकाना और पीले वस्त्र का हवा में फर फरना सदा मेरे मन में बसे

वदन.....ढलकनि

श्रीकृष्ण के कमल समान के मुखपर बिखरी हुई घुंघराली लटें पसीने की बूंदों की झलकना और मोरमुकुट का इधर उधर ढल जाना सदा मेरे मन में बसे।

कोउ... ... ...होत पिया

कोई सखी प्यारे का हाथ पकड़ती वह सुन्दरी ऐसी नाचती कि मानों नट या मदारी की हथेली पर घूमता देख कर प्यारा लट्टू हो जाता अर्थात् कोई गोपी इस प्रकार कुछ होकर नाचती कि श्रीकृष्ण मुग्ध से उसे देखते रह जाते। वह उनका हाल पकड़कर सुन्दरता से नाचती थी।

कोउ नायक..... ...जिय के जस।

कोई प्रियतम के रूप और लावण्य के वश में हो कर अपने हाव भाव से नाचती है। नायक के भेद भाव को भेद भा व दिखाती थी। वह गाती और अभिनय करती थी, जैसे स्वयं उसके प्रिय के ही वे अभिनय हों। शृंगार रस के नायक चार प्रकार के होते हैं, अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट। अनुकूल एक पत्नी वाला होता है। दक्षिण अनेक प्रेयसी होने पर भी सब को सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करता है।

शठ चालाक होता है, वह चोरी छुपके चेष्टायें किया करता है। धृष्ट निर्लज्ज होता है। वह मुख्य नायिका का मन दुखाने से भी नहीं चूकता और कहने सुनने से नहीं शरमाता।

पिय के मुकुट..... भरे रस।

प्रियतम के मुकुट की लटकन और मुरली की ध्वनि की ऐसी मटकन थी कि जिसे सुन कर आनन्द भरे मोर भी कूक कूक कर सुन्दरता से नाचने लगे।

सिरतें.....फूलनि करि।

आनन्द में भर कर नाचने से शिर पर से सुन्दर फूल इस प्रकार बरस रहे थे मानों पैरों की सुन्दर चाल पर रीझ कर बाल फूलों से उन की पूजा कर रहे हों।

स्रम जल.....सरसत।

माथे पर आई पसीने की बूंदें रंग भरी होकर ऐसा आनन्द बरसा रही थीं, जिनके हृदय में प्रेम रूपिणी भक्ति का पौदा हो उन्हीं के हृदय को वह पसीने की बूंदों की शोभा रिझाती थीं।

वृन्दावन.....भार डोलैं।

वृन्दावन की मन्द, सुगन्धित और शीतल तीनों प्रकार की वायु मानों उन पर पंखा झलक रही थी, जहां जहां थकी हुई गोपी देखतीं, वहां जल भर कर चलती थी।

बड़े अरुन.....उपजन जैसे।

बड़े २ लाल से वस्त्र समूह ऐसे सुशोभित थे जैसे आंखों की पुतलियाँ प्रेम के आंसुओं से कुछ अद्भुत सी कान्ति धारण करती हैं।

पृष्ठ ५६, शब्दार्थ—धूमरी = धुंधली, अंधियारी = पराग।

पद्यार्थ—फूलों के पराग से अंधियारी, भौंरों के गुंजार से भरी कुंजों में भी वह गोपियां उस प्रेम और आनन्द के आवेश में प्रवेश कर गईं।

भीजि वसन.....नहीं जस।

पुष्प रस से उनके वस्त्र भीग कर शरीर से चिपट गये, उस समय

उनकी शोभा जिस प्रकार अंकित हुई, उसका वर्णन कौन करे क्योंकि नेत्रों के वाणी नहीं है, और वाणी के आंखें नहीं हैं। भाव यह है कि उस सुंदरता को आंखों ने देखा था पर उनके तो जीभ ही नहीं है, जीभ या वाणी वर्णन कैसे करे, उसने देखा नहीं। भला उस सुंदरता का वर्णन कौन कर सकता है।

नित्य रास.....नवतन अति दुरलभ

सदा अविनाशी भगवान् जोकि गोपिकाओं के प्रिय हैं, इसी प्रकार नित्य ही रासक्रीड़ा में लीन रहते हैं, नित्य वेद भी उस लीला का नित्य ही वर्णन करते हैं, परंतु नवीन आधुनिक जन्मधारियों के लिये वह दुर्लभ है। भाव यह है कि जिनका जन्म उस समय हुआ था, उनको तो दर्शन हो गये, परंतु जिनका जन्म अब हुआ है, भला उन्हें कहां वह लीला देखने को मिलेगी।

यह अद्भुत .....नाहि जनावें

यह आनन्द भरी महा रासलीला बहुत ही अद्भुत और शोभा से भरी है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, हजार मुख वाले शेष नाग इस लीला की महिमा गाते हैं पर अंत नहीं आता।

सिव मन .....मन भावै।

शिव जी उस रासलीला का मन ही मन ध्यान करते हैं, किसी पर प्रकट नहीं करते। सनक, सनंदन आदि ऋषि, नारद और सरस्वती के मन को यह बहुत ही भाती है।

यह उज्ज्वल .....कोई।

अब नंददास जी रास पंचाध्यायी का उपसंहार करते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं। यह निर्मल प्रेम रस से भरी हुई रास-पंचाध्यायी रूपिणी माला कवियों यत्नों से पिरोई है। इस माला को बड़ी सावधानी से पहिनना, कोई तोड़े नहीं।

स्रवन.....गुथी पुनि।

यह रास-पंचाध्यायी की माला श्रवण, कीर्तन, ध्यान, स्मरण रूप-

भक्ति के अंगों तथा ज्ञान, हरि के ध्यान और वेदों के सार से गूंथी गई है।

अघीरनी.....मंगल करनी।

यह अघ अर्थात् पापों को हरने वाली है, मन को हरने वाली और आनंद को बढाने वाली है। नंददास जी कामना करते हैं कि मंगल करने वाली यह रास पंचाध्यायी-रूपी माला मेरे कण्ठ में सदा वास करे। बहुत सुंदर रूपक है।

भ्रमर गीत

उद्धव जी मथुरा से श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर गोपियों को सांत्वना देने गोकुल पहुँचे, उन्होंने गोपियों को श्रीकृष्ण के निर्गुणात्मक रूप की उपासना के उपदेश जो दिये और उसके उत्तर में गोपियों ने उद्धव को भ्रमर के नाम से पुकार कर जो कुछ प्रेमोपालम्भ दिये, उन सब को लक्ष्य कर इस प्रकरण को भ्रमर गीत नाम दिया गया है। सूर सागर में भी भ्रमर गीत का प्रकरण है, परंतु उससे नंददास जी के भ्रमरगीत में यह विशेषता है कि सूरदास जी के उद्धव जहां गोबर गणेश से चुप-चाप गोपियों की बौछार सुनते रहते हैं। कुछ भी उत्तर नहीं देते, वहां नंददास के उद्धव तुरंत तर्क पर चतुराई से उत्तर देते जाते हैं। इसका छंद भी रोचक है।

पृष्ठ ५६:—उद्धव.....नव बृन्दावन कुञ्ज

१—उद्धव जी कहते हैं, हे ब्रज-बालाओ! आप लोग उद्धव का उपदेश ध्यान से सुनो। आप लोग सभी रूप, आचार, लावण्य आदि सभी गुणों की खान हैं। आप प्रेम की ध्वजा कहलाती हैं, अर्थात् आप लोगों ने प्रेम की महिमा बढ़ाई है, श्रीकृष्ण के प्रेम से आप नित्य सुख समूह उपजाती हो, नित्य नवीन वृंदावन के कुञ्जों में सुंदर श्याम के साथ आप लोगों ने रास विलास किया है। भाव यह है कि आप सब इस उपदेश को सुनने के योग्य हैं, अतः ध्यान देकर सुनें।

पृष्ठ ५७, कहन स्याम.....बहुरि मधुपुरी जाऊँ।

मैं आप लोगों से श्री श्याम सुन्दर का एक सन्देश

कहने आया हूं, मुझे कहीं भी कहने के योग्य एकान्त स्थान और उचित अवसर न मिल पाया। मैं अपने मन में यह सोचता ही रह गया कि आप सब को मैं कब एक स्थान पर एकत्रित बैठा पाऊं और श्री नन्द कुमार श्री कृष्ण का सन्देश सुना कर पुनः मथुरा लौट जाऊं।

पद्य ३ जो उनके गुण होय.....कहां अकाशहिटेक

यहां से उपदेश आरम्भ होता है। उन का कथन है कि यदि भगवान के भी गुण हों, सत्व, रज, तम, ये तीनों गुण हों तो भला वेद नेति नेति अर्थात् उनके विषय में कुछ वर्णन कर पुनः 'वे ऐसे नहीं हैं, वे ऐसे नहीं है' क्यों कहें, उन्हें तो 'ऐसे हैं' 'ऐसे हैं' कहना चाहिये। वेद भी निर्गुण और सगुण दो स्वरूप मान कर सब को सुख देते हैं। परन्तु वेदों और पुराणों में ढूंढ कर भी कहीं भी एक भी ऐसा प्रकरण नहीं मिला, जहां भगवान के गुण बताये हों। यदि गुणी के ही गुण हों तो तुम शून्य का सहारा लेती हो।

भाव यह है कि यह सृष्टि यद्यपि सत्व रज, तम इन तीनों गुणों से बनी है, इस में जिस का भी रूप है, उसका इन तीनों गुणों में से एक या दो या तीनों से सम्बन्ध अवश्य होगा। यदि भगवान् के शरीर माना जाय तो उनका सम्बन्ध इन गुणों से भी मानना पड़ेगा। परन्तु वास्तव में उन्हें निर्गुण ही कहा गया है। वेद उनकी महिमा का वर्णन करके बाद में लिखते हैं, वे ऐसे भी नहीं, वे ऐसे भी नहीं। यदि उनका गुणों से सम्बन्ध होता तो वे अवश्य उनके गुणों का वर्णन करते। प्रसिद्धि की भांति वे भी उनके निर्गुण और सगुण, दो रूप बता कर जनता को सुखी करते, परन्तु वेदों और शास्त्रों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, इसलिये तुम्हारा विश्वास बिना किसी आधार के ही हैं।

पद्य ४ जो उनके गुन..... वारि मिलि कीच

गोपियां उद्धव की इस युक्ति का खण्डन करती हैं—यदि भगवान के ही गुण नहीं हैं तो भला संसार में मिलने वाले ये गुण कहां से आये। भला तुम यह बताओ कि बीजही न होगा तो पेड़ कहां से उत्पन्न होगा। वास्तविक बात यह है कि संसार में मिलने वाले

गुण वास्तव में उनके गुणों की छाया हैं। उनके गुणों से ही ये तीनों गुण पृथक् हो गये हैं जैसे पानी से कुछ मिट्टी आदि निकाल दिया जाय तो निकला मैल कीच कहलायेगा। जल निर्मल ही रहेगा। इसी प्रकार भगवान के गुण भी वास्तव में जगत में परछाईं के रूप में दीख रहे हैं।

भाव यह है कि कारण के गुण ही कार्य में आया करते हैं, जैसे मिट्टी के गुण ही घड़े में आते हैं। इसी प्रकार भगवान् इस संसार के कारण हैं और यह संसार कार्य है। यदि कारण रूप भगवान के ही गुण नहीं तो कार्य रूप संसार में जो कि उनका बनाया हुआ है, प्रत्यक्ष दीखने वाले सौंदर्य, औदार्य, रूप, माधुर्य, बल, महिमा आदि गुण कहाँ से आगये। जैसे बीज रूप कारण से वृक्ष कार्य की उत्पत्ति होती है और वृक्ष में आने वाले गुण सूक्ष्म रूप में बीज मे पहले से ही रहते हैं, इसी प्रकार मूल कारण उस ईश्वर के गुणों की परछाईं हैं इस संसार में दिखाई देती है। अतः आपका तर्क कि वे निर्गुण हैं, सर्वथा अशुद्ध है। गोपियों ने उद्धव के सत्त्व रज तम इन तीनों सृष्टि के मूल गुणों को न लेकर दूसरे दिव्य गुणों का अर्थ गुण शब्द से लिया। इसलिये श्लेष वक्रोक्ति अलंकार है।

प्रेम जु कोउ... ... ...गुनातीत भगवान्।

उद्धव जी पुनः दूसरा तर्क उपस्थित करते हैं। वे कहते हैं कि हे-गोपियो, तुम भगवान से प्रेम करने को कहती हो परन्तु, उन से तो प्रेम असम्भव है क्यों कि प्रेम उस भाव का नाम है, जो किसी वस्तु का रूप देखकर उसके प्रति मन की लगन लग जाय, इस प्रकार प्रेम का आलम्बन कोई रूप वाला पदार्थ होना चाहिये। जब तक कोई वस्तु ही दिखाई न पड़ेगी भला तब तक प्रेमी किस से प्रेम करेगा? यदि यह तर्क करो कि भगवान के रूप नहीं है तो उनका व्यवहार कैसे होता है उनकी सत्ता क्यों मानी जाती है, इस लिये और युक्ति देते हैं कि किसी ने सूर्य चन्द्र का रूप देख पाया है, यह तुम जानती हो? उत्तर यही होगा कि नहीं उन का रूप किसीने नहीं देखा, तो इसी अधार पर कह सकते हैं कि भगवान् गुणों से परे हैं।

भाव यह है, उद्धव जी कहते हैं कि प्रेम एक भाव है, किसी वस्तु का रूप देखकर उसके प्रति जो हृदय की लगन होती है, उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम के लिये किसी रूप वाले स्थूल पदार्थ की आवश्यक पड़ती है। जब तक कोई पदार्थ दीखेगा नहीं उस के प्रति प्रेम भी उत्पन्न नहीं होगा। पुनः उनको आलम्बन मानकर प्रेम भाव कैसा ? यदि यह तर्क दो कि जिस वस्तु का रूप नहीं उसके होने में क्या प्रमाण, जब भगवान् का शरीर नहीं तो उनके नाम का व्यवहार क्यों होता है और उन का अस्तित्व किस आधार पर माना जाता है इस लिये उनका आकार होना सिद्ध हुआ इस का उद्धव उत्तर देते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश प्रत्यक्ष है, परन्तु उनका रूप रंग अब तक कोई न देख सका, तब भी उनकी सत्ता मानी जाती है। इसी प्रकार शरीर न रहते हुए भी ईश्वर का अस्तित्व माना जाता है। इसी कारण भगवान् को गुणों से परे मानते हैं।

तरनि अकस... ....कर्म के कूप।

गोपियां उद्धव के तर्क का खण्डन करती हैं सूर्य आकाश में प्रत्यक्ष है परन्तु वह तेज स्वरूप होने से छिपा हुआ है, उसको देखने के लिये दिव्य दृष्टि चाहिये। उन के बिना सूर्य को कौन देख सकता है। जिन की दिव्यदृष्टि नहीं है, भला उन्हें वह रूप क्यों दीखने लगा ? वे लोग कर्मों के कुए में पड़े, हैं उन्हें इस लिये विश्वास नहीं होता।

भाव यह है कि जैसे सूर्य आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देता है, परन्तु वह केवल उसका बिम्ब या मण्डल है। वह तेजस्वी है, इस कारण उसका वास्तविक रंग रूप तेज से आंखें चौधिया जाती हैं, रंग रूप दिखाई नहीं देता। इस लिये दिव्य नेत्र की आवश्यकता है। इसी प्रकार भगवान् भी प्रत्यक्ष हैं, परन्तु वे भी इसी सांसारिक रूप में छिपे हुए हैं, जिस से साधारण आँखे उन्हें देख नहीं पाती। उनके लिये भी इन चर्म चक्षुओं के स्थान पर वैसे ही दिव्य चक्षुओं की आवश्यकता है जिन के पास दिव्य दृष्टि है, वे तो उनके स्वरूप को भली प्रकार देखते हैं, परन्तु जिन्हें वह दृष्टि प्राप्त नहीं होती उनमें वह सुन्दर रूप भला कैसे दिखाई दे। वे लोग कर्मों के कुऐ में पड़े हैं अर्थात् जैसे कुएँ का मेंढक सारा संसार उतने ही स्थान को समझता है बाहरी विश्वका उसे न ज्ञान और

न विश्वास होता है। ऐसे ही ये संसारी लोग बस इने गिने कर्मों को ही सब कुछ समझते हैं। उन्हें सदा से इसी पर विश्वास रहा है कि योग, ध्यान, ज्ञान से उनका अनुभव करना चाहिये, वे निराकार हैं आदि २ आगे उन्हें पता ही नहीं तो भला वे कैसे विश्वास करें कि भगवान् के रूप भी होता है और वह देखने में भी आसकता है।

जो गुन.....जु ताते होति

अब उद्धव चतुर्थ पद्य जो उनके गुन नाहि आदि पद्य में दी गई गोपियों की युक्ति का खण्ड करते हैं। गोपियों ने कहा था कि संसार में दीखने वाले गुण उन्हीं के गुणों की परछाईं हैं। परन्तु श्रीकृष्ण भी तो वर्तमान काल में त्रिगुणात्मक देह धारण किये हैं अतः उद्धव कहते हैं कि संसार में जो भी गुण दीख पड़ते हैं वे सभी भगवान् तो नहीं हैं। जिस में भी उन के गुणों की परछाईं पड़ी है, वे सभी तो ईश्वर नहीं हो गये। भगवान् उन सभी व्यक्तियों से भिन्न हैं, वे वासुदेव हैं। और अच्युत हैं, इस पद्य में वासुदेव का अर्थ वसुदेव का पुत्र वासुदेव नहीं यहाँ व्यापक रूप से अभिप्राय है 'वसन्ति सर्वभूतानि अस्मिन्निति वासुः-वासुश्चासौ देवः वासुदेव' अर्थात् जिस में सभी जीव बसते हैं। या जो सभी जीवों के हृदय में वास करता है। कर्म धारय समास से जो ऐसा देवता हो, उसे वासुदेव कहके हैं, अच्युत अर्थात् अविनाशी हैं। अधोक्षज रूप ज्योति चर्मचक्षु के द्वारा दिखाई देने वाले व्यापार का विषय नहीं है अधोक्षज का अर्थ है अक्षज अर्थात् इन्द्रिय रूप नेत्र से उत्पन्न ज्ञान जिससे अधः अर्थात् नीचे हैं। जिस का ज्ञान इन चर्मचक्षुओं से नहीं हो सकता, ऐसी विष्णु रूप ज्योति चर्मचक्षुओं के व्यापार का विषय नहीं हैं। उसको तो हृदय में केवल सब प्रकार के व्यापार से रहित, निर्विकार और ज्ञानमय समझ कर ही अति सन्तोष हो जाता है।

इसका भाव यह है, माना कि भगवान् के ही गुण सम्पूर्ण विश्व में परछाईं रूप से दिखाई देते हैं, परंतु इसका यह अभिप्राय तो नहीं कि जिसमें ईश्वर के दिव्य गुणों की झलक दिखाई दे, वही ईश्वर हो जाय। ईश्वर तो अविनाशी है, व्यापक है, ये प्रत्यक्ष दीखने वाले पदार्थ या व्यक्ति तो जन्म और मरण धर्म वाले हैं, ये तो ईश्वर नहीं

कहे जा सकते। रही योगियों के साक्षात्कार की बात। वे अपने हृदय में उनके रूप को तो नहीं देखते। क्योंकि ब्रह्म तो प्रकाश स्वरूप हैं, ये चर्म-चक्षु उसे नहीं देख सकते। वे लोग तो केवल हृदय में परमात्मा को अलक्ष्य और निर्विकार अनुभव कर इसी से आत्म-सन्तोष प्राप्त करते हैं।

विशेष:—इस पद्य में उद्धव ने भी गुण शब्द से गोपियों वाले दिव्य गुणों का ही आशय लिया है, त्रिगुण से नहीं।

नास्तिक जे हैं.....कोटिक ब्रह्म दिखाय।।

गोपियां उद्धव की युक्ति का प्रतिवाद करतीं हैं—उनका कहना है कि जो लोग नास्तिक हैं, जो उस ईश्वर का स्वरूप होना ही नहीं मानते, वे उस के प्रेम स्वरूप को क्या समझें। वे तो प्रत्यक्ष सूर्य को छोड़ कर उसकी परछाईं धूप को ही सूर्य के नाम से पुकारते हैं। हमें तो उस रूप के बिना और कुछ भी नहीं सुहाता। चाहे तुम करोड़ों ब्रह्म लाकर हथेली पर रख कर दिखादो।

भाव यह है कि जो ईश्वर को मानता है, उसके आकारवान् होने पर जिसे विश्वास है, वही उसके प्रेममय स्वरूप का अनुभव कर सकता है और उससे प्रेम कर सकता है। नास्तिक तो ईश्वर को भी नहीं मानते, भला उन्हें उसका भाव कैसे हो, कैसे वे उसके स्वरूप पर विश्वास करें। तुम्हें तो उसके निराकार होने पर भी विश्वास है तो तुम उसके प्रेम का अनुभव कैसे कर सकते हो। साक्षात् रूप को छोड़ कर एक निराकार स्वरूप की कल्पना करना, विश्व में व्यापक स्वरूप को पकड़ने के लिये दौड़ना तो ऐसे हैं कि जैसे कोई आकाश में प्रत्यक्ष प्रकाशमान सूर्य मण्डल को छोड़ कर धूप और उसकी परछाईं को सूर्य माने। परन्तु हम इस भ्रम में नहीं पड़ सकतीं। चाहे हथेली पर करोड़ों निर्गुण ब्रह्मों की झलक दिखा दी जाय तो भी हमें बिना उस रूप के कुछ नहीं सुहाता। तुम अपने ब्रह्म को संभाले रहो, हमें तो श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष स्वरूप ही प्यारा है।

निदर्शना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति अलंकार है।

ताहो छिन इक.....प्रगट्यो आनि।

उसी समय कहीं से एक भौंरा उड़ कर वहां आ गया, वह उन ब्रज बालाओं के मध्य में गूंजने लगा। उनके पैर पैर पर वह लाल कमल की पंखुड़ियां जान कर चढ़ना चाहता था, मानों प्रथम आकर प्रकट हुए उद्धव ही मधुकर का वेष धारण करके मधुकर या भौंरा बन गये। भाव यह है कि मानो उद्धव ही भौंरा बन कर उनके चरण छूना चाहते थे। यहाँ भ्रम और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है।

ताते भंवर सों.....मोहन नन्द किशोर।

सभी गोपियां उसी भौंरे से उत्तर के बदले उत्तर देने के रूप में बातें करने लगीं। उनकी बातों में तर्क वितर्क और प्रेम भरी व्यंग्य की चोटें थीं। कोई कहती थी, हे भौंरे, तुम हमारे पैर न छुओ। हम तो तुम्हें चोर मानते हैं। मोहने वाले नन्द के किशोर कृष्ण तुम्हीं जैसे कपटी थे, अतः यहाँ से दूर चले जाओ। भौंरा काला था, कृष्ण भी सांवले थे, दोनों का सारूप्य है, भ्रमर पुष्परस लेकर पुनः दूसरे फूल पर चला जाता है, कृष्ण भी गोपियों को योंही छोड़ गये। अतः भौंरे को नन्द किशोर सा बताती हैं। परिकर और प्रथम प्रतीप अलंकार हैं।

कोऊ कहै.....कपटी इनकौ भेस

कोई गोपी कहती है कि अरी सखी, भौंरे ने उन कृष्ण का ही वेष धारण किया है, सांवला और पीला शरीर है, श्रीकृष्ण सांवले थे और वस्त्र पीले पहनते थे, भौंरा भी काला होता है, बीच में पीला रहता है। भौंरे की गूंज की ध्वनि ही तगड़ी की घण्टियों की ध्वनि का काम दे रही है। यह भौंरा रूप कृष्ण मथुरा का मक्खन आदि चुरा कर पुनः यहाँ लौट आया है, इनका कोई भी विश्वास न करो, इनका वेष कपट का है। अर्थात् ये बड़े कपटी हैं, कुछ चुरा कर न ले जायं। रूपक अलंकार है।

पद्य—कोउ कहैं रे मधुप.....दुखित प्रेम आनन्द

किसी गोपी ने कहा, अरे भौंरे, तू तो केवल मधु या पुष्प रस को पीना जानता है, प्रेम का तुझे क्या पता, तू स्वयं तो अनेक फूलों का

रस लेता फिरता है, किसी एक पुष्प से तेरा स्नेह नहीं अतः तू हमें भी वैसी ही समझता है कि हम भा कृष्ण के अतिरिक्त और किसी से स्नेह जोड़ लेंगी।

अरे मूर्ख हम लोगों को भी तू अपने जैसी करना चाहता है। कपट-भरी बातें बना २ कर प्रेम के आनन्द लेने वालियों को योग आदि ज्ञान के सन्देह में डाल कर दुःखी करना चाहता है? अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। साथ ही परिकर भी है।

कोऊ कहै ....करन कौन की घात।

कोई गोपी बोली अरे भौंरे, तुझे मधुकारी चर्थात् पुष्प रस बनाने वाला कौन कहे। तू तो मुख में योगोपदेश की गठरी लिए व्यर्थ में लोगों की गांठें काटता फिरता है। तूने बहुतों का खून पिया है जिससे तेरे अधर लाल रँग से रंग गये हैं, अब भला ब्रज में किस की हत्या करने आया है।

विशेष—मधुकारी शब्द और योग की गांठ मुख में लिये फिरते ये विशेष भाव द्योतक हैं। मधु बनाने वाले का हृदय भी मधुरता से भरा होना चाहिए, परन्तु तुम तो उल्टे दुःख देते फिरते हो, ऐसी दशा में मधुकर कैसे? इसी प्रकार प्रेम भाव से भरे हृदय वाली गोपिकाओं को योग का उपदेश देकर उनका सर्वस्व प्रेम भाव लूटना चाहते हो, ये विशेष अभिप्राय है। परिकर और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

कोऊ कहै .. ..अमृत देखि डरात।

कोई बोली अरे मधु पीने वाले? भौंरे, प्रेम तो इस छः पैर वाले पशु में ही देखा, अभी तक इस ब्रज भूमि में प्रेम व्यवहार में इस भौंरे से कोई न बढ़ सका। मुँह पर दो सींग और काला पीला शरीर लिये ये प्रेम करता फिरता है। खल अर्थात् खल सदृश स्वभाव वाला, विष को तो अमृत मानता है और वास्तविक अमृत को पीते डरता है। यह वैसी रसिकता है, व्यर्थ है।

भाव यह है कि वास्तव में प्रेम ही सत्य आनन्द स्वरूप है, उसका उद्धव ने खण्डन किया और योग समाधि आदि जो कष्ट साध्य और

अनेक जन्मों में फल देने वाले प्रयत्न हैं, उन्हें उचित बताया, यही विपरीत मार्ग है, जोकि भावुकता के विरुद्ध है। यहाँ विपरीत लक्षण-मूलक व्यंजना है। साथ ही काव्यलिंग व अप्रस्तुत-प्रशंसा है।

कोऊ कहै,.....फिर फिर संथा देत।

कोई गोपी बोली अरी ये भौंरा तो उलटा ज्ञान ले आया है, देखो आश्चर्य है, जो मुक्ति में पड़ी हैं या मोक्ष पा चुकी हैं, उन्हें पुनः कर्म-मार्ग बता रहा है। जिन्होंने वेदों और उपनिषदों के सिरोड़ स्वरूप मोहन के गुणों को उनकी महिमा को जान लिया है, या उनके गुणों का अनुभव कर उनमें लीन हो गई हैं, उन गोपियों को योग की पाठ-शाला में आत्मशुद्धि का पाठ पढ़ा रहा है।

भाव यह है कि भारतीय पद्धति से ईश्वर तक पहुंचने की चार अवस्थायें हैं १—कर्म काण्ड, २—उपासना काण्ड, ३—ज्ञान काण्ड, ४—सिद्धि काण्ड

जब तक परमात्मा विषयक-ज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य अनेक यज्ञ आदि कर्म करता है, पुनः उन की भक्ति उपासना आदि करता है। धीरे २ जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि उस परमेश्वर में और आत्मा में कोई अन्तर नहीं, तब पुनः कर्म-बन्धन में पड़ने की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार सिद्धि काण्ड में भी दो आवस्थायें होती हैं:—साध्यावस्था, २—सिद्धावस्था। साध्यावस्था में साधक को आत्मा की शुद्धि के लिये कामादि छहों शत्रुओं और शारीरिक गुणों, तीनों प्रकार की इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है, इसी अवस्था में उसे योग-साधना द्वारा अणिमा, महिमा आदि आठों सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इन सीढ़ियों से पार होने पर अन्त में सिद्धावस्था होती है, जहां कि परमात्मा से साक्षात्कार होता है। उस स्थिति में पहुंच जाने पर पुनः कर्म करने या आत्म-शोधन की आवश्यकता नहीं होती। गोपियां यही कहती हैं कि जब हम उस परमात्मा का साक्षात्कार कर चुकी हैं, तो पुनः हमें आत्म शुद्धि की आवश्यकता नहीं। यही सुन्दर व्यंग-पूर्ण उपालम्भ है।

सखा तुमहारा स्याम .....बासीजूठन खाय।

कोई गोपी बोली अरे भौंरे ? तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम्हारे मित्र श्याम सुन्दरी कूबड़ी के स्वामी कहलाते हैं, अर्थात् उन्हें कोई अच्छी पत्नी भी नहीं मिली। उसी कूबड़ी दासी के लिये ब्रज को छोड़ कर मथुरा गये थे, वाह ! वाह ! तब वे गोपीनाथ कहाते थे, उन्हें यह पदवी छोटी मालूम दी होगी। तभी तो वे ब्रज छोड़ कर गये हैं, गोपियों का पति कहलाने में उन्हें लज्जा प्रतीत होती थी, अब दासी का अधरामृत पीकर यदुवंश पवित्र हो गया होगा। क्या कहने, लज्जा के मारे डूब भी नहीं मरते।

परिकर, अतिशयोक्ति, काव्य लिंग अलंकार हैं, विशेष चमत्कार व्यंजना का है जो उपालम्भों की छटा से काव्य की शोभा और भावुकता बढ़ा रही है।

कोऊ कहे.....गाहक नाहि।

कोई गोपी बोली हे भ्रमर ! श्याम सुन्दर तुम्हारे गुरु बाबा जी हैं तुम दोनों ने कुब्जा दासी के शरीर रूपी तीर्थ में जाकर इन्द्रियों का मेला किया, अर्थात् उसके साथ भोग विलास करके तुमने अपनी इन्द्रियों को तृप्त कर के पवित्र कर लिया। तुम तो वासना के ही कीड़े हो, मथुरा भुला कर यहां गोकुल में क्या करने आये हो, यहां तो सच्चे प्रेमी रहते हैं, तुम्हारा गाहक कोई नहीं है यहां। जाइये वापस लौट जाइये।

इस में बहुत सुन्दर उपहास पूर्ण-सांग रूपक है। कृष्ण को साधु और उद्धव को उनका चेला बताया है, साधु लोग एक स्थान पर न रह कर मेलों और तीर्थों में घूमा करते हैं। परन्तु दूसरी पंक्ति में कुछ अश्लीलता सी आ गई है जो उपालम्भ रूप होने से विशेष नहीं खटकती।

यहि विधि मिरि.....केसव कृष्ण मुरारी।

नन्द दासजी कहते हैं कि इस प्रकार सभी गोपियां श्रीकृष्ण का स्मरण करके उद्धव के प्रति कहती रहीं उसको भ्रमर के नाम से पुकारा कहते समय अपने कुल का विचार और स्त्री-जनोचित लज्ज भी

मुलादी। इसके पश्चात् सभी व्रज की स्त्रिां एक साथ ही फूट कर रो पड़ी, हे केशव हे कृष्ण हे दयालु हे स्वामी हे मुरारी ऐसा कह कर पुकारने लगी। उनके इस प्रकार विलाप को देख और सुनकर हृदय फट चला।

प्रेम प्रसंशा.....इनके दरसन मात्र।

उद्धव के हृदय में गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए जो, शुद्ध भक्ति प्रकट हुई उससे उन के हृदय में ज्ञान की विविधा या संशय था गोपियों का अपने प्रति ऐसा कहने से जो अपने प्रति कुछ घृणा थी। और उनकी बातें सुन २ कर जो विमूढ से होगये थे। शांत हो गई। कहने लगे, मुझे तो बड़ा आश्चय हुआ है. ये सब तो हरि की अपनी हैं. उनकी दया की अधिकारणी हैं। मैं तो इन के दर्शनों से ही सफल हो गया मेरा सारा ज्ञान का अभिमान मिट गया है।

जो ऐसे मरजादे..... .....प्रेम परे हैं साँच।

उद्धव जी कहते हैं कि जो लोग इस प्रकार कुल की व लोक वेद की मर्यादा का बिचार छोड़ कर मोहन का ध्यान करती हैं, वे भला प्रियतम का परम आनन्दमय प्रेम का पद क्यों न पायें। वास्तव में ज्ञान योग और यज्ञ आदि कर्मों से सच्चा प्रेम बढ़कर है, परन्तु मेरी बुद्धि का अन्तर देखो कि सत्य प्रेम के आगे मैं योग और ज्ञान को अधिक महत्व दे रहा था, जसे कि हीरे के आगे कांच को महत्व दिया जाय। इस में उदाहरण अलंकार है।

धन्य धन्य..... ..लहत न आधौ आप।

उद्धव जी कहते हैं कि उन लोगों को धन्य है जो इस तन्मयता से हरि को भजते हैं। अन्यथा पारस के समान शुद्ध प्रेम के बिना भगवान् को कोई कैसे पासके। मेरे इस छोटे से ज्ञान ने हृदय में अभिमान की उपाधि खड़ी करदी थी, अब मुझे ज्ञान हुआ कि बड़े २ महात्मा भी व्रज-वासियों के प्रेम का आधा भाग भी नहीं रखते। अर्थात् उन का

ज्ञान व्रजवासियाँ के प्रेम के अर्धभाग के बरा बर भी महत्व नहीं रखता वे लोग व्यर्थ ही परिश्रम करके थक गये।

पुनि कहि परसत पांय.....सब सुख जीवन मूरि।

फिर बोले कि देखो मेरी मूर्खता कि पहले मैंने इन्हें अशुद्ध या पतित समझ कर अपने पैर छूने से भी रोक दिया था परन्तु इन्हों ने भौरे के नाम से पुकार कर मेरी निन्दा कर डाली। अब तो मैं इस व्रज-भूमि के मार्ग में रहने वाली पैरों की धूल बन कर रहूंगा, जो कि चलते फिरते इन लोगों के चरण मुझ पर पड़े। वह सुख जीवन का मूल या सार होगा और मुनिजनों को दुर्लभ है। इस में अर्थापत्ति अलंकार है।

कैसे हो हुं.....माँगौं व जाय।

उद्धव जी कामना करते हैं कि मैं किस उपाय से व्रज की लता, बेल या वृक्ष बन जाऊँ जो कि अपने कार्य से आते जाते स्वाभाविक रूप से इन लोगों की परछाईं मुझ पर पड़ा करे। परन्तु यह बात मेरे अधिकार की तो है नहीं, जो कि मैं कोई उपाय कर सकूँ। हाँ यदि भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हों तो मैं उनसे जा कर यह वरदान अवश्य मांगूगा कि हे भगवान् कृपा कर यह वर दीजिये।

करुणामई रखा तो..... वोकों सेला कूप।

उद्धव जी मथुरा पहुँच गये, वहाँ जाकर श्रीकृष्ण से बोले कि हे भगवान आपकी दयालुता और रसिकता सब झूठी बात है, अर्थात् आप बड़े दयालु हैं यह बात झूठ है जब तक कोई आपके प्रेम में नहीं पड़ता तभी तक आपकी दयालुता का भ्रम बना रहता है। वास्तविकता का ज्ञान प्रेम होने पर ही पाता है। मैंने व्रज में जाकर आपका निर्दयी स्वरूप जान लिया है, जो प्रेम के द्वारा एक मात्र आपका आश्रय लेते हैं, आप उनको शोक के कुँए में डाल देते हैं। यह भला कौनसा धर्म है

पुनि पुनि कहे.....अब ही नेह सनेहु।

उद्धव बार बार श्रीकृष्ण से कहते हैं कि चलो, वृन्दावन में रहेंगे, गोपियों का संग कर उनके समूह का अनुभव करें। आप सारे कार्य छोड़ कर पहले उन्हें सुख दीजिये, नहीं तो सारा प्रेम सम्बन्ध छूट

जायेगा। फिर आप क्या करें गे। अर्थात् इस समय आपने उन पर दया न कि तो आगे पुनः कोई आपके प्रेम मार्ग पर न चलेगा। इस मार्ग का अपनाना ही बन्द हो जायगा।

सुनत सखा के.....भई पात।

नन्द दास जी कहते हैं कि उद्धव के वचन सुनते ही श्रीकृष्ण के दोनों नेत्र आँसुओं से भर आये प्रेम का आवेग ऐसा आयाकि उसके वश में होकर उन्हें अपने आपकी भी कोई सुध नहीं रहीं। आनन्द में वे ऐसे भोर हो गये कि उनके सांवले शरीर में रोम रोम में गोपियां रम गईं उनका सांवला शरीर कल्पवृक्ष बन गया और ब्रज बालायें उनके अग २ से उमड़ कर पत्ते बन गई

राम कृष्ण.....चंद चकोर।

नन्द दास जो कहते हैं, हे भाइयों प्रातः काल उठते ही राम कृष्ण का उच्चारण करो। रामचन्द्र जी अयोध्या के स्वामी हैं, हाथों में धनुष धारण किये हुए हैं ये श्री कृष्ण ब्रज के माखन चुराने वाले हैं उन के छत्र, चंवर और सिंहासन रूप राज-चिन्ह हैं भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न का संग रहता है इन के चिन्ह हैं लाठी मुकुट और पीताम्बर तथा ये नन्दकिशोर नित्य गौवों के साथ रहते हैं। श्री राम ने समुद्र में पत्थर तैराया था इन्हों ने इन श्रीकृष्ण ने अंगुली के नाखून की नोक पर पर्वत धारण किया। श्री नन्ददास कहते हैं कि सब कुछ छोड़ कर प्रभु का भजन करो जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर सब कुछ भुला कर नाचने लगता है। वाक्यार्थोपमा अलंकार।

हित हरिवंश

पृष्ठ६६.....शब्दार्थ

प्रपंच=विषय जाल, वंच=बचो, व्याल=सर्प, श्यामा=राधा, निकज=व्यर्थ, चकई=चकवी, आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा, तेज=बिजली, वियोगाग्नि सारस=चकवा, भाजन=पात्र, आध्यात्मिक अर्थ में शरीर, ईंधन=लकड़ी सर्षप=सरसों, धर=पर्वत।

हितहरिवंश.....नायो।

श्री हित हरिवंशजी कहते हैं, अरे मनुष्य, संसार के इन प्रपंचों से, विषय जाल के झंझटो से बचकर रह, यह सब संसार कालरूपी सांप का डसा हुआ है। अर्थात् संसार के जीवों और पदार्थों के नश्वर होने से ये विषम योग भी नश्वर हैं। अतः इन के फेर में न पड़। पूर्वोक्त बातों को समझ कर कि जगत् और उसके झंझट नश्वर हैं, श्रीकृष्ण और श्री राधा के चरण कमलों में शिर झुकाओ तात्पर्य प्रेणात्मक है।

चकई प्राण.....कहैजु चकई।

हे चकवी! प्रियतम के बिछुड़ने पर भी यदि प्राण हृदय में बने रहें तो उनका होना व्यर्थ है। हृदय में तो काम के बाण प्रहार कर रहे हैं, रात्रि का समय है, बिजली चमक रही है, बादल गरज रहे हैं, इस प्रकार की उद्दीपन सामग्री के होने पर भी तू निर्विकार भाव से बैठी है। तेरे मुख पर लज्जा का भाव भी नहीं आता। तेरे आंखों में आंसू भी नहीं हैं, तू भला प्रातःकाल होने पर चकवे को अपना मुंह भी कैसे दिखायगी। हितहरि-वंश जी कहते हैं कि भला विचार कर, व्यर्थ की बक २ कौन करे, सारस या चकवे को भी सन्देह है कि मेरे वियोग में चकवी के प्राण बने रहेंगे।

इस का आध्यात्मिक अर्थ हरि वंश जी की राधा कृष्ण के प्रति लगन प्रकट करता है। भाव यह है कि आत्मा का उस प्रियतम के बिना इस शरीर में रहना व्यर्थ है। संसार के विषय जाल घेरे रहते हैं, अनेक प्रलोभन लुभाने वाले हैं। इन सब से मन फिरा कर उस प्यारे के ध्यान में लगाना चाहिये। उसके विरह में जल कर यदि तड़फ २ कर हमारी आंखों में आंसू न आयें तो मरने के बाद जब उस प्यारे से साक्षात्कार होगा तो कैसे उसे मुँह दिखायेंगी। उस प्यारे को तो तेरा सच्चा प्रेम और लगन चाहिये। सब प्रकार का संग छोड़ कर उसके प्रेम में लीन होना चाहिये। आत्मा का यही कर्तव्य है।

ते भाजत कृत.....विष चाहत।

तूने इस मानव शरीर को अनेक वस्त्राभूषणों से सजाया है, उसमें

आत्मा का संचार किया है सरसों के परिमाण वाले मनोबल से तू कर्मों का परिपाक कर रहा है, पूर्व जन्म के पुण्य रूपी चन्दन से ईंधन (जलाने की लकड़ी) का कार्य ले रहा है। इस भूमि पर, इस कार्य क्षेत्र में तू इस शरीर रूपी सुनहरे हल को चला रहा है, बड़े कष्ट भोगता है, कर्म रूपी जल की मेंड बना रहा है या पानी से उसे सींच रहा है, परन्तु बोना विष चाहता है। विष के समान आत्मघाती दुष्कर्म कर रहा है।

हित हरिवंश कहते हैं, हे भाई, थोड़ा इस मनुष्य देह का विचार करके गुरु के चरणों का आश्रय लेकर यदि तुझ से हो सकता है तो सब झंझट छोड़कर श्रीकृष्ण का उच्चारण कर।

भाव यह है कि मनुष्य शरीर बड़े पुण्यों के प्रभाव से प्राप्त होता है, यह पृथ्वी कर्मभूमि है, इसमें इस शरीर का उपयोग दुष्कर्मों में न करना चाहिये। अपने उद्धार के लिये अच्छे कर्म करने चाहिये। किसी गुरु के बताये मार्ग के अनुसार सब सांसारिक झंझट छोड़ कर भगवान् का स्मरण करो। पहले और इस पद में रूपकातिशयोक्ति है।

तातें भया मेरी.....कृष्णगुन सचु

हे भाई तुम्हें मेरी सौगन्ध है, इसी कारण तू हरि के गुणों का संचय कर, अर्थात् उनके गुणों का गान कर। तू मेरी शिक्षा सुन कुत्सित अर्थात् निंदित व्यर्थ के विषय विकारों, दूसरे के धन और पराई स्त्रियों से बच। जो लोग मणिगण अर्थात् धन के लोभ में व्रज पति श्रीकृष्ण को छोड़ते हैं। उन से प्रेम नहीं करते, वे वास्तव में हाथों में हीरा छोड़ कर कांच लेते हैं संसार में सभी लोग कपटी दुष्ट, कलियुगी और नीच हैं, जो ऐसा जानकर उन का संग छोड़ देता है वह इसी लोक में और परलोक में सम्पूर्ण सुखों का अनुभव करता है इस लिये तुझे मेरी सौगन्ध तू कृष्ण के ही गुणों का कीर्तन कर। निश्चय अलंकार है।

पद्य.....५

अरे भाइयों, मनुष्य शरीर पाकर व्रज के स्वामी श्री कृष्ण को भजो अरे मूर्ख कड़छी हाथ में लेकर भी हाथ जलाते हो। गर्म खाद्य पदार्थ

को चलाने या निकालने के लिये कड़छी की सहायता ली जाती है, जो कड़छी होने पर भी वैसे ही हाथ लगा कर जलाये, वे मूर्ख ही हैं। ऐसे ही मानव शरीर पाकर भी जो हरि भजन न करके दुष्कर्म करते और अपनी दुर्गति कराते हैं, वे मूर्ख ही हैं। हित हरिवंश कहते हैं कि विषयानन्द के झंझट और मोह के प्रभाव में पड़े व्यक्तियों का उद्धार कठिन है। बिना सोने या धन के पासे नहीं चलते।

मोहनलाल.....मति काँची।

मैं मोहन प्यारे के रंग में रंग गई हूँ। मेरी बात दसौं दिशाओं में फैल गई है, इस लिये मेरे बीच में कोई न आये। मुझे रोकने की किसी को आवश्यकता नही है। कोई असंख्य पति क्यों न बनाले परन्तु यह विचार सच्चा नहीं। प्रेम वास्तव में एक से ही हो सकता है, इस लिये एक ही पति बनाना चाहिये। कुल मर्यादा के नाम पर यह प्राण या जीवन भले ही चला जाय, परन्तु मैं तो सबके प्रत्यक्ष नाच चुकी है। भाव यह है, लोक मर्यादा के नाम पर समाज कितना ही विरोध करे, परन्तु मैंने चोरी से प्रेम नहीं किया है। जागते सोते वह प्रियतम मेरे हृदय में ही रहता है, जैसे सोने के साथ पच्चीकारी रहती है, हित हरिवंश जी कहते हैं कि मैं किस से डरूँ, कच्ची बुद्धि की नहीं हूं जो किसी के डर से अपना प्रेम छोड़ दूँ। उपमा अलंकार व अर्थान्तर न्यास हैं।

शब्दार्थ... ... ...पृष्ठ ६८

छियैं = छूकर, कदम्ब = समूह, बिहार=जल क्रीड़ा, भेब = भेद, अंस = कन्धा, अन=अन्य।

पद्यार्थ—रहौ कोऊ... ... ...रसहि लिये।

कोई किसी में मन लगाये रहो, किन्तु मेरे स्वामी तो राधा कृष्ण हैं, मैं उनके चरण छूकर सौगन्ध खाता हूं। जो दूसरे अनेक अवतारों की उपासना करते हैं, हृदय में जिन्होंने अटल संकल्प कर लिया है। वे भी जल विहार की लीला का आनन्द पान कर उमंग में मर्यादा से बाहर हो जाते हैं। जो लोग रत्न को खोकर घर २ घूमते फिरते हैं;

उनके इस प्रकार जीवन से क्या लाभ है, अर्थात् जो वास्तव में उपासना योग्य श्रीकृष्ण को भुला कर अन्य देवनाओं को खोजते फिरते हैं, उनके द्वार पर ठोकरें खाते हैं, उनका जीवन व्यर्थ है, हित हरिवंश जी कहते हैं कि इस कृष्ण लीला का आनन्द पाने के अतिरिक्त और कहीं भी, किसी की उपासना में भी सुख प्राप्त नहीं होता। अर्थापत्ति व अन्योक्ति हैं।

आरति कीजे.....हरिवंश गावे।

श्रीश्यामसुन्दर की आरती करो, जौकि नन्द के कुमार हैं, राधा के पति हैं, भक्ति का दीपक बनाओ, उसमें प्रेम की वत्ती डालो, रात दिन महात्माओं कीं संगति में रहो। यह आरती व्रज युवतियों गोपियों के मन को बहुत ही भाती है, इस लिये हित हरिवंश जी श्रीश्याम सुन्दर की लीला गाते हैं।

तनहि राखु.....कल्पतरु सव।

हित हरिवंश जी कहते हैं कि जो लोग सुख चाहते हैं, उन्हें सज्जनों कीं संगति में शरीर को और मन को प्रेमरस का पान करने में लगाना चाहिये। कल्याण-कामना से एकमात्र श्रीकृष्ण रूपी कल्पवृक्ष का सेवन करना चाहिये। रूपक अलंकार है।

निकसि.....हितहरिवंश।

राधा और कृष्ण लीला के कुञ्ज से परस्पर गल बांही डाले निकल कर बाहर खड़े हो गये। हित हरिवंश उस समय दोनों के मुख कमल का दर्शन करने लगे। उपमा, रूपक सन्देह संकर।

सब सौं .. ..सुख नाम।

हित हरिवंश कहते हैं कि मनको सब सुखों की ओर से निष्काम रखो, बृन्दावन में विश्राम करो, वहीं जीवन बिताओ, हृदय में प्यारे राधावल्लभ का ध्यान रखो और मुख में दिन रात उनका नाम जपो।

रसना कटौ.....जसु बैन।

जो जिह्वा राधा कृष्ण को छोड़ कर और किसी का नाम रटती है, वह कट जाय, उनके अतिरिक्त और को देखने वाले नेत्र फूट जायँ,

जो कान श्रीराधाकृष्ण के अतिरिक्त और के गुण कीर्तन सुनते हैं वे फूट जायँ, राधा का यश न गाने वाली वाणी नष्ट हो जाय '

शब्दार्थ.....पृष्ठ ६६

नीकें = अच्छा, पुलिन = तट, कल = सुन्दर, मुरज = ढोलक, रस सिन्धु = आनन्द का समुद्र, वितान = चान्दनी।

पद्यार्थ—आज बन.....जग छायो

आज बन में रास लीला अच्छी बनी। यमुना तट की पवित्र रेतीली भूमि पर श्रीकृष्ण ने मधुर वंशी बजाई। गोपियों की सुन्दर तगड़ियों की छोटी घण्टियों की और पायलों की झनकार सुन कर बन के पक्षी और मृग भी आनन्दित हो गये। श्री घनश्याम ने ब्रज की युवतियों के बीच में सारंग राग का गान किया। साथ में मृदंग, उपंग, ढोलक और डफली आदि अनेक बाद्य बज रहे थे। वृषभानु की पुत्री राधा ने अपने अनेक प्रकार के नृत्यों द्वारा अंग भंगियाँ (हाव भाव) दिखाईं। आंखें और भृकुटियां मटका कर चतुराई से अभिनय करके आनन्ददायी नाच किया, तातेयी, ततथेयी की ध्वनि के साथ नित्य नई २ गति से नाच कर अपने प्रियतम श्री कृष्ण को रिझया। देवता लोग प्रसन्न होकर फूल बरसा रहे थे, देवराज इन्द्र ने नगाड़ा बजवाया। हित हरिबंश कहते हैं, सहृदय राधा की यश रूपी चांदनी (चन्दोवा) संसार में छा गई।

जोई जोई.....न्यारे।

राधा कहती हैं कि जो कुछ प्रियतम कृष्ण लीलायें करते हैं, मुझे वही प्यारा लगता है और जो मुझे अच्छा लगता है, प्यारे कृष्ण भी वही करते हैं। मुझे तो प्रियतम के नयनों में स्थान ही भाता है और प्यारे भी मेरी आंखों के तारे बनना चाहते हैं। मुझे अपने प्रियतम शरीर से, मन से और प्राणों से प्यारे हैं और मेरे प्यारे भी करोड़ों प्राण मुझसे हार गये हैं। अर्थात् मुझ पर अपने प्राण न्योछावर कर चुके हैं। हित हरिवंश जो कहते हैं कि हंस और हंसिनी के जोड़े के समान सांवले और गोरी कृष्ण तथा राधा दोनों एक तन, एक मन और एक प्राण हैं, भला जल और तरंगों को एक दूसरे से कौन अलग

कर रहता है। उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं।

सुनि मेरो..... .....जसु गावे।

हे सुन्दरी राधा, मेरा वचन सुन, तूने तो अथाह आनन्द का समुद्र पा लिया है। श्री सच्चिदानन्द स्वरूप कहे जाते हैं। जिसके लिये ब्रह्मा और शंकर भी शिर झुका कर नमस्कार करते हैं, तैने उससे भी बन के फूल चुनवा लिये। तेरे रूप का वर्णन करना असम्भव है, हित हरिवंश कुछ २ यश गाते हैं।

सरद बिमल.....सकल सुख धामा।

शरद ऋतु का निर्मल आकाश है, चन्द्रमा उदित हो चुका है, मीठी २ मुरली बज रही है, घनश्याम तमाल के वृक्ष बने बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं, ब्रज बाला राधिका सोने की लता लगती है। अनेक आभूषण पहने हुए हैं, रंग विरंगी साड़ियां हैं। नारियों के अङ्गों से उबटने की सुगन्ध फैल रही है, आकाश से देवताओं की पत्नियां प्रसन्न होकर फूल बरसा रही हैं। आनन्द से आकाश में बजाये गये नगाड़ों की सुन्दर ध्वनि सुनाई दे रही है। हित हरिवंश कहते हैं कि श्याम सुन्दर आनन्द में मग्न हैं, वे राधावल्लभ हैं और सम्पूर्ण सुखों के धाम हैं। रूपक अलंकार है।

आजुनीकी.....बड़ भागरी।

आज तो चतुर राधिका अच्छी सजी है। ब्रज की युवतियों के समूह में रूप, चातुर्य, शुभ शील, शृंगार और उदारता आदि सभी गुणों में सबसे बढ़कर है। दाहिने हाथ में कमल लिये है और बायां श्रीकृष्ण के कन्धे पर है, सखियों के साथ मधुर स्वर मिलाकर राग गा रही है। हित हरिवंश कहते हैं कि सम्पूर्ण विद्याओं के सहित वह बड़ी भाग्य शालिनी राधा एकान्त में नये २ सुन्दर कुञ्जों में श्रीकृष्ण से मिलती है।

मधुरितु वृन्दाबन.....जुग जुग राज।

बसन्त ऋतु आई है। वृन्दावन में बड़ा आनन्द छाया हुआ है, चतुर राधिका जो नई अवस्था वाली है। कुशल किशोर अवस्था वाले

श्रीकृष्ण से मिल कर सुशोभित हो रही है। दोनों को जोड़ी चमेली और आम की बौर से सजे हैं। उनके मधु या मकरन्द के लोभ में उड़ २ कर भौंरे थक रहे हैं, माधवी लता के फूलों का पराग उड़ २ कर गुलाल का काम कर रहा है। चम्पा, मौलसिरी के समूह, अनेक प्रकार के कमल और केवड़े के फूलों से पृथ्वी मतवाली हो रही है, कामदेव भी प्रसन्न है। मन्द, सुगन्ध और शीतल, तीनों प्रकार का आनन्द देने वाला वायु चल रहा है। आम के वृक्षों पर बौर आये हुए हैं। कोयल और तोते बोल रहे हैं, यमुना का पवित्र तट है, जिस पर घने और सुन्दर कुञ्ज हैं। आनन्द दायक नव पल्लवों का बिछौना बिछा हुआ है। मंजीर, ढोलक, डफली, बंशी, मृदङ्ग, उपंग, बीणा और मुहचंग ये सभी बाजे बजाये जा रहे हैं। कस्तूरी, चन्दन, केशर और गुलाल के लेप से मुख सुगन्धित हैं। सैकड़ों गुना अगर से वस्त्र भी सुगन्धित हैं, श्रीकृष्ण रसीला धमाल राग गा रहे हैं जिसे सुन कर पक्षी और मृग भी आनन्दित हैं और नदी का पानी बहना बन्द हो गया है। हित हरिवंश जी कहते हैं हंस और हंसिनी के जोड़े की भांति दोनों युग २ तक प्रेम से मिलते हुए राज्य सुख भोगें।

शब्दार्थ—पृष्ठ ७१

केतकी = केवड़ा, मेदिनी = पृथ्वी, मनोज=कामदेव, पिक=कोयल, कीर = तोता, मलयज = चन्दन, कुंकुम =केशर, कदम्ब=एकवृक्ष, चन्द्रका = मोर के पंख, विधु=चन्द्रमा, सौभग=सौभाग्य, सुहाग, सीमन्त = मांग, कोदण्ड = धनुष।

ब्रज नव तरुनि.....विस्व युरति दवनी।

आज ब्रज की नव युवतियों के समूह में सिरमौर राधा बहुत ही सुन्दर बनी है, पैरों के नखों से चोटी तक प्रत्येक अंग के सौन्दर्य से उसने अपने स्वामी श्याम सुन्दर को मोह लिया है। गुंथे हुए बालों वाली चोटी और सुनहरे कमल के समान मुख ऐसे सोहते हैं, मानों केश रूपी मोरपंखों के बीच के आधे चन्द्रमा को सांप ग्रस रहा हो। मांग में नाली के रूप से सौभाग्य रस (सिन्दूर) बह सा रहा है।

(मांग की उपमा नाली से और सिंदूर की लम्बी रेखा को सौभाग्य रस का बहना बताया है, इसीलिये सिन्दूर न कहकर सौभाग्य रस कहा है।) राधा की भौंहें कामदेव के धनुष हैं, आँखें तीर हैं, काजल की काली लकीर उस तार की नोक है, माथे पर तिलक है, कनपटी पर तातंक या कर्णाभूषण लटक रहे हैं, नाक पर मोती शोभित है, (नथ में मोती पिरोया गया है) दांत कुन्द के फूल से हैं, होंठ नये किसलयों से रसीले हैं। इन सभी अंगों से राधा प्रियतम के मन कों शान्ति देने वाली है। हित हरिवंश जी कहते हैं, निर्मल और अतुल कीति से राधा प्रशंसा प्राप्त कर रही है। संसार भर के पापों को दूर करने वाली वह सुनने में सुख देने वाले गीत गारही है। उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा तीनों अलंकार हैं।

प्रति न काहु.....कौन अपनयौ हारै।

प्रेम किसी की मर्यादा का विचार नहीं करता, वह अच्छा बुरा कुछ नहीं देखता।

यह अच्छे बुरे मार्ग जाता २ थक जाता है, इस को भला कौन रोके। जैसे वर्षा ऋतु की नदियों में पानी बढ़ जाता है और वह सीधा समुद्र की ओर चल देता है, उसे कोई नहीं रोक सकता। और जैसे बीणा के शब्द पर रीझे हुए हिरन को शिकारी तीर मारता है, हित हरि बंश जी कहते हैं कि और जैसे दीपक पर पड़ कर पतंगा (परवाना) अपना शरीर जला देता है, इसी प्रकार कामकला कुशल नायक किशोर मोहन के वियोग में ऐसी कौन है जो आपा न खो बैठे। अर्थात् जैसे हिरन बीन के स्वर के प्रेम पर जान दे देता है, पतंगा दीपक की लौ पर शरीर जला देता है, ऐसे ही कृष्ण के बिना गोपियां भी अपने आप को भूल जाती हैं। यहां अर्थान्तरन्यास, वाक्यार्थोपमा अलंकार है।

देखौ भाई.....दिन विथकित रस सागर।

हे भाई, देखो सौन्दर्य की सीमा है, अर्थात् इस सौन्दर्य की पराकाष्ठा को देखो।

ब्रज की नव युवतियों का ममूह इस चतुर राधा की शोभा देख कर

लज्जा से गर्दन नीची कर लेती हैं। यदि कोई व्यक्ति करोड़ों कल्पों तक जीता रहे और उसे करोड़ो जिह्वा मिल जायं, तो भी राधा के सुन्दर मुख कमल की शोभा का वर्णन नहीं कर सकता। देव लोक, मृत्यु लोक और पाताल में भी राधा के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य की उपमा किस सुन्दरी से दें, यह सोच कर कवि लोग मन में भय खाते हैं। हित हरि वंश जी कहते हैं कि जिस की भौंह के एक संकेत के कारण प्रताप, रूप, गुण, किशोर अवस्था, और बल से प्रकाशमान प्रेम के समुद्र श्री कृष्ण भी पशु के समान विवश और थके से रहजाते हैं। इस पद्य में अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति, रूपकोपमा सन्देह संकर, अर्थापत्ति आदि अलंकार हैं। अद्भुत रस की अभिव्यक्ति होती, जिस का आलम्बन राधा और आश्रय कवि या पाठक है

प्रथमजथामति.....तोरति वक्ति जाति।

हित हरिवंश कहते हैं, मैं सर्व प्रथम अपनी बुद्धि के अनुसार अत्यन्त सुन्दर बृन्दावन को प्रमाण करता हूं। जो कि श्री राधा की कृपा के बिना सब के मन के लिए अगम्य था प्राप्त न होने योग्य है अर्थात् राधा की कृपा के बिना उसका ध्यान में भी दर्शन सुलभ नहीं जाना तो दूर रहा। यमुना का सुन्दर जल जिसे सदा सींचता है शरद ऋतु में ही जहां बसन्त रहता है। अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध पर भौंरे भंड राते रहते हैं, आम के लाल २ पल्लवों पर कोयल और तोते सुन्दर शब्द कर रहे हैं। सखियाँ आनन्द से विभोर होकर नाच रही हैं। धीमी २ सुगन्धित और ठण्डी आनन्द देने वाली वायु चल रही है। जहाँ तहाँ लाल नीले और सफेद फूलों के गुच्छे कलाये छुए हैं, जहाँ किशोर अवस्था वाले प्रेमी राधा और कृष्ण बाँहों से एक दूसरे का आलिंगन किये नींद से जागे हुए रास क्रीड़ा करते हैं। खडताल वाव ढोलक, डफली और मृदंग मीठी ध्वनि से बज रहे हैं। बांसुरी मुख चंग और रसीली बांतें पैरों की गति को (नृत्य में होने वाली) सूचित करती है, दोनों मिलकर और गौरी राग का आलाप भर कर चर्परा गीत गाते है। बल पवक अपने नेत्र और भौंवों हो के धनुष बाण से मन रूपी मृग को

बाँधे डालते हैं, भूलते इधर उधर जाते हैं, हो २ करके होली गाते है। और आनन्द में किलकारी मारते है सुन्दरी रासयां या रसीले नन्दलाल पर गुलाल डालती है तो प्यारा कृष्ण भी अंगो को ताक २ कभी २ दोनों चन्दन के पेड़े पर डाले हुए हिंडोले में बैठ कर भूलते हैं। और प्रसन्न हो कर क्रीड़ा करते हैं। उसकी हितैषिणी सखियों का आनन्द मन में नहीं समाता अपने नेत्रों का सुखमय दृश्य देखकर वह तिनके तोड़ती हैं, अर्थात् चतिक होती हैं और न्यौछावर हो जाती है।

मोहन मदन त्रिभगी.....बनमाहीं।

मोहन श्री कृष्ण काम को भी मोहन वाले हैं, वे त्रिभंगी हैं, मुरली बजाते समय टेढ़े होने वाले हैं। मुनियों के मन को भी प्रेम में रंग देते हैं। वे मन मोहन साक्षात् सच्चिदानन्द घन हैं। गुणों से गम्भीर हैं। अथाह हैं गोपाल हैं, इन्द्रियों केस्वामी हैं उनके शिर पर मुकुट हैं। कानों में कुण्डल हैं हृदय पर वन माला जो कि कुन्द, कमल, मन्दार और तुलसी की बनी और गर्दन से लेकर पैरों तक लटकने वाली होती है, सुशोभित है। शरीर पर सोने चांदी के तारों से जड़ा पीताम्बर पहना हुआ है, कमर में सुन्दर घन्टियों वाली तगड़ी है, नख सूर्य से प्रकाश मान हैं चरण कमल से हैं इस प्रकार वे टेढ़े होकर भी काम को मोहन वाले हैं। वे मोहन वंशी बजाते हैं और उसकी ध्वनि से ब्रज की बालाओं को बुला लेते हैं। ब्रज वधुएँ पति, स्वजन और घर बार भुला कर वंशी की ध्वनि सुनते ही आगई, मदन गोपाल श्रीकृष्ण के दर्शन करके उनका काम पीड़ा से हुआ सन्ताप दूर हो गया। प्रसन्न मुख से तिरछी चितवन (कटाक्ष) से देखकर रसीली और मिठी ध्वनि में गाती हैं, श्याम के समान मधुर वंशी होठों पर रख कर मोहन वाली बंशी बजाते हैं।

इस प्रकार निर्मल कल्प वृक्ष की छाया में श्रीकृष्ण ने ऐसी क्रीड़ा की। कल्पवृक्ष की सुन्दर छाया थी शरद ऋतु की मनोरम रात्रि थी चन्द्रमा खिला हुआ था, शीतल, मंदी और सुगन्धित वायु चल रही थी ऐसे स्थान पर नन्द नन्दन रास क्रीड़ा कर रहे थे। विचित्र खड़ताल,मृदंग

और तागड़ी की घंटियों का मधुर शब्द हो रहा था, यमुना के किनारे रसिया और आनन्द के समुद्र की श्रीकृष्ण ने बन में रास लीला की

आनन्द घन

जा हितमात ....पूरनकारी ।

जिन के कारण माता का नाम यशोदा पड़ा अर्थात् यश को देने वाली ये अर्थ सत्य हुआ। वंशका नाम चन्द्र कला का कुल या समूह धारण करने वाला हुआ अर्थात् चन्द्र बंश कहलाना सफल हुआ। क्यों कि नाम भी कृष्णचन्द्र था यदुवंशी भी चन्द्रवंश के अन्तर्गत कहाता है, श्रीकृष्ण मोर के चंद्रो का मुकुट पहनते थे, इस कारण वंश का चन्द्र-वंशी होना चीरतार्थ है, अर्थात् ऐसे महापुरुष के जन्म से चन्द जैसे प्रकाशमान वंश की प्रसिद्धि हुई। जिनकी मूर्ति शोभा के समूहवाली अर्थात् अनन्त सुषमा विशिष्ट है। अनुपम रंग या रूप से अनंग काम को भी जीवित कर देती है, जीवित व्यक्ति उसे देखकर मुग्ध हो जाय इस में क्या आश्चर्य है,

अत्यन्त प्यारे हैं प्यारे को तिर्थजान प्राण वाचक शब्द का प्रयोग किया है जो लक्षण से प्राण के समान क्षण भर के लिये भी दूर न करने योग्य प्रियतम रूप अर्थ को अभिव्यक्त करता है। असानी से रीझजाने वाले, इस से उनका उपासना योग्य होना सूचित करता है, श्रेष्ठ विलास या क्रीडा वाले और रास लीला करने वाले, अर्थात् शीघ्र ही सत्य प्रेम और अनन्यता को आनन्दित किया, ऐसे हे कृष्ण आप आप मेरे मनोरथ भी पूर्ण कीजिये, मेरे मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ आप ही हैं। इससे वे अटूट विश्वास को भावना सूचित करते हैं। इन विशेषणों के अर्थपूर्ण होने से यहाँ परिकार अलंकार है। व्यंजना का चमत्कार को स्थष्ट ही है।

मेरोई जीव.....पावकही दहनौ ।

यदि मेरा जीवन, मेरा प्राण ही मुझे मारना चाहे तो हे प्यारे, आप से क्या कहूं, अर्थात् आप तो अभी प्रत्यक्ष नहीं हुए हैं, परन्तु प्राण तो हृदय में हैं, वे भी जरा कल नहीं पड़ने देते, दूसरे यह अब

भी है कि उन्हीं को अपना जीव या प्राण बताता है, यदि वही अपने वियोग में मारना चाहे तो क्या कहा जा सकता है. पराये को कुछ कहा सुना जाता है, अपना यदि स्वपं उपेक्षा करते कहने का अवकाश नहीं रहता। आगे कहते हैं आँखों ने भी यह स्वभाव छोड़ दिया है। भाव यह है कि आँखे चुप चाप रहने का स्वभाव छोड़ चुकी हैं, वह भी आतुरसी हैं, कुछ खोजती रहती हैं मेरे भोगों का लहना ही ऐसा है, भाव यह हैं कि मेरे भाग्य में यही भोगना बदा है कि अपने सभी साथ छोड़ रहे हैं। घनान्द जी कहते हैं कि अब सब ओर से उदासीन होकर सब ओर से मन को खींच कर कैसे रहें अब तो एक आप की आशा है, भाव यह है कि और सब से तो उदासीन होना कठिन ही नहीं असम्भव है इसी भाव को प्रकट करते हैं कि यदि ये सभी जान कर भी आप अनजान बने मेरी वदेना को न समझें तब तो बिना आग के ही जलना पड़ेगा। आपके वियोग का दुःख अनन्त काल तक जलायेगा। आइन कदेना जानने पर उस ओर सहानुभूति रखने वाले से हो सकती है, जो उसे जान कर भी अनजान बन जाँय उन से तो आशा ही निर्मूल हो जाती है। इस लिये बिना आग के जलना पड़ता है। इस पद्य से घनान्दन अपनी तन्मयता और अन्यता प्रकाशन करते हैं। वियोग की अन्तिम अवस्थाओं का सूक्ष्म निरूपण है। अर्थापत्ति, विशेषोक्ति और विभावना अलंकार स्पष्ट है।

इनबाटपरी.....बातनि जी जिएजू।

आप इस ओर की सुधि ही भूल गये अब भला आप को उलाहना कैसेदें, जब कोई अपने को भूल ही जाता है, उस समय उलाहने का प्रभाव नहीं होता, वह उचित भी प्रतीत नहीं होता है, यह प्रेम मार्ग का रहस्य है। ऐसी अवस्था में तो केवल आपकी आशा पर जीना पड़ रहा है। और कोई उपाय ही नहीं है, उदाहरण में मेघ और चातक का उल्लेख करते हैं, चातक मेघ की आशा में रहता है, प्यासा रहता हुआ केवल 'पीव' 'पीव' की रट लगता है परन्तु मेघ उस की ओर कितनी उपेक्षा दिखाता है, तथापि चातक की अशा नहीं टूटती। वही दशा

अपनी बताते हैं कि आप दया करें हमतो आपकी आशा पर जी रहें हैं। अबतो मैंने सब कुछ शिर पर चढ़ाली है, आप के मन में जो आये सो कीजिये इन बातों के ही लिये बादल और चातक का दृष्टान्त दिया है, क्योंकि बादल चातक पर उसके प्रेम के बदले बिजली और ओलों की वर्षा करता हैं परन्तु चातक पर कोई प्रभाव नहीं होता वही कहा है। कि आपकी जो कुछ कठोरता की बात है मुझे सब सह्य है, आप का प्रसाद मान कर शिर पर चढ़ालूगा। घनानन्द जी कहते हैं कि हे प्राण प्यारे सुजान कृष्ण, हम तो आपकी बातों के सहारे ही जीते हैं। आपकी ही कहानी कहते सुनते जीते हैं। बियोग में प्रिय के गुणानुवाद करना और सुनना भी समय बिताने का अच्छा साधन है प्रेमामार्ग ही ऐसा है। इस में व्यंजना की ही प्रधानता है।

जिआखन..... बिखपागनि।

जिन आंखों से रूप की पहचान हुई अर्थात् सर्व प्रथम जिन आंखों ने रूप को देखा और उसकी मार्मिकता को पहचाना, उनके लिये अब नित्य जलते हुए जागना ही रह गया हैं। प्रेम का आरम्भ देखने से ही माना गया हैं, जैसा कहा है चक्षुरागः प्रथम चित्तासंगस्तोथ संकल्प आदि जो हृदय प्यारे के बियोग की पीड़ा से भरा हुआ है उसकी लगन और कहाँ हो सकती है। यहाँ हित पीर शब्द में लाक्षणिक प्रयोग है, प्रिय की पीड़ा नहीं हो सकती, इस लिये कारण कार्य सम्बन्ध से हित की हित वियोग जनित में लक्षण है जो प्रियके प्रति अटूट लगन और आसिक्त का सूचक है, इसके द्वारा चित्तसंग नामक दूसरी वियोगवस्था भी ध्वनित होती है। घाननन्द कहते हैं कि हे प्यारे सुजान कृष्ण, सुनिये अर्थ यह है कि आपतो भलि प्रकार सब कुछ जानते हैं और जान बूझ कर अनजान बने हुए हैं पर कम से कम सुन तो लीजिये इस हृदय पर नित्य की विहाग्नि के कारण दुःख के दाग लग गये हैं, भला यह समझ लीजिये कि सुख में अर्थात् आप के मिलन सुख के समय आपका मुखचन्द देखे बिना पदनखों से लेकर शिर की चोटी तक विष भरा हुआ है। जैसे जहर चढने पर सारे शरीर में चीटी सी दौड़ती है,

यही दशा है। उसकी औषधि केवल आपका मिलन और मुखरूपी चन्द्र का दर्शन हैं। चन्द्र का आरोप बहुत ही सार्थक है। क्यों कि चन्द्रमा को सुधांशु कहा जाता है, उसमें अमृत है, शरीर में फैले विष को अमृत ही दूर कर सकता है। सम्भव हैं, अमृत की एक दो बूदों से पूर्ण चेतना उपलब्ध न हो, अत. चन्द्रमा की ही आवश्यकता मानी है। कि यथोचित उपयोग हो सके। इस पद्य में विनोक्ति परिकर और रूपक अलंकार है, मुखचन्द्र में उपमा रूपक का संदेह नहीं है। विषशमन में चन्द्रका ही उपयोग हो सकता है, मुख का नहीं। रूपक का ही साधक प्राप्य हैं॥

जीवकी बात..... .....मोहन लागौ।

घनानन्द जी कहते हैं, अपने प्राणों पर जो बीत रही है, कैसे प्रकट करें, प्रकट उसके आगे की जा सकती है, जो न जानता हो, परन्तु जो पहले ही जानता बूझता हो और अनजान बना हुआ हो, उसे क्या जताना। जो तीर मार कर भी मन में कुछ दुःख नहीं मानता, अर्थात् घायल तो कर देता है पर यह नहीं सोचता कि इसे कितनी वेदना होगी। उसे केवल सताने से प्रयोजन है, दुःख और वेदना की ओर उसका कोई ध्यान नहीं है। यदि रोकर दुखड़ा सुनायें तो भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह तो रोना और गाना एक सा मानता। निर्दयता की कितनी सीमा है। अपने आप सताना और कोई खेद न होना, जिसे रोने में दुःख का और गाने में आनन्द का भान नहीं होता, वह तो पत्थर की भांति कठोर है, उसके आगे तो वास्तव में रोना व्यर्थ ही सिद्ध होगा। आगे कहते हैं कि अब तो प्राणों पर ऐसी आबनी है कि कुछ भी नहीं भाता, मुंह के आगे अच्छा बुरा जो कुछ आता है उसे क्यों न त्याग दूं, अर्थात् अपना पराया कुछ भी नहीं मानो, इससे 'निवृति' या 'विरति' नामक वियोगावस्था की सूचना है, बस यही कहा जा सकता है कि प्राण मर लेंगे तो मरें, जीवन जाय तो जाय, जो कुछ व्यथा या वेदना सामने आयेगी सह लेंगे, झेल लेंगे परन्तु यही कहना पड़ता है कि विधाता करे निर्मोही से किसी का प्रेम न हो, जिसे किसी का

मोह ही नहीं, उस से मोह करके कोई क्या पायगा। केवल दुःख ही झेलना पड़ेगा। भाव व्यंजन और उपालम्भ गहरे हैं। निर्मोही शब्द यहां विशेष चमत्कारक है, उस से सारा सवैया संगत और स्पष्ट हो जाता है। अलंकार केवल परिकर व विशेषोक्ति हैं इनकी कविता में अलंकारों का चमत्कार गौण है, भाव व्यजना की प्रधानता है।

जिनको नित.....ए सोवति है।

ये आंखें जिनको पहले भली भांति देखा करती थीं, अब उन्हें देखने के लिये तरस २ कर रोती हैं, क्यों न हो, पहले बार २ और भली प्रकार देखती थीं, उनकी शोभा देखने पर ही टिकी रहती थीं, अब सर्वथा दर्शन दुर्लभ हो गये तो रोना आपही हो गया, पलक रूपी पांवड़े पांवों को प्रेम भाव से आंसुओं की धार से धोते हैं। स्वप्न में देख कर प्यारे के पैरों को आंसुओं की धार से धोती हैं, पलकों के पांवड़े बिछाती हैं, बहुत दिनों में मिलने के कारण धोना भी प्रेम भाव से, बड़े चाव से हो रहा है। घनानन्द जी कहते हैं कि प्यारे को स्वप्न में बिना पाये ही खो देती हैं, ये आंखें न खुली प्रतीत होती हैं, न बन्द बड़ा ही दुःख है कि कुछ होते ही जाग पड़ती हैं, परन्तु सोती हैं। विशेष—यहां विरह में होने वाली तन्मयता दिखाई है, आंखें प्रियतम ध्यान में मग्न रहती हैं, वे न तो बन्द ही प्रतीत होती हैं न खुली। क्योंकि उनसे आंसुओं की धार बहती रहती हैं, क्या वह सोती है, सोने में आंखें सर्वथा बन्द होती चाहियें, परन्तु ये बन्द नहीं हैं, सोये में तो स्वप्न भी आये, परन्तु नींद तो है ही नहीं, आंखें बन्द रहती हैं, पर प्यारे की ध्यान में जैसे ही मूर्ति दिखाई दी, वे खुल पड़ती हैं, जिस से जागने का भान होता है, स्वप्न में न होने के कारण प्यारे को नींद में में भी नहीं पा सकतीं, ध्यान में एक झलक दिखाई देती है जो आंख खोलते ही दूर हो जाती है। इस प्रकार बिना प्यारे को पाये ही खो देती हैं।

इस सवैया में ध्यानावस्था, संकल्पावस्था और जागरण का मार्मिक निरूपण है। 'नीकैं', 'चाइनि' बिन पायेइ खोवति हैं, 'कछ होइ जगैं

पर सोवति हैं, ये इस के जीवन हैं। उत्प्रेक्षा, विरोध और विभावना का रूपक के साथ अच्छा योग बना है।

मौविन.....लियौजू।

हे प्यारे, यदि तुम्हें मेरे बिना दूसरी कोई अच्छी लगी है, अर्थात् मेरे स्थान पर और कोई आपको रुचती है तो रुचे, मुझे उससे कोई ईर्ष्या नहीं है। परन्तु यह अवश्य ध्यान रखिये कि मैं आपके बिना नहीं जी सकती, इस शरीर का गुण रूप यौवन आदि अब कांटा बन गया है, अर्थात् कांटे के समान खटक रहा है जिसमें कि वियोग का दीया सा जला दिया है। हे प्रियतम ? मैं क्या कहूं, मुझे आपने ही पहले अपनाया था, अब पुनः क्या हठ करूँ, क्या आग्रह करूँ, परन्तु यह दुःख से अवश्य कहना पड़ता है कि हे सुजान ! घनश्याम, एक बार स्नेही कहला कर और मेरे हृदय में प्रेम भाव उत्पन्न करके पुनः क्यों रूठ गये। प्रेम पहले ही न किया होता तो कोई बात न थी, परन्तु एक बार प्रेम स्वयं करके और मेरे हृदय में भी प्रेम भाव उमगा कर अब रूठना और प्रेम भाव को तोड़ देना अनुचित है। इस सवैये में प्रेम की सात्विकता दिखाई है कि सौत के प्रति थोड़ी भी ईर्ष्या नहीं है, केवल प्यारे का अपनी ओर से मुँह मोड़ लेना असह्य हो रहा है।

पर का ज़ह्हि देह.....को ले बरसी।

हे मेघ, तुम पराई भलाई के लिये ही शरीर धारण किये फिरते हो, अतः परोपकार करके सच्चे 'पर्जन्य' बन कर दिखा दो। 'पर्जन्य' मेघ का नाम है और विग्रह से 'परजन्य' पर अर्थात् दूसरे के लिये जन्म लेने वाला' यह अर्थ भी प्रकट होता है। समुद्र का पानी भी अमृत के समान करदो, सभी प्रकार से सज्जनता को सर साइये, सज्जनता का परिचय दीजिये। आनन्द घन कहते हैं कि तुम 'जीवन-दायक' कहाते हो, मेघ रूप में जीवन का अर्थ जल ही होता है, जल को देने वाला मेघ हुआ। दूसरे अर्थ से 'जीवन बचाने वाला' अभि प्राय लिया जायेगा। तुम तो जीवनदाता हो, मेरे हृदय की पीड़ा भी सो छुओ, मेरे हृदय की जलन भी नो शान्त करो, कभी उस विश्वासी

सुजान के आंगन में, कभी मेरी वेदना का विश्वास दिलाने के लिये उस सुजान घनश्याम के आंगन में मेरे आंसुवों को तो बरसादो। इतना करने से ही तुम्हारा 'पर्जन्य' नाम सफल हो जायगा। श्लेष अलंकार है, अप्रस्तुत प्रशंसा का भ्रम न करना चाहिये। 'निधिनीर' लाक्षणिक प्रयोग है। समुद्र का पानी खारा है, दुःख का अनुभव भी ऐसा ही है। अतः भाव यही है कि वियोग से उत्पन्न हृदय की जो वेदनामयी अनुभूति है, उसे सुधा अर्थात् अमृत के समान करो, अमृत का अनुभव मधुर है, प्रिय द्वारा स्मरण कर लेने पर आज की दुःखद अनुभूति ही मधुर बन जायेगी। इसी के साथ २ नीरनिधि के स्थान पर 'निधि नीर' कहना आज की लाक्षणिक शैली का अलंकार 'विशेषण विपर्यय भी है। बादल को सम्बोधन करने और 'जीवन दायक' धर्म के आरोप से 'मानवी करण' नामक अलंकार भी माना जा सकता है। रीति काल में लाक्षणिक प्रयोगों और विशेषण विपर्यय वाली शैली को केवल घनानन्द जी ने अपनाया था, यह निर्विवाद तथ्य है।

धुनि पूरी.....वाजि बोईसी करे।

उस वंशी की ध्वनि कानों में सदा गूंजती रहती है, ऐसी प्रतीत होती है कि आज भी वह ध्वनि उत्पन्नसी होती है। मन मोहन का मार्ग देखने की अभिलाषा को अधिक प्रबल सी कर रही है। घनानन्द जी कहते हैं कि तीक्ष्ण तान के द्वारा बाण के समान स्वर फैलाती है। उसका स्वर बाण के समान तीव्र गति से कानों को स्पर्श करता है, यह वैरिन वंशी न जाने कहां से न बजती हुई भी बजती हुई प्रतीत होती है। विभावना और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

पहिलै अपनाथ.....विष घोरिए।

हे सुजान, पहले तो प्रेम से अपनाकर, अपना बना कर पुनः स्नेह को क्यों तोड़ते हो, बीच धार में डूबते एक निराधार, निराश्रय को अपनी बांह का सहारा देकर पुनः बांह छुड़ा कर न डुबाइये। घनानन्द कहते हैं कि हे आनन्द के घन, आनन्द के मेघ, अपने चातक, अपनी कृपा रूपी जल के प्यासे इस चातक घनानन्द को अपने गुणों के गुण

अर्थात् रस्सी से बांध कर पुनः प्रेम को न छोड़िये। एक बार अपना प्रेम रस पिला कर जीवन देकर और आगे जीवन की आशा दिलाकर अब विश्वास में यों जहर न घोलिये। एक बार अपना कर अब यों न ठुकराइये।

एरे वीर..... .....राखौं पूरी।

हे वीर वायु, तू सब ओर जाता है, मैं तुझ पर न्योछावर हूँ, तेरे जैसा ऐसा और कौन है जोकि जल्दी ढलने या दया करने का स्वभाव रखता है, अर्थात् तुझ जैसा दयालु स्वभाव वाला और कौन है। तेरे लिये संसार के छोटे बड़े प्राणी सभी बराबर हैं, तुम आनन्द के खजाने और दुःखियों को सुख देने वाले हो। मेरे प्रियतम बड़े निर्मल प्रेमवाले गुणों से भारी हैं, मुझे बहुत प्यारे हैं, पर न जाने क्या कारण है, वे पहचान को पीठ पीछे देकर लक्षणा से सब प्रेम भुला कर अब निर्मोही हो बैठे हैं। तू मुझे उनके चरणों की थोड़ी सी धूल लादे, वह मेरी विरह वेदना को दूर करने के लिये संजीवनी बूटी है, मैं उसे आखों में डालूंगा।

इसमें अनुप्रास बहुत ही सजीव है, 'आनन्द निधान सुख दानी दुखियानि है,' इस पद में मृदंग की ध्वनि का अच्छा शब्द नाद का अनुकरण है। विरहिणी की उक्ति का चमत्कार अच्छा है।

राति घोस.....तिहारे की।

इस दुष्ट वियोग का स्वभाव मैं क्या वर्णन करूँ, रात-दिन उसकी सेना सजी ही रहती है, वियोग के उद्दीपन सदा प्रस्तुत रहते हैं, दुःख के मारे जलाता रहता है, बेचारे जीव को अचानक आकर घेर लिया है, निर्बल जीव का कुछ भी वश नहीं चलता। हे प्राण प्यारे, यदि पुकार नहीं सुनते, तो प्रतिज्ञा करने वाले ये प्राण अन्तिम प्रणाम करके निकल कर अपनी टेक रखेगा। अर्थात् आपको अन्तिम नकस्कार करके प्राण शरीर छोड़ जायेंगे, आपका विरही जीव आपके प्रेम के नाम पर मिट जायगा। आपके प्रेम के रण क्षेत्र में जब ये आपकी वियोगिन चूर २ होकर धूल में मिल जायगी, हे आनन्द घन, तब

आपके सेवक की कहानी चलेगी। अर्थात् वह तो मर मिटेगा, उनकी कहानी ही बाकी रह जायेगी। उससे आप की
परिचय मिलेगा। इस लिये अच्छा हो कि प्राण छोड़ने से पूर्व दर्शन एक बार तो दे दीजिये।

पद्य.....१३।

पृष्ठ—१७६ शब्दार्थ

उपाव = उपाय, जूझिकै = लड़भिड़ कर, संघर्ष करके, इन्दीवर = नील कमल की पंखुड़ियां, गुही = गूँथी, छोर = कोना, टहकनि = घूमना, मोद मूरति = प्रसन्नता के आकार।

इन्दीवर दल.....बन ते बनै।

इस पद्य में श्री कृष्ण के शृंगार का वर्णन करता है, नील कमल के समूह को मिलाकर स्वर्ण जुही की माला गूंथी, लाल २ माला गले में हिल रही है, रूप का गुण नहीं गिना जाता, अर्थात् रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, पीले दुपट्टे का कोना उलट कर शिर पर रखा हुआ है। अंगों में अद्भुत रूप से केसर का रंग है। आकृति पर अद्भुत भाव झलक रहा है। पूर्ण-रूप से आनन्दित हो कर वंशी में गौरी राग की ध्वनि गा रहे हैं, हे सुजान तेरे द्वार पर दर्शनार्थियों की चहल पहल से बड़े उपद्रव खड़े हैं, अर्थात् आप के द्वार पर दर्शनार्थियों की भीड़ है, बस एक पुकार है कि सुजान, आज थोड़ा प्राण दान कीजिये जिससे कि एकबार तो उपर्युक्त रूप से शृंगार किये हुए, बन से आते गोपाल को देख लूँ।

रसिक रंगीले.....उदर हैं।

बड़े रसिया, आनन्द में रहने वाले, पूर्णरूप से छैला, रूप से और शृंगार से बने ठने, रसीले और सुख पूर्ण भाव से भरे हृदय-वाले हैं। दयारूपी धन के घर हैं, सुन्दर सांवले रूपवाले हैं, बड़े सयाने ज्ञानी हैं आनन्द की मूर्ति हैं, प्रेमी हैं, और बिना पूछे अर्थात् बिना कारण ही प्रसन्न होने वाले हैं। इच्छा के आलबाल हैं, अर्थात् मनके मनोरथ को पूर्ण करने वाले हैं, अनाश्रित के कल्पतरु हैं,

अर्थात् उसके सर्वदाता स्वामी हैं, कीर्ति के चन्द्रमा हैं, अनन्त प्रेम के समुद्र हैं। प्रेम के नित्य साथी हैं, मन को मोहने वाले हैं, त्रिभंगी अर्थात् टेढ़े, अभुद्त स्वभाव वाले, नन्द के कुमार श्रीकृष्ण बड़े दयालू हैं और मेरे प्रणों के आधार हैं।

इस में उल्लेख और मालारूपक का संकर है।

आँखिन को.....लेखिवेई है।

यमुना को देखने से जो सुख प्राप्त होता है वह तो देखने ही योग्य है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस का दर्शन गोरे और सांवले रूप अर्थात् राधा और कृष्ण के लिये दर्शन रूप हैं। जिस में राधा कृष्ण की परछाई पड़ती रही है। उस दर्शन से मन की गुप्त और प्रत्यक्ष भावना और विशेष हो जाती है। यमुना के दोनों तीररूपी सलाइयों के आँखों में पड़ते ही शृंगार के अंजन या सुरमे की सी रेखा बन जाती है। अनन्द के मेघ से जहाँ शोभा की झड़ी लगी रहती है अर्थात् जिसकी शोभा को देख कर आनन्द का अनुभव तीव्र हो जाता है, ऐसी चंचल लहरों की गति देखने ही योग्य है। रूपक अलंकार है।

आपुहि तें.....एक ही गांव में।

हे भगवान्। आप स्वयं मन में विचार कर पहले प्रेम भाव से तिरछी चितवन से देख कर हंसे थे, अर्थात् सर्व प्रथम आप ने ही तो अपना प्रेम भाव स्वयं प्रकट किया था, लेकिन हायरे भाग्य, अब आपने ही मेरी सुध भुलादी है, अब भला मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ। हे प्यारे सुजान कृष्ण, यह कैसा अन्याय है, प्रेम के व्यापार में यह बर्ताव तो नहीं करना चाहिये। आप अपनी मोहिनी मूर्ति देखने के लिये ही हमें एक गांव गोकुल में या गोलोक में बसकर तरसा रहे हैं। गोलोक में बस कर और वहां से पुनः न आकर हमें दर्शनों के लिए तरसा रहे हो। यदि इसी को गोपियों की उक्ति के रूप में लें तो अर्थ होगा कि एक ही गांव मथुरा में बस कर वहां से न लौट कर हमें पुनः दर्शनों के लिये तरसा रहा हो।

हग फेरियां .....कीजिवे जू।

न बोलने में, इस प्रकार बोलना तक छोड़ कर अपनी दृष्टि न फिराइये, अर्थात् अपनी कृपा-दृष्टि हम से इस प्रकार सर्वथा प्रतिकूल न कीजिये, इस प्रकार आपका दृष्टि फेर लेना हमें बाण की भांति चुभता है। भला इस प्रकार कैसे जियेंगी, हे आनन्द के स्वामी, आनन्द के स्वरूप, आपतो आनन्द के देने वाले हो, सुख दायक हो करके इस प्रकार तरसा कर दुःख न दीजिये। घनानन्द जी कहते हैं कि हे प्यारे सुजान कृपाण, मेरी एक अनतौ सुनिये और रस-भाव से मान लीजिये, स्वीकार कर लीजिये। प्यारे भाग्य! आप एक ओर गांव में बस कर जो ज्ञान भी देते थे मुंह मोड़ चले हैं, ऐसा कठोर हृदय न कीजिये।

मदा दया .....बुलाई लीजिये।

हे भगवान! आप तो सदा ही कृपा के निधान या खजाने रहते हैं, मैं आप से क्या कहूँ, आप तो स्वयं ही सुजान हैं, सब कुछ जानते हैं, जानने वाले से कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। आप स्वयं मान नहीं करते मान का अर्थ गर्व के साथ प्रणय कोप भी है, स्वयं अभिमान न करके अभिमानिनों का गर्व खण्डन करते हैं और स्वयं न रूठ कर अपने प्रेमियों को मान देते हैं, प्रेम का प्रतिदान देकर उनके मान को दूर करते हैं, आपकी समानता किस से करें। आप तो प्रेम के आनन्द भरे समुद्र हैं, विश्वास के लिये गढ़े हैं, आप पर आशा भरोसा किया जा सकता है। नीति या न्याय और उचित रीतियां मानो के अर्थात् उचित व्यवहार के घर हैं। हम आप की अनुकूल दृष्टि के सहारे ही जीते हैं, हमें आप की ही ठगी या मोहनी लगी है, अर्थात् आप की मोहनी मूर्ति ने ही हमारी यह दशा की है, इसलिये आपको स्वयं उसी विचार से हमारी ओर देखना चाहिये। हमारी वेदना के कारण आपका है तो आप हम पर अनुग्रह करना स्वयं ही उचित है अतः हमारे समीप आकर विहार करें, क्रीड़ा करें, आनन्द या दया के प्रभाव में भीजिये, परमानन्द का अनुभव करें। आनन्द का मेघ छाइये, अपनी क्रीड़ा की वृष्टि कीजिये। देरी छोड़कर

वा शीघ्रता कर के आयें या हमें स्वयं अपनी शरण में बुलालें। इस में रूपक, द्वितीय उल्लेख और काव्य लिंग अलंकार हैं।

सुख सुदेश.....हमारे सीस।

सुख मय सुन्दर देश गोलोक का राज्य पाकर और आनन्द का राज्य पाकर आप देवताओं के भी अधीश्वर या राजा हो गये गये हैं, गो लोक के स्वामी होते हुए आप देवताओं के भी आधिपति हैं, अतः ऐसे दयालु की कृपा ही हमारे शिर पर छत्र की भांति रक्षक बनी रहे।

मो-से अन.....—.....मधि मौन।

हे हरि ? मुझ से अनजाने को, जिसे कोई भी नहीं पहचानता, आप के अतिरिक्त और कौन पहचानेगा। सभी का ढंग यह है कि कृपा की पुकार कान में पड़ते ही जैसे ध्यानस्थ वे रूप में आँखें बन्द रहती हैं ऐसे ही पुकार का उत्तर देने के बदले में मौन पकड़ लेते है। अर्थात् और मुझे कौन पहचाननेगा ? कौन मुझ पर दया करेगा, दया के लिए दुहाई मचाने पर भी सब दुहाई सुनकर भी मेरी ओर आँख तक नहीं उठायेंगे और पुकार के बदले मौन रख लेंगे। अथवा आपके अतिरिक्त मुझे कोई नहीं पहचान सकता।

हरि तुम सों.....कृपा के देस।

हे हरि ! मेरा आप से पहचानने के लिये कोई सम्बन्ध नहीं है, अर्थात् पहचान ने लिये मै आप से आग्रह नहीं करता, मैं तो दुखी प्रसन्नता से फूला रहता हूं। मुझे यही प्रसन्नता है कि दया के पात्र ब्रज प्रदेश में मैं रह रहा हूँ। अर्थात् इस प्रदेश पर आपकी विशेष कृपा छाई रहती है। अतः इसके आधार पर मुझ पर भी आप ही की कृपा हो जायगी मैं चिन्ता क्यों करूँ। आपकी कृपा के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

सलोने श्याम.....ऐसे बुरे हो।

हे प्यारे सुन्दर श्याम ! आप आते क्यों नहीं, हम आपके दर्शनों की प्यासी मर रही हैं, उन्हें जिलाओ। हे भगवान् ? भला बताइये,

आप कहाँ हैं, आप जहाँ भी हों ये प्राण आप से लगे हुए हैं, हमारी लगन आप से लगी हुई है, हे प्राण प्यारे ? आप हमारी आँखों के आगे क्यों नहीं रहते, ये आँखें आप के कारण दिन रात जागती रहती हैं। हे प्यारे ! मेरा प्रेम मान कर, प्रेम का विचार करके ऐसी निठुराई न कीजिये, हम आपके विरह में बावली हो गई हैं, आकर हमारी सुधि लीजिये। तब तो आप ने सुख देने वाली मीठी मीठी बातें की थीं, अब ये दुःख देने वाली चोटें छोड़ दीजियें। हे प्यारे ! आप तो बड़े कठोर हो, जोकि हमें अकेली छोड़ कर छिपे हुए हो।

लिखें कैसे.....कहिवे न आवे

हे प्यारे ? प्रेम पत्रिका आप के लिये कैसे लिखें ? क्यों कि आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई है, दुख से छाती के दो टुकड़े हो रहे हैं। यह तो ऐसा अंदेसा या संकट आ पड़ा है कि जीव या आत्मा यहाँ जल रही है और सन्देशा जंगल में भेजना है। अर्थात् जब तक सन्देश जंगल तक पहुँचेगा और उसके अनुसार कुछ उपाय होगा, तब तक जीव शरीर ही छोड़ देगा। इस भाग में इस लोकोक्ति को छाया है, शीषे सर्पो देशान्तरे वैद्यः अर्थात् साँप शिर पर खड़ा है और चिकित्सक दुसरे देश में है। हे प्यारे ? इस समय बहुत ही बुरी, असाध्य सी दशा है। आकर देखिये। यदि विश्वास न हो तो परख ही लो। हे प्रिय तुम ? ऐसो अनोखो पीड़ा कौन पा सकता है, जो कि कहने में ही नहीं आती इस लिये पुकारते हुए भी मौन या चुप चाप रहना पड़ता है। आप को पुकारती हूँ पर पीड़ा के लिये कुछ नहीं कह सकती। विरोधाभास अलंकार है।

तिहारे मिलन..... आप साले

हे प्रिय ! आप के मिलन की आशा नहीं टूटती, यह प्रेम का मतवाला मन आप से लग गया है। अतः तोड़ने से टूटता नहीं। अभी भी आप की बंशी की ध्वनि कान में गूँजती रहती है, वह छबीली चलते फिरते साथ ही चलती है। आप की सुन्दर सांवली मूर्ति आगे

ही आगे फिरती है, कटाक्ष हृदय में आकर तीर की भांति चुभते हैं। मुकुट की लटकन हृदय में आकर हौल सी मचाती है, झूलती रहती है; आप की तिरछी चितवन हृदय में आकर चकती है।

हंसन में..... को जिवावै।

जब आप हँसते हैं तो दांतों की कान्ति की चकाचौंध होती है, विरही नैन चाव से जादू का सा चमत्कार पाते हैं। शिर पर जब विरह का आरा चलता है, जब विरह वेदना व्याकुल करती है, आंखों से आँसुवों की धार बहती रहती है। हे प्यारे! इतनी पीड़ा होने पर भी यदि मैं आप को न पाऊं, तो ये बेचारे विरही प्राण कैसे टिकें। यदि पानी ही जलाने लगे तो बुझावे कौन, अर्थात् जलन को बुझाने का काम पानी से लिया जाता है, पर जलते या खौलते पानी से जले अंग को कौन बुझायेगा, कौन शान्ति देगा। अगर अमृत मारने लगे तो जिलाये कौन। अब यह है कि आप से लगन है, आप ही हमारी विरह व्यथा शान्त कर सकते हैं, आप ही जब तड़फाने पर तुल गये हैं, कौन शान्ति देगा? अर्थात् न्यास अलंकार है। साथ ही अप्रस्तुत प्रशंसा भी है।

जु चन्दातें ..... तुम को सुहाती

हे देव, हाय रे भाग्य! यदि चन्द्रमा से भी अंगारे बरसते लगें, हे प्यारे फिर भला चकोरों की क्या दशा होगी। अस्तु, हम आप के नाम पर प्राणों की त्योछावर करते हैं, हे प्रियतम, आप जहाँ भी हों, सुखी रहें, हे मन भावन? हे प्यारे हमारी रात दिन आप के लिये भली आसीसें अच्छी मंगल कामनायें निकलती हैं, आप सजीव हैं, बलवान् हैं, हम पर निर्दयता इच्छानुसार करलें। प्यारे को गरम २ हवा न करो, जो आपको भायेगी, हमें भी वही रुचेगी, अर्थात् यद्यपि वियोग में ठण्डी हवा भी जलन करती है। परन्तु अन्तरात्मा में बैठे प्रियतम का ध्यान करके कहते हैं कि गर्म हवा करने से आपको भी गर्म लगेगी और कष्ट होगा, अतः ठण्डी ही करो जिससे आपको

शान्ति मिल सके और इसी निमित्त अपने आपको भी थोड़ा सन्तोष रूप सुख प्राप्त हो सकेगा।

सुरत कीजै.....बैठें चलें ही

इस प्रकार भुलाने से कैसे काम चलेगा, अभी भी स्मरण कीजिये, ये विरहिणी मिलने की अवधि 'मियाद' के दिन को कब तक गिनेगी। हे प्यारे ब्रज नाथ! हमें अपने किये प्रेम की ही लज्जा है, हे जगत् के प्रकाशक! आइये शिर पर विराजिये, आपके साथ रहते हमें भी सुख ही है, हे सुन्दर! हम आपकी छाया के पीछे लगी हुई हैं। चाहे जागें, सोवें, उठें बैठें और चलती रहें, पर यही है कि आपको देखती रहें और आप से मिलना होता रहे। बस यही कामना है।

नागरीदास

लीलारस..... .....कहियतु

श्रीकृष्ण की लीला का आनन्द रूपी मद्य पान करके और हरि का ज्ञान रूपी गजक खाकर, सुरापान के समय लोग कुछ मीठा पदार्थ या कल्क खाया जाता है। कृष्णलीला के रस रूपी आसव या मद्य का कानों से पान करके अर्थात् कृष्णलीला सुन कर और हरिज्ञान रूपी कल्क खाकर अर्थात् भक्ति ज्ञान पाकर और कुछ नहीं चाहिये, उनकी भक्ति रूपी सम्पत्ति पाकर या पूर्वोक्त मदिरा पीने पर ब्रह्मा, कुबेर जो धनपति हैं, देवराज इन्द्र आदि सभी निर्धन दिखाई देते हैं, ऐसा मद या नशा चढ़ने पर स्वभाव में नम्रता आ जाती है, रात व दिन श्रीकृष्ण की भक्ति भावना रूप योग में व्यस्त रहते हैं, एक बार उनके नेत्रों के देख लेने पर अर्थात् एक बार यदि वे देख लें अथवा नैन भर कर एक बार उन्हें देखलें तो नित्य तृप्त रहते हैं। श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से तृप्ति हो जाती है। नागरीदास कहते हैं कि और मतों वाले या मदिरा-पान करने वाले मतवाले या नशेबाज नहीं होने पर वास्तव में प्रेम के मतवाले ही सच्चे मतवाले कहलाते हैं।

इस पद्य में लौकिक मदिरा से प्रेम मदिरा की तुलना करके प्रेम मदिरा को लौकिक मदिरा से श्रेष्ठ बताया है। क्योंकि दूसरी मदिरा

तो स्वभाव की कोमलता नष्ट करती है, उससे स्वभाव में कोमलता आ जाती है, उससे औरों को लूटने का भाव उत्पन्न हो सकता है, परन्तु भक्ति रूपी मदिरा के नशे में बड़े २ ऐश्वर्यशाली भी कंगाल दिखाई देते हैं, जिससे लोभ ही उत्पन्न न हो। लौकिक मदिरा के कारण मनुष्य बुरे विचारों की ओर बढ़ता है, परन्तु भक्ति-रूपी मदिरा से ईश्वर चिन्तन के अतिरिक्त और कुछ सुध बुध ही नहीं रहती। लौकिक मदिरा वासना के लिये प्रेरित करती है, भक्ति से तो दर्शनमात्र से तृप्ति हो जाती है। इस लिये यह मदिरा श्रेष्ठ है। इस पद्य में रूपक, व्यक्ति, भ्रम, विशेषोक्ति और पर्यस्ता पहनुति का अच्छा सकर है, साथ ही लाटानुप्रास और यमक का संकर है।

नागर वेद.....पग आंगुरी

नागरीदास जी कहते हैं कि यदि प्रेमरूपी नदी में पैरों की अंगुली न दी, अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम की नदी में स्नान न किया, तो वेदों और पुराणों को पढ़ २ कर व्यर्थ में ही बुद्धि लंगड़ी कर दी। हाथ में कांवड़ लिये हुए अत्यन्त सर्दी में प्रेम से गंगा और गोमती आदि नदियों में नहाते फिरना व्यर्थ ही है। और गोमती तथा गोदावरी में नहाना, अन्नत्याग कर केवल शाक और फल खाना भी व्यर्थ है। इसमें तीर्थ-यात्रा, जप और तप की श्रीकृष्ण प्रेम के अभाव में व्यथता बताई गई है। रूपक अलंकार और विशेषोक्ति है।

काहे कोरे.....स्याम रंग की

तू पुराणों के कोरे मतों को क्या सुनता फिरता है, इन्होंने तुझे ही ही क्या ए मूर्ख! तेरी बुद्धि भी लंगड़ी करदी है। तू वेदों के झगड़ों का कोई अन्त न पायेगा, दान देना और गंगा का नहाना, इन सब से कल्याण की आशा त्याग दे। और सिद्धियां साधने से या खोजने से कुछ भी सिद्ध नहीं होगा, कोई काम नहीं बनेगा। मेरी सुख देने वाली उचित बात को मान ले। तू शीघ्र ही गोरे और श्याम रंग की अर्थात् राधा कृष्ण के प्रेम से भरे वृन्दावन रूपी पात्र में अपने कोरे मन को कामादि दोषों से शुद्ध करके शीघ्र ही ब्रज-भूमि में रंगले। भाव यह

है कि यदि तू कल्याण चाहता है तो कोरे और शुद्ध मन को ब्रज में जाकर राधा-कृष्ण की भक्ति के रंग में रंग दे। कोरे कपड़े पर रंग अच्छा चढ़ता है। इस पद्य में रूपक और काव्यलिंग अलंकार हैं।

संग फिरत.....दिन गाइये।

काल तेरे साथ प्रत्येक समय फिरता है, नित्य ही शिर पर घूमता रहता है, यह शरीर अत्यन्त ही क्षणभंगुर है, क्षण भर में नष्ट हो जाने वाला है, जैसे धुंवे की लहर हो। इसी कारण अपने सांस व्यर्थ न गवाओ। प्रत्येक जीव के सांस सीमित होते हैं, सांस समाप्त होने पर जीवन भी समाप्त हो जाता है, अतः उन को व्यर्थ न खोना चाहिये, ये समाप्त होने पर फिर नहीं मिलते रात दिन या नित्यप्रति ब्रज के स्वामी नन्दलाल का गायन कीजिये। उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संसार के फन्दों में सारी आयु बीती जा रही है। घड़ियाल बजने पर जो घड़ियां बीतती हैं, वही पुकार २ कर आयु घटने की सूचना देती हैं। समय पर चूक कर अर्थात् अवसर पर काम न करके फिर न पछताना, ब्रज के स्वामी नन्दलाल को रात दिन गाओ।

सुत पिता.....गाइये।

संसार के पुत्र, पिता, पति और पत्नी के बातों का मोह अत्यन्त दुःख देने वाला है, संसार के सुखों को मृगतृष्णा को देख कर क्यों भटक रहा है स्वप्न के सा राज्य सुख पाकर उसके लालच में न पड़ो। प्यारे नन्दलाल को रात दिन गाओ। स्वप्न में प्राप्त वस्तु सत्य नहीं मिलती, आंख खुलने पर वह दिखाई नहीं देती, इसी प्रकार राज्य सुख भी नश्वर ही है, मृत्यु के बाद राज्य सुख भी प्राप्त न होगा, ऐसे ही मृगतृष्णा भी जाननी चाहिये।

कलह कला ना.....गाइये।

झगड़े की कल्पना, संसार में वैरभाव का बिचार, कामवासना के क्लेश अथवा संसार की भोग आदि की तृष्णा और इच्छा आदि

क्लेशों को दूर करो। पराई निन्दा करनी, दूसरों से वैरभाव रखना, इन दोनों बातों का कभी विचार भी न करना। संसार के प्रपंच या झंझटों चटसाल या पाठशाला में अपने चित्त को न पढ़ाओ। अर्थात् मन को संसारिक झंझटों में न फँसाओ।

अन्तर कुटिल.....गाइये।

जिनके हृदय दुष्टता, अभिमान और कठोरता से भरे हों, महात्मा लोग उनके घर में आदर से कभी नहीं रह सकते अर्थात् सज्जनों का भी उनके घर में आदर नहीं हो सकता। ऐसे लोगों की संगति में भूल कर भी नहीं जाना चाहिये ब्रज के चतुर नागरिक नन्दलाल का रात दिन गुण गान करो।

कहूँ न कबहूँ.....गाइये।

इस जगत् में सुख कहीं भी नहीं है, यह तो दुःख का कुआँ है, अर्थात् इस संसार के धन्धे दुःख दायी ही हैं, केवल भगवान के भक्तों की संगति में सुख है। उनके पास बैठकर आनन्द से समय बिताया करो ब्रज के नागर नन्दलाल को रात दिन गाओ।

कृष्ण भक्ति.....गाइये।

जिन का अंग प्रत्यंग श्रीकृष्ण की भक्ति से परिपूर्ण हो, जिनकी आंखों में प्रेम का रंग प्रकाशित हो रहा है, चमक रहा है, उन्हीं सज्जनों की सेवा करने से दश प्रकार की भक्ति का ज्ञान होता है, और भक्ति प्राप्त भी हो जाती है। भक्ति के दस अंग ये हैं--विष्णु का गुण श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण सेवा, पूजा, नमस्कार, सेवा भाव, मित्रता, अस्म समर्पण, और प्रेमा सक्ति। इस प्रकार रात दिन नन्दलाल का गान करो।

ब्रनबृन्द.....गाइये।

ब्रज के अन्तर्गत वृन्दाबन की भूमि श्रीकृष्ण को बड़ी प्यारी है। वहां पेड़ और लतायें फल फूलों से झूम रहे हैं। राधा और कृष्ण के चरण चिन्हों से चिन्हित भूमि पर लेट लगाओ, इस प्रकार रात दिन ब्रज के चतुर श्रीकृष्ण के गुण गाओ।

नन्दीश्वर.....गाइये।

ब्रज के नन्दीश्वर, बरसाना, गोकुल गांव, वंशीवर का प्रदेश, इन स्थानों पर सांवरे कृष्ण रमा करते थे, राधाकुण्ड गोवर्धन और यमुना जी प्रों, वहां रहकर रात दिन नन्दलाल का गायन करो।

नन्द जसोदा.....गाइये।

नन्द, यशोदा और श्रीवृषभानु बड़े यशस्वी हैं। संसार में इन से बढ़ दूसरा बड़ा नहीं है। गउवों, गोपियों और ग्वालों के चरणों की धूल का ध्यान करो। इस प्रकार रात दिन ब्रज के चतुर नायक नन्दलाल का ध्यान करो। नन्द यशोदा का यश श्रीकृष्ण प्रेयसी-राधा पिता होने के कारण है। गउए उन्होंने चराई हैं, गोपियां कृष्ण के प्रति प्रेम के कारण और गोप कृष्ण सखा होने से आदरणीय हैं। अथवा किसी का अर्थ राधा की माता लेना चाहिये। उनकी गणना वृषभानु के साथ होगी।

बंधेलूउखल.....गाइये।

प्यारे कृष्ण माता के प्रेम से हार कर ऊखल में बन्ध गये थे, तभी दामोदर नामधारी हुए थे, मुख में माता को सारा संसार दिखाया, यमलार्जुन वृक्षों को तारा, उद्धार किया, वृक्षयोनि से छुड़ाया, अनेक सुन्दर लीलायें की उनका पार कौन गा सकता है। श्रीनन्दलाल ब्रज नायक का रात दिन गायन करो। विशेष दृष्टव्य—१ ऊखल बन्ध, २-मुख में विश्वदर्शन और ३-यमलार्जुन का उद्धार, इन तीनों की कथा है।

१—एक बार यशोदा ने प्रतिदिन की शिकायतो से तंग आकर श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँधना चाहा, बड़ी से बड़ी रस्सी उनको बांधते छोटी हो गई, माता को थकी देख कर पुनः अपने आप बँध गये।

२—यमलार्जुनोद्धार—एकबार कुबेर के २ पुत्रों नल और कूबर को अपने सामने नंगे नहाने के कारण नारद जी ने वृक्ष होने का शाप दिया था, यशोदा का आंगन उन वृक्षों के समीप ही था, दोनों भाई एक साथ जुड़े होने से यमलार्जुन कहलाते थे, श्रीकृष्ण नारद जी के कथानुसार

उनके उद्धार की कामना से ऊखल को घसीटते वहीं ले गये उसे दोनों पेड़ों की जड़ों के बीच में फँसा दिया, खींचने का झटका देते ही दोनों पेड़ गिर पड़े, नल कूबर अपना पूर्वशरीर पा कर श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार अपने गन्धर्व लोक को चले गये।

२—विश्व दर्शन—किसी ने यशोदा से शिकायत करदी कि कृष्ण ने मिट्टी खाई है, यशोदा ने कृष्ण से डाट कर पूछा कि क्या सच मुच मिट्टी खाई है ? इस पर उन्हों ने मना कर दिया। यशोदा विश्वास न कर जो उनका मुँह खोल कर देखने लगी, मुख में तीनों लोक दिखाई दे गये। यह देख वह चकित रह गई।

मोटि मोह..... गाइये।

भगवान ने इन्द्र की पूजा रोक कर इन्द्र को क्रुद्ध किया, उसने व्रज का लोग करने के लिये प्रलय करने वाला अपार जल बरसाया, और क्या कहें, जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को धारण करके शरणागत व्रज की सहायता की, उन की ही शरण में जाओ, नन्दलाल श्रीकृष्ण का गुण-गान करो।

रासहित.....गाइये

सांवले श्रीकृष्ण राधा के प्रेम के कारण व्रज भूमि को कभी नहीं त्यागते हैं। प्राणप्यारे व्रज वल्लभ जो रसिक हैं। वहाँ नित्य ही रास विहार किया करते हैं। राधा और व्रज-भूमि के यश के सहित श्रीकृष्ण का यश गाओ और रसों का आस्वादन करो श्री व्रज के नायक श्रीकृष्ण का गुणगान करो।

व्रजरस लीला.....गाइये

व्रज भूमि की उस रास लीला को सुन कर कभी तृप्त न होना, व्रज के भक्तों और सज्जनों की संगति में प्राणों की लीन कर देना, नागरी-दास कहते हैं कि व्रजभूमि में निवास होने की कृपा का फल पाओ व्रज के नायक श्री नन्दलाल का रात दिन यश गान करो।

व्रज में हम सभी व्रजवासी प्राणी बड़े सुखी हैं। राधा के प्रिय श्री कृष्ण हमारे प्राण, शरीर, मन, आँखें और सब कुछ हैं। लोग

मुक्ति की इच्छा करते हैं, परन्तु मुक्ति में यह आनन्द कहाँ, श्रीकृष्ण की मन्द २ मुसकान, सुन्दर २ कुञ्जों में लीला में वंशी की मधुर ध्वनि मुक्ति में कहाँ है। यह शरद ऋतु की रात्रि, चमकती चांदनी, वहाँ कहाँ पायलों और बीणा की ध्वनि के साथ होती हुई रास क्रीड़ा, वहाँ कहाँ कदम्ब के बृक्षों की कतारें, जिनकी शाखायें यमुना में झुकी हुई हैं, कहाँ मिलेगी, फाल्गुन के मास में खेला जाने वाला रंग का फाग कहाँ जिस में केसर कीच फैली रहती है, कहाँ मोहन के हँसने खेलने वाले साथी, उनकी हँसी मजाक कहाँ। गाय का दूध, दही, मट्ठा और करील के फल वहाँ कहाँ होंगे, श्रवण और कीर्तन आदि दसों अंगों वाली भक्ति कहो कहां होगी। कीर्तन के कारण उत्पन्न आनन्द से जिनका स्वर गद गद हो गया है भारी हो गया है, रोगंटे खड़े हो गये। हैं, ऐसे अंग वहाँ कहाँ होंगे। जिस बृन्दावन पुण्यतीर्थ में इतने अमूल्य या अद्‌भुत प्रदार्थ प्राप्त होते हैं, उसे भला अब मैं क्यों व्यथ में छोड़ दूँ ऐसे आनन्द दायक स्थान को कैसे छोड़ा जा सकता है, नागरी दासी जी कहते हैं। मैं सुख, मुक्ति आदि नहीं चाहता। मेरी यही कामना है कि मै व्रज में रहता हुआ व्रजवासिनियों की गालियाँ सुनता रहूँ।

हमारो मुरली.....कैसो काम

हमारे इष्ट देव तो मुरलीधारी श्रीकृष्ण ही हैं, बिनबंशी, बनमाला और मोर पंखों की कलंगी के हम कोरा नाम नहीं पहचानते। उनका बृन्दावन में विचरने वाला गोप रूपी ही व्रजवासियों के मनोरथ पूर्ण करने वाला है। प्रति दिन, प्रति-पहर, प्रति-पल और प्रति-क्षण इस गोप रूप ही से चित्त का अनुकरण बढ़ रहा है। हमें नन्दीश्वर, गोवर्धन, गोकुल और बरसाने से ही सुख प्राप्त होता है, नागरीदास जी कहते हैं कि मथुरा और द्वारिका स हमारा क्या काम। अर्थात् हमारे प्यारे व्रजवासी कृष्ण हैं, द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण नहीं।

चरचा करी.....आवत नैन

श्रीकृष्ण के प्रति अपने सत्य प्रेम का वर्णन करते हैं कि उस प्रेम की चर्चा कैसे की जाय, अर्थात् उसका वर्णन कैसे करें। उसकी जो

कुछ बात हम जानते हैं, उस प्रेम दशा का जो कुछ स्मरण है, कही नहीं जाती, कहते हृदय कांपने लगता है। प्रेम की कहानी अकथनीय है, कही नहीं जा सकती है, उसके रहते हृदय में दूसरा कोई नहीं समा सकता, अर्थात् हृदय पर प्रेम का अधिकार होने के बाद दूसरी बात का समावेश नहीं हो सकता। वेदों, स्मृतियों और उपनिषदों के सिद्धान्तों का जो मन में स्थान नहीं रहा है। उसका कथन या वर्णन मन में होता है, उस वर्णन को नेत्र रूपी श्रोता ही सुनते हैं, अर्थात् देखने वाला ही जान सकता है कि मनकी कैसी अनुभूति है, उस प्यारे को देखने वाला अपनी अनुभूति से दूसरे की मानसिक दशा का ज्ञान करवायेगा। नागरीदास कहते हैं, उसे चतुर व्यक्ति समझ तो लेते हैं पर वाणी में कहने को नहीं आती।

कहां वे..... ..... जनम संगाती

वैराग्य के विचार प्रकट करते हैं कि मृत्यु के बाद सभी कुछ यहीं छूट जाता है। वह पुत्र, गोते, घोड़े और हाथी कहां है, अर्थात् सब यहीं रह गये। बाजा बजा कर अकेला ही आत्मा चल देता है, साथ में कोई नहीं रहता, नौकर नोकरानियां मुख ही देखती रह गईं, लोग हाथ ही मसलते रह गये। जैसे ही काल ने आकर पकड़ा, उसी समय सब कुछ छोड़ दिया, सारे भोग्य पदार्थ यहीं पडे रह गये। रात दिन भाट लोग जहां तहां उसके पराक्रम का यशगान किया करते थे, अब वह सब यशोगान भूल गया, सब के मुख पर "राम नाम सत्य है," की एक ही रट लगी हुई है। जो पहले चारों ओर चँवर चला कर अपने ऊपर मक्खी भी नहीं बैठने देते थे, आज मित्र या परिवार के लोग हाथ में लाठी लेकर उसका शिर फोड़ते हैं, यहां दाहक्रिया के समय होने वाली कपाल क्रिया से अभिप्राय है। इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों से तर शरीर को जला कर जंगल में घेर कर आये। घर आते ही सब के सब उसे भूल गये, हे हरि, हे भगवत्, आपकी माया को धन्य है। नागरीदास जी कहते हैं कि इस दुर्गति को मन से कभी न भुलाइये। काल रूपी नाग से होने वाले कष्टों को दूर करने वाले और

जन्म से ही सहायता करने वाले भगवान् का भजन करो।

जो मेरे तन.....करि लीजै

यदि मेरे दो शरीर होते, मुझ से कोई कुछ नहीं कहता और मैं किसी से कुछ न कहता। एक शरीर हरि-भक्तों से दूर रहने वाले व्यक्तियों के साथ देश विदेशों में घूमता रहता। जहां अनेक प्रकार के सुख दुःखों का अनुभव होता है, भक्ति का जहां थोड़ा भी अंश नहीं होता। एक शरीर सज्जनों के सुखद संग में रहता, आनन्द से पूर्ण होता, जीवन के लिये आनन्द मूलक जहां श्रीकृष्ण निवास करते हैं, उस व्रज प्रदेश में निवास करके जन्म सफल कर लेता। पर खेद है कि दो शरीरों के बिना दो काम नहीं हो सकते, आयु क्षण २ में घटती जा रही है, नागरीदास जी कहते हैं कि अब एक शरीर से भला क्या २ करलें।

दरपन देखत ... ...नरक निवासी

मनुष्य वास्तव में दर्पण नहीं देखता, जो कि घटती अवस्था के लक्षण नहीं देखता। पहले बच्चा था, पुनः काले बाल प्रकट होते हैं। परन्तु वृद्धावस्था में वही बाल सफेद हो जाते हैं। इस प्रकार इस मुख के वृद्धावस्था तक ३ रूप बदल गये परन्तु तेरा अज्ञान अभी तक दूर नहीं हुआ। तेरी मन की आँख भी फूटी हुई है जो तू पास आती मौत भी नहीं देखता, यह वृद्ध शरीर दुःखों का घर है, अभी भी श्रीकृष्ण की भक्ति का सुख नहीं लेता, नागरीदास जी कहते हैं कि ऐसा मनुष्य निश्चय से नरक में निवास करेगा।

नागरी दास—

हरिजू .....न डोंगे

भगवान् श्री हरि असम्भव भी सम्भव करके दिखादेते कांच की गाड़ी को पहाड़ के ऊपर भली प्रकार चला सकते हैं। पत्थर की नाव पर चढ़कर गहरे पानी पर भी निर्भयता से जायेंगे। मोम के घोड़े पर चढ़कर आग में घूमते हुए भी नहीं पिघलने दूंगे। इससे भी अधिक कठिन या असम्भव क्यों न हो, भगवान् दृढ़

रहेंगे, वहां भी सहारा देंगे, नागरी दास कहते हैं कि उन की कृपा के सभी कुछ वश में हैं, अर्थात् उनकी दया से सभी कुछ सम्भव हो सकता है। अनः हम इन ऊपर गिनाये डरों से डरेंगे नहीं।

दुँहु भांतिन.....मनोरथ मयो।

मैंने दोनों प्रकार का फल पा लिया। अच्छा और बुरा सभी फल मिल गया। मैंने जो कुछ पाप किये थे उन्हीं के फल स्वरूप मुझे हरि भक्ति से दूर रहने वाले लोगों के साथ देश देशान्तरों में भटकाया, अर्थात् उन्हीं पापों के कारण मुझे एक देश से दूसरे देश में घूमना पड़। छोटी २ और ओछी इच्छाओं के वस में हो कर, उन मनोरथों की पूर्ति के लिये दुष्टों की संगती में रहा, झूठे लालच में पड़ा रहा। इन दोनों चरणों से बादशाह के दरबार में रहना, उसी ओर से युद्धों में जाना तथा राज्य के लिये भाई से युद्ध करना आदि घटनाओं की सूचना दी है। पापो का परिणाम तो यह मिला। परन्तु न जाने मैंने कौन से पुण्य किये थे। जिनके फल स्वरूप अब वृन्दावन और बरसाने में निवास करने का अवसर दिया है, मुझे किन पुण्यों के परिणाम से इन पवित्र स्थानों में सुख पूर्वक वसामा है। आनन्द के कोष व्रजवासि-भक्तों के समूह ने मुझे छाती से लगाय कर अपना बनाया, जो रास लीला सुनने के लिये भी दुर्लभ थी, जिसका आकर्षक वर्णन सुनना अप्राप्य था। वह रासलीला व्रज में आकर स्वयं देखने को मिली, श्रीराधाकृष्ण ने अपने सेवक नागरीदास का मनोरथ पूर्ण कर दिया- भाव यह है कि पापों का फल जो कुछ मिला वह तो ठीक है, परन्तु अच्छे अवसर मिले हैं, वे किन पुण्यों के प्रताप से मिले, यह मैं नहीं समझ सका। सज्जन लोग अपने गुणों पर दृष्टि नहीं डालते दोष को ही पहचानते हैं।

हमारी.....इतहिडरेगो।

हे हरि! हे भगवन्! हमारी दशा तो आप के ही हाथ सुधरेगी। आप की ही दया से हमारा उद्धार होगा। मैंने अनेक जन्म तो दुष्कर्मों से बिगाड़ दिये। अर्थात् क्या अबके भी आप उद्धार नहीं करेंगे।

अभी तक प्रेम भाव की रीति पूर्ण नहीं हुई है, अर्थात् जिस प्रेम भाव के द्वारा आप अनुकूल या प्रसन्न होते हैं, वह तो मैं कर भी नहीं पाया। माया या मोह-जाल की बीमारी कैसे दूर होगी। भाव यह है कि आप में पूर्ण प्रेम भाव रखने से ही संसार के भोगों के प्रति मोह दूर होता है। मेरा अभी वैसा प्रेम भाव हो नहीं पाया है, इस लिये यह माया का फन्दा कैसे टूटेगा ? नागरीदास कहते हैं कि हमारी दशा तो तभी सुधर सकती है, जब कि आप की कृपा दृष्टि हमारी ओर ढलेगी, अर्थात् आपकी कृपा होने पर ही हमारा उद्धार हो सकता है।

हमारी सब हो.....बलिहारी

हे भगवान! आपने कृपा करके हमारी सभी बिगड़ी बात सुधार दी। हे कुञ्ज बिहारी और कुञ्ज बिहारिणी राधे!! आपने बड़ी ही करुणा की है, मुझे आपने अपने बृन्दावन में बसाया, जहां कि आप के दिव्य स्वरूप का नित्य प्रकाश रहता है। जहां नित्य ही अखण्ड रास लीला का आनन्द रहता है, रसिक व्यक्तियों का सुख देने वाला संग रहता है, न यहाँ किसी प्रकार का वैर-भाव जैसा कष्ट ही है, यह स्थान संसार से विलक्षण ही है। हे भगवान! आपको धन्य है,धन्य है। आपने मुझे जन्म जिता दिया। मेरा जन्म सफल कर दिया।

ब्रज के लोग.....नागरीदास!

ब्रज के निवासी सभी लोग बड़े ठग हैं, अधिक क्या कहें वे स्वयं भी ठग हैं और ठग के ही भक्त हैं। ये लोग धतूर के बीज के समान वचन चखा देते हैं, कनक का अर्थ सोना और धतूरा दोनों होते हैं, परन्तु सोना नशीला नहीं होता न उसके बीज ही होते हैं, अतः कनक का अर्थ यहां धतूरा ही लेना उचित होगा। धतूर के बीजों के समान नशा चढ़ाने वाले मस्ती चढ़ाने वाले वचन कहते हैं, ठग लोग प्रायः धतूरे जैसी नशीली वस्तु अपरिचितों को खिला कर लूट लिया करते हैं। परिणाम यह होता है कि वह चाखने वाला फिर घर बार और धन सम्पत्ति को भूल कर बावला-सा होकर फिरने लगता है, रजोगुण या राजसी भाव को सांसारिक सुख भोग की भावना को छोड़ कर धूल में

लोटने लगता है, यही व्यापार नशे में होते हैं। अंग या शरीर दोनों बड़े साधारण दुर्दशा वाले से दीखने लगते हैं, जगत् के सुखों का सारा प्रभाव तो उड़ जाता है, केवल काला रंग चढ़ता है, नशे वालों का रंग काला पड़ जाता है, यहाँ दूसरा अर्थ श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम भाव है। यहां की वृथ्वी, वृक्ष, ये देश सब ठग हैं और कृष्ण भी ठग हैं, भला इनके समान सयानपना या चतुराई कौन रख सकता है, यहां ब्रज भूमि में आते ही अटूट प्रेम की फांसी गले में पड़ता है, नागरीदास कहते हैं, इस भूमि में कोई भी न आये। यह सभी प्रेमोत्पादालम्भ के वचन हैं। भाव यही है कि ब्रजवासी बड़े प्रेमी हैं, प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण के उपासक हैं। ब्रज में जो कोई आता है, ये भक्त लोग उसे प्रेममय शब्दों से कुछ ऐसा उपदेश देते हैं कि वह प्रेम में मतवाला होकर अपना सभी सांसारिक स्वरूप भूल जाता है। यहां की सम्पत्ति से उसका मोह नहीं रहता, केवल श्रीकृष्ण का प्रेम हृदय पर जम जाता है।

भक्ति बिन..... नट के बट्ट

श्रीकृष्ण की भक्ति के बिना सभी निकम्मे हैं। लड़ने वाले घाड़ों के समान ये लोग केवल लड़ने भिड़ने के ही योग्य हैं। गोल २ लट्ट की भांति उन लोगों की बुद्धि सांसारिक विषयों में चक्कर काटती रहती है। लट्ट पर रस्सी या डोरा लपेट कर उसे घुमाया जाता है। नागरीदास कहते हैं कि वे लोग ऐसे उछलते रहते हैं जैसे मदारी के लोहे के गोले। वे लोगों के कहने के पीछे व्यर्थ ही उछला करते हैं।

वृन्दा विपिन.....गुन गानी

वृन्दावन रसिक व्यक्तियों की राजधानी है। जिसके राजा सुन्दर रास विहार करने वाले श्रीकृष्ण हैं। और रास विहार करने वाली राधिका रानी हैं। दोनों राजा और रानी रसिक हैं। ललिता आदि सदा साथ रहने वाली सखियां भी रसिक हैं, जो कि राधा कृष्ण के युगल रूप रूपी मद्य पीने वाली हैं। वृन्दा देवी, तुलसी रसिक दासी है, अर्थात् वृन्दा देवी जो उनकी सेविका है, वह भी रसिक है,

कुंजों की सुन्दर रचना भी रसिक है, यमुना, वहां के वृक्ष और लताएँ सभी रसिक हैं। सुख देने वाली वृन्दावन की भूमि भी रसिक ही है। इस वृन्दवन में जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम सभी रसिक हैं, रसिक ही रसिकों के गुण गाने वाले हैं।

किते दिन.....सुख भोये

अहो वृन्दावन के विना ही कितने दिन खो दिये, व्यर्थ ही नष्ट कर दिये, वे अब तक राजसी भावों में राग द्वेष आदि रजोगुणी विकारों में लीन रह कर व्यर्थ ही बीत गये, किसी भी काम न आये। यमुना के किनारे रूपी फूलों की सेज को छोड़ कर कांटों और बाणों की चारपाई पर सोये, महलों की पुष्प सेज को कांटों की सेज बताया है, श्रीकृष्ण के प्रेम में अनन्य भाव से मग्न रसिकों के तो दर्शन नहीं किये, जो भगवान् और उनके भक्तों से दूर रहने वाले हैं, उन्हीं के मुँह देखते रहे, अर्थात् उनकी ही संगति की। यहां के अर्थात् वृन्दावन के सदा एक रस या एक से रहने वाले सुखों को त्याग कर वहां अर्थात् दिल्ली आदि स्थानों में कभी हंसे, कभी रोये। वहां का आनन्द सदा बना रहने वाला अखंड था, परन्तु वहां झंझटों में रह कर कभी सुख पाया, कभी दुःख पाकर रोये। अपने उद्धार का कार्य कुछ न किया, शिर पर औरों का ही बोझ ढोया, यहां शाही कामों से अभिप्राय है, सारे देश छान मारे पर कहीं आनन्द का एक थोड़ा सा अंश भी प्राप्त न हुआ, नागरीदास कहते हैं जब संसार के सभी प्रकार के सुख भोग लिये अर्थात् सभी विषयों का अनुभव कर लिया, कहीं आनन्द न पाया, तब वृन्दाबन के कुंजों में निवास किया। अथवा जब आकर वृन्दाबन के कुंजों में निवास किया, तभी सब प्रकार के सुखों का अनुभव हुआ।

जो सुख.....सुख रासी

ब्रज में वास करने वाले भक्त जन जो सुख पाते हैं, उसको बैकुण्ठ निवासी अर्थात् सामीप्य मुक्ति पाने वाले भक्त स्वप्न में भी नहीं पा सकते। बैकुण्ठ में तो भगवान् एक ही महल में रहते हैं, पर इस ब्रज भूमि में तो वही घर २ के खिलौने बने हुए है, जिन्हें सारा संसार क्रि-

नाशी कह कर पुकारता है। नागरीदास कहते हैं यह ब्रज भूमि संसार से सर्वथा भिन्न ही है, अथवा संसार भर से अद्भुत सुख की राशि या समूह इस ब्रज में रहने मात्र से सुलभ हो गई है, अचानक हाथ आ गई है, जितनी लूट सको तो लूट लो। अर्थात् यहां तो घर २ में मन मोहन श्रीकृष्ण का निवास है, उनके प्रेम, उनकी भक्ति, उनकी लीलाओं का सुख यहां सहज ही मिल सकता है, इसे लूट लो, जितना ले सको लेलो।

ब्रज वासी ते.....बाढ़ी ओप

ब्रजवासियों से, ब्रज के पदार्थों से ही हरि की शोभा बढ़ी है, श्रीकृष्ण जो कि होठों पर वंशी रख कर त्रिभंगी या टेढ़े हुए, यह भी ब्रज का एक वेष है, ब्रजवासियों का यह प्राकृतिक कार्य है, ब्रज की इस प्रकृति या रीति को श्रीकृष्ण अपना कर ही त्रिभंगी बन सके हैं। उनके अलंकार भी ब्रज के बन की धातुओं से बने हैं, ब्रज की रत्तियों की माला ही उनकी परम शोभा बढ़ाने वाली हैं। उनके शिर पर ब्रज के मोरों के ही पख हैं, उनसे ब्रज की युवतियों के मनों को लुभाते हैं, थोड़ी भी ब्रज रज लगी बड़ी शोभा देती है, 'अलय' के स्थान पर 'अलव' पाठ हो तो ठीक है, तब बालों पर लगी ब्रज भूमि की धूल भी बड़ा शोभा देती है। ब्रज के वृक्षों के फूलों की माला ही वक्षः स्थल पर पड़ी हुई है, ब्रज की गायों के ही पीछे मतवाले हाथी की सी मस्त चाल से चले आते थे। चारों ओर गोपों के बीच में ब्रज के चन्द्रमा श्रीकृष्ण सुशोभित रहते थे, नागरीदास कहते हैं, ब्रज के कारण परमेश्वर की भ शोभा बढ़ी है, और का तो कहना ही क्या! अर्थापत्ति अलंकार है।

ब्रज सम.....ठाकुर भावे

ब्रज के समान कोई दूसरा पवित्र तीर्थ नहीं है। यहां परमेश्वर के भी अच्छे २ नाम पड़ गये। गर्गाचार्य से कृष्ण नाम सुना गया, अर्थात् गर्ग जी ने तो उनका नाम कृष्णचन्द्र रखा। उसी से अब उन्हें कान्ह या कन्हैया कहते हैं। सब उनकी बाल लीलाओं के रस में डूब गये,

उसके आनन्द रूपी समुद्र में सब विहार करते हैं, गोते लगाते हैं। यशोदा के नन्दन कहलाये, रस्सी से बंध कर दामोदर 'दाम=रस्सी, जिनके उदर अर्थात् पेट से बांधी गई हो' बने, नवनीत अर्थात् मक्खन के प्यारे, दधि चोर-दही चुराने वाले, चोरों के भी चोर, चित्त को चुराने वाले, चिकने चुपड़े होने से नवलकिशोर, राधा रूपी चन्द्रमा के लिये चकोर स्वरूप, सांवले, गोकुल को चन्द्र सदृश आनन्द दाता, दही का दान लेने वाले, वृन्दावन के चन्द्र या प्रकाशक, आल्हादक, चतुर चित्त वाले, प्रेम स्वरूप, शीघ्र दर्शन न देने से अभिमानी, राधा विहारी, राधावल्लभ या राधा प्रिय, राधा के कान्ता या पति, रसीले, वल्लभ सुत या प्रिय पुत्र और साथ ही वल्लभाचार्य के पुत्र, गोपीजनों के प्यारे, गिरि श्रेष्ठ गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, शोभा के समूह स्वरूप, रास का विहार या क्रीड़ा करने वाले, रसिकों के साथ विहरने वाले, कुंजों में विहरने वाले, श्यामसुन्दर, वृन्दावन में विहार करने से विपिन अर्थात् बन के विहारी, बांके विहारी, अटल या नित्य सुन्दर विहार करने वाले, छैल विहारी, लाल बिहारी वा प्यारे विहारी, बनवारी या वनमाली, आनन्दकन्द या आनन्द के मूलकारण, गोपीनाथ मदन या काम को भी मोहने वाले, वंशीधर गोविन्द या गोपति, ब्रज के लोचन या नेत्र, ब्रज में रमने वाले, मन हरने वाले, ब्रज के उत्सव या शुभ दिन स्वरूप, ब्रज के नाथ, ब्रज के जीवन, ब्रजवल्लभ, ब्रज-किशोर, शुभ कथा वाले, ब्रजभूषण, ब्रजमोहने वाले, सोहने वाले, ब्रज के नायक या नेता मार्ग दिखाने वाले, ब्रजचन्द, ब्रज के नागर या चतुर रसिक व्यक्ति, ब्रज के छैला, छबीले या सुन्दर, ब्रज के वर या दूल्हा, नन्द नन्दन, ब्रज आनन्द, ब्रज दूलह, ब्रजलाल, ब्रज की गऊवों के पीछे २ अच्छे सुशोभित होने से ब्रज गोपाल कहलाये, नागरीदास ब्रज से सम्बन्ध रखने वाले नाम लेकर वहां की लीला गाता हैं, उन्हें तो मुरली वाला ब्रज का स्वामी कृष्ण ही अच्छा लगता है, वैकुण्ठ वासी विष्णु नहीं।

मां नैनन.....तरुन की धूँध

हे माता ! अधि दैविक, अधि भौतिक और अध्यात्मिक तीनों तापों का शान्त कर देने वाली बृन्दावन के घने पेड़ों की वह अँधेरे छाया मेरे नेत्रों को कब रोक लेगी। अर्थात् बृन्दावन को कब देखूंगा।

कब बृन्दा.....मुख हूं में पाय

बृन्दावन की पवित्र भूमि पर मेरे पैर कब पड़ेंगे जब कि उस पर लेटने से कुछ धूलि शिर पर और कुछ मुख में पड़ेगी।

पिक केकी.....बाँह पसार।

जिन बृक्षों पर कोयल, मोर कोयल की कुहू की ध्वनि और असंख्य वानरों का समूह होगा, ऐसे बृक्षों को अपने समीप देख कर उन से बांह फैला कर कब भेटूंगा, कब आलिगं करूँगा।

कैब रसीली.....आवेस।

क्या मैं कभी आनन्द देने वाली कुञ्जों में प्रवेश करूँगा ! जो कि हरी भरी लताओं को देख कर मेरा हृदय प्रेम के आवेग या तेजी से भर जायेगा।

प्रिय परिकर.....करि हेत

श्रीकृष्न की विरह भावना वाले, उन के प्रेम के घर, श्रीकृष्ण के प्यारे परिवार या भक्तों को देख कर, उन से प्रेम करता हुआ कब लिपट जाऊंगा।

कुछ मोह.....मानसी टाट

कभी भगवान् मेरे हृदय में प्रेम भाव देख कर थोड़ा औरों से हटा कर मानसी शृंगार करने, भावनात्मक रास करने के लिये यमुना के किनारे ले जायेंगे ? अर्थात् कभी भगवान् मेरे हृदय का प्रेम देख कर मुझे यमुना तट पर बसायेंगे और मेरे हृदय में रास की भावना उत्पन्न करेंगे, जिससे मैं मानसिक संकल्प से ही उनके रास विहार का आनन्द उठा सकूं।

जमुना तट.....उरझाय

चान्दनी रात में यमुना के किनारे जाकर सुन्दर रेतीले तीर पर

कब मैं अकेला चुपचाप और चित्त में प्रेम भाव से भरा हो जाऊँगा।

जुगुल रूप.....दम्पति जान

जो महात्मा लोग राधा कृष्ण के युगल रूप के दर्शन रूपी मदिरा को पीकर तृप्त हैं, जो सदा उनकी प्रसन्नता के मदिरा पान रूपी कार्य में पड़े रहते हैं, लीन रहते हैं, ऐसे महात्माओं की कृपा को ही मुझ पर राधा और कृष्ण की कृपा समझनी चाहिये, अर्थात् उनकी दया से ही राधा कृष्ण भी कृपा करेंगे।

कुण्डल.....चन्द की कांति

रंग विरंगे मणियों की आभा के कारण कुण्डलों की कान्ति जिसके दोनों कपोलों पर अनेक प्रकार से शोभा दे रही है, राधा कृष्ण के उस मुख चन्द्र की कान्ति को इन नयनों से कब देख पाऊँगा, अर्थात् वह शुभ दिन कब आयेगा।

दयन दसनि... ... ...इन नैन

अनार के बीजों के समान चमकदार दांतों में मन्द २ मुस्कान, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती, जिसकी किरणें मुख से बाहर फूटी पड़ रही हैं, अपनी इन आंखों से कब देख पाऊँगा।

कब दुख... ... ... सुकुवांर

मुझे श्रीकृष्ण का विरह कब अत्यन्त दुःखदायी, अत्यन्त असह्य होगा, जब कि मैं व्याकुल होकर 'हे प्यारे सुकुमार मोहन! आप कहाँ हो' कह कर उठ २ कर दौड़ा करूंगा।

ता दिन ही ... ... हियें न चैन

उस दिन से ही मेरा खाना, पीना और सोना छूट जायेगा, यह शरीर दुर्बल हो जायेगा, बाल पक जायेंगे, मैं इधर उधर तड़पता फिरूंगा मेरे हृदय में चैन न होगा।

नैन द्रवै ... ... उसांस

मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहती होगी, क्षण भर में उनके विरह दुःख में लम्बी सांसें भरूंगा।

चरन छिदत ... ... बन मांहि

उस समय मेरे पैर काँटों के लगाने से छिद जायेंगे, उनसे खून बहता होगा। परन्तु मुझे इसका कुछ भी ज्ञान न होगा। मैं बन में गोपियों, वृक्षों, पक्षियों और मृगों से श्रीकृष्ण का पता पूछता फिरूँगा।

हेरत... ... ... छुटि हैं प्रान

जब मैं 'हाय प्यारे कृष्ण, श्याम सुन्दर' ऐसे कह २ कर उन्हें ढूँढता और पुकारता इधर से उधर घूमूंगा, घने से घने जंगलों में यों ही फिरते २ मेरे प्राण छूट जायंगे।

कबै मनो ... ... रसाल

हे प्यारे कृष्ण, नन्दलाल! क्या कभी मेरे ये मनोरथ पूर्ण होंगे, रसिक व्यक्ति आपको सज्जनों की संगति से दूर नहीं मानते। अर्थात् उनका कहना है कि आप सज्जनों का संग करने से प्राप्त हो जाते हैं।

परम मित्र... ... ... नागरीदास

मेरे अत्यन्त मित्र ने आज्ञा दी, मेरे हृदय में जो प्रेम का वास था, उसकी भी प्रेरणा दी, उनसे प्रभावित होकर मुझ नागरीदास ने ये नवीन मनोरथ मंजरी की रचना की है। सम्भवतः इस पद्य के मित्र शब्द से आनन्द घन से आशय हो, क्योंकि इन दोनों सज्जनों की मित्रता का होना बताया है।

जो बाँचे ... ... जय श्री कृष्ण

इस मनोरथ मंजरी के अध्ययन का फल और उपसंहार सूचित करते हैं कि जो व्यक्ति इस मनोरथ मंजरी को पढ़े, या और के मुख से सुने, इसे पढ़ या सुन कर जब उसे प्रसन्नता प्राप्त हो तो इसका आशय जानने के लिये प्रश्न करे, ऐसा व्यक्ति महात्माओं की संगति करे वही इसका रहस्य समझ पायेगा। ऐसे रसिक व्यक्यि को हमारा नमस्कार 'जय श्रीकृष्ण' पहुँचे।

दन्द सुत ... ... अंगन खेले

इसमें श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन करते हैं:—नन्दकुमार श्रीकृष्ण नित्य ही आनन्द मय हैं, सदा प्रसन्न रहते हैं, बाल क्रीड़ा में

लोन रहते हैं, गोकुल में जिसके कारण आनन्द का समुद्र लहरें मारता रहता है। गोरे और सांवले अर्थात् बलराम और श्रीकृष्ण दोनों सुन्दर भाई सुन्दर २ लड़कों को साथ लेकर घूमते हैं, एक घर से दूसरे घर जाकर दही चुराते हैं, रत्न जटित भूषणों से शरीर प्रकाशमान है। कुछ खाते हैं, कुछ मुँह में लपेटते हैं, कुछ बखेर देते हैं, फिर हँसते हुए भाग उठते हैं, चकित से होकर घरों में अपना घर ढूँढते फिरते हैं। कभी बछियाओं की पूँछ पकड़े २ उनके पीछे २ भागते हैं, भागते समय सोने की छोटी २ घंटियाँ कमर में बज रही हैं। गोपों और गोपियों के मन और आँखों के खिलौने से खिले रहते हैं, वे सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं, मानों गोपों और गोपियों के मन खिल गये हैं, कमल के समान मुख को मोड़ कर हँसते हुए सुशोभित होते हैं। मुख पर दही की शोभा है, शरीर में धूल लगी हुई है, अभी से काम की गति को काम के वेग को पैरों से धकेलते हैं, अपनी चाल से काम की भावना बढ़ाते हैं, अथवा मदन का अर्थ मतवाला हाथी लगाना चाहिये, उसका अभिप्राय होगा कि इस बाल पन में ही पैरों में मस्त हाथी की चाल भर गई है। गले में बाघ के नखों की माला है, प्रायः गांवों में समी स्थानों पर पहनाने का प्रचलन है। इससे कहा जाता है कि बच्चों को नजर नहीं लगती। पैरों में पायलों पैजनियों की झनकार है, नागरीदास के हृदय रूपी आंगन में खेल रहे हैं।

रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकार हैं।

अरी छिमा ..... हम हाय।

अरी वंशी! हमें क्षमा कर, तेरे पैर पड़ती हैं, तेरे आगे हाथ जोड़ती हैं, तू इस समय न बज, क्योंकि जहाँ लोग तेरी ध्वनि सुन कर प्रसन्न होते हैं, वहां ही जगना उचित है, परन्तु और लोग तो बड़े सुखी होते हैं पर हाय हम लोग बड़ी दुःखी होती हैं।

कियो न ..... मति गाज।

प्यारे के बल पर सुहाग का राज सभी भोगती हैं, कौन नहीं करती, अरी बावली वंशी! तू उनके मुँह लग गई है, अभिमान न कर

यदि तू ही अधिक आदर पाती तो तेरा अभिमान करना उचित भी था, परन्तु यह तो स्वाभाविक ही है कि प्यारे का यदि प्रेम हो तो प्रेयसी सुख भोगती है, रस में अभिमान के योग्य नई बात क्या है ? इस में असूया नामक संचारी भाव की झलक ।

तो कारन.....जनम कौ वैर ।

अरी वंशी, हमने तेरे कारण घर के सुख त्यागे, तेरे स्वर को सुन कर बन २ में मारी मारी फिरी, संसार का लांछन सहना पड़ा । भला तू यह तो बता, हमारा तेरा कौन से जन्म का वैर था जिसका बदला ने ऐसे चुकाया है । भाव यह है कि इस जन्म में तेरा कुछ बिगाड़ा हो तो हमें नहीं दीखता, पहले जन्मों का स्मरण नहीं, अतः यह किन बुराइयों का बदला है ।

अभिमानी.....चाम के दाम ।

अरी अभिमाननी वंशी । तू क्या अभिमान कर रही है, श्याम वंशी, तू क्या अभिमान कर रही है, श्याम सुन्दर ने तुझे सुहागिनी बना लिया है, तू उन्होंने अपनी प्रेमसी बना ली है, अपने अधिकर से उन्होंने सब पर चमड़े के सिक्के अच्छे चलाये । अथात् तू तो खोटे सिक्के की भांति है जो किसी शासक की अन्धेर गर्दी में चला करता है, तू इस योग्य थी तो नहीं पर उन्होंने तुझे अपनी कर लिया है तो तेरा पारा ही चढ़ गया है और हमें सताने लगी है थोड़ा अपने वास्तविक रूप को पहचान । समासोक्ति अलंकार ।

मुख मूँदे.....घर जात ।

अरी वन्शी ! थोड़ा अपना मुँह बन्द कर, तू क्या उपद्रव कर रही है, तेरे को तो हँसी सूझ रही है, या हँसा तेरे तो घर बस रहा है अर्थात् तेरा घर बस रहा और दूसरों के घर उजाड़ते हैं । अर्थात् तू तो बज कर श्याम को रिझा कर घर बसा रही है, यहां हमारे बसे बसाये घर उजड़ते हैं. हम घर और कुटुम्ब छोड़ कर भागना पड़ता है ।

हरि चित··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· पर लौन।

श्री हरि ने हमारा हृदय चुरा लिया है, जिसके कारण हम से चुप चाप नहीं बैठा जाता, इस पर भी वन्शी बज रही हैं, ऐ वन्शी तू बज कर के कटे पर नमक न छिड़क। अर्थात् जैसे कटे अंग पर नमक लगने से और अधिक जलन होती है, ऐसे ही तू भी बजकर हमारी व्यथा को न बढ़ा। निदर्शन अलंकार की ध्वनि है।

तू हूं ब्रज··· ··· ··· ··· ··· ··· ···मंत्र न मारि।

हे वन्शी, तू भी ब्रज की ही मुरली है हम भी ब्रज की नारियां हैं, एक स्थान पर निवास अरने की मर्यादा का ध्यान करके मन्त्र पढ़ २ कर न मार। भाव यह है कि एक गांव के रहने वाले परस्पर मैल से रहते हैं, अपने जादू आदि का प्रयोग आपस में नहीं करते। तू और हम सभी ब्रज के निवासी हैं पुनः तू अपना टोना हम पर ही क्यों चलाती है।

[illegible]··· ··· ··· ··· ··· ···ब्रज नारि।

अरी वन्शी! तू तीर चला २ कर क्यों मार रही है, कम से कम इतने नाते का तो ध्यान कर, वन्शी और ब्रज बालाएँ तीन लोकों के साथ गाती हैं या गाई जाती है। अर्थात् तीनों लोक रास क्रीड़ा में श्रीकृष्ण के साथ गाती गोपियों और उनकी बजाई बंशी की प्रशंसा करते हैं। साथ २ रहने का कुछ लिहाज तो तुझे करना ही चाहिये।

सब कौ मन··· ··· ··· ··· ··· ···अधर निसाथ।

एक हाथ वाली वन्शी ने प्रियतम के अधरों पर लग कर सब का मन अपने वश में कर अपने हाथों सारी गोपियां नचा दीं। एक हाथ की वंशी ने इतना कर दिखा, यदि दो हाथ होते तो न जाने क्या करती। अर्थापत्ति अलंकार है।

वंस बंस··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बंस कौ बंस।

यह वंशी बांसों के कुल में प्रकड हुई है सारा संसार उसकी प्रशंसा

करता है कि देखो इस बांसों के कुल को धन्य है जिस से उत्पन्न वंशी श्रीकृष्ण के मुख मे लगी अर्थात् श्री कृष्ण ने बजाई है। लोक रीति है कि कोई लड़की यदि किसी सम्मानित कुल में ब्याही जाय या ऊंचपर कोई व्यक्ति पहुँच जाय तो उसके वंश की प्रशंसा की जाती हैं कि इस के कुल को धन्य है, जिसमें ऐसी योग्य संतान पैदा हुई है

फूंकनी के.....बेधतु बैनु

इस वंसी में मारी गई फूंक के तीर चलकर हमारे अंगों में ऐसे लगते हैं कि हमें तनिक भी कल नहीं पड़ती, देखो उन फूंकों के तीर से अपने अंगों को विधा कर वंशी अब हमें बाँधने चली है। अर्थात् आप तो बंध ही गई है पर हमारे अगों को भी बांधती है।

हा हा अब... ... ... पास्वै पीर

हाय! हाय! हे वंशी तेरे आगे विनती करती हैं, तू अब भी चुप हो जा, तू तो हमें सर्वथा व्याकुल किये दे रही है, तू अपने शब्द के प्रभाव को नहीं जानती, थोड़ा मुझ सी विरहिणी बन जा और अपना स्वर सुन तब तुझे हमारी वेदना का अनुभव होगा।

सबद सुना... ... . बकवादों वनु

अरी वंशी! तू हमें शब्द सुना २ कर क्षण भर भी चैन नहीं लेने देती। अरी व्यर्थ बकने वाली, थोड़ी देर तो चुप रह जा,

घिर कीन्हें... ... ...सों गाजि

वंशी ने श्री कृष्ण के मुख से बज कर चर अर्थात् चलते फिरते जीवों को जड़ सा बना दिया है, सब सुन २ कर ठगे से रह जाते हैं, उन्हें हिलने डुलने की भी संज्ञा नहीं रहती, और स्थिर और जड़ पदार्थों चेतना का संचार हो गया है। जड़ पदार्थों को सुख दुख की अनुभूति नहीं होती, परन्तु वंशी का शब्द सुन कर जड भी सजीव से हो दीख पड़ते हैं, इस वंशी ने बज कर के सभी के बड़े से बड़े अभिमान को चूर्ण कर दिया। अर्थात् इस प्रकार असम्भव करने का प्रभाव किसी में नहीं है, वंशी ने ऐसा करके दिखा दिया है। विरोधीभासा अलंकार है।

इश्क उसी .. ..नादिर रूप

प्रेम उस परमात्मा का ही स्वरूप है, जैसे धूप सूर्य का ही स्वरूप होती है। जहां सच्चा प्रेम रहा करता है वही दुर्लभ और कुदरतों का देने वाला कादिर नादिर नाम से पुकारा गया, स्वयं परमात्मा निवास करता हैं। उदाहरण अलंकार।

कहूं किया .. ..सके गंवार

जिसने इश्क या सच्चे प्रेम का संचार कर या उचित रूप से प्रयोग नहीं किया, वह गंवार प्रेम का महत्व न जानने वाला उस परमेश्वर से क्या प्रेम करेगा। भाव यह है कि संसार के स्त्री आदि भोग्य पदार्थों से प्रेम करना प्रेम का दुरुपयोग है। प्रेम किसी उत्तम, आकर्षक और स्थाई सुख देने वाली वस्तु से करना चाहिये। स्त्रीं आदि क्षण भंगुर पदार्थ हैं, उनमें आशक्ति रखने से स्थाई सुख नहीं मिलता। प्रेम का एक मात्र सत्य आलम्बन तो परमेश्वर ही है जो कि उद्धार करके जन्म मरण के संकट से ही दूर कर देता है।

सब मज... ... ...बरबाद

सभी मजहब या सम्प्रदाय, सब प्रकार की विद्यायें और सम्पूर्ण संसारिक भोग विलास सम्बन्धी सुख सच्चे के बिना व्यर्थ ही हैं।

आया इश्क... ... ...सब पेट

जो उस की आंखों की चोट खा कर इश्क या प्रेम की लपेट में आ गया, प्रेम के चक्कर में पड़ गया, संसार में वास्तव में वही आया है, अन्यथा सब तो कोरा पेट ही भरते हैं। अर्थात् जिसका भगवान से प्रेम हो गया, उसका ही जन्म सफल है, अन्यथा पशुओं की भांति पेट भर कर जीना भर है।

कोइ न... ... ...मजनू एक

प्रेमी या आशिक तो बहुत बने, पर प्रेम की जो सीमा है, वहां तक कोइ न पहुँच सका, इस इश्क या गहरे प्रेम के बाग में केवल मजनू आया, जो अपनी प्रियतमा लैला के लिये न्यौछावर हो गया। इश्क की

तन्मयता के लिये मजनू प्रसिद्ध हो गया है जो कि लैला में ही परमेश्वर भी देखता था, उसके लिये लैला ही सब कुछ थी। इसी प्रकार अपना सब कुछ परमात्मा को बना कर उसके प्रेम पथ में चलता २ मर मिटने वाला व्यक्ति दुर्लभ ही है।

इश्क चमन... ... ...बचाव

महबूब या माशूक जि ससे प्रेम किया जाय, माशूक का प्यारे का जो इश्क रूपी बाग है, उसमें पैर सम्हाल कर आना उसका मार्ग बडा कठिन है, यदि शास्त्रों से बताई गई कर्म धर्म आदि की सड़क में इस बाग में आना चाहेगा तो डूब जायगा, वहां तक पहुंच ही नहीं पावेगा परन्तु जो प्रेम पर मर मिटने वाले दीवानों का ऊबड खाबड मार्ग है, इससे तू उस गहराई में डूबने से बच जायगा। लोक में अनुभव सिद्ध है कि प्राय सीधी सडक चक्कर दार होती है, पथिक उसके कई घुमान पार करता २ थक जाता है, उससे बचने के लिये लोग पगदण्डियों के बीच के साधारण मार्ग से आते जाते हैं। इसी प्रकार उस प्यारे तक पहुँचने के लिये सुगम उपाय प्रेम मार्ग को अपनाना ही है।

इश्क चमन .. ..बौरा होइ

यह माशूक [प्यारे भगवान] के इश्क का बाग बडा अद्भुत है, उस मे कोई नहीं प्रवेश कर सकता। क्यों कि उस मार्ग में जाने काजो साहस करता है वह जीता नहीं रहता, वह उसी के ध्यान में अपने अस्तित्व को मिटा देता है। यदि कोई जीता भी रहे तो यह गूंगा या मतवाला होगा। गूंगा अपना अनुभव किसी पर प्रकट नहीं कर सकता, अतः उसका आनन्द हृदय में ही लेता रहता है, प्रेमी भी अपने इष्ट के प्रेमानन्द का अनुभव करता रहता है, वह संसार की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। भाव यह है कि प्रेम वही करे जिसने इस पथ में अपने आप को मिटा डालने का निश्चय कर लिया हो। मौत से या कष्ट से डरने वाला इस मार्ग में न आये।

सीस काटिके... ... .तो आव

जो व्यक्ति अपना सिर काट कर पृथ्वी पर रख कर स्वयं उस पर

पैरों की ठोकर मारे, वही व्यक्ति इस इश्क या प्रेम के बाग में आवे। अर्थात् जो व्यक्ति अपने हाथों सिर की बाजी लगा सके, अपने प्राणों तनिक भी मोह न रखे, वही प्रेम के मार्ग में आये।

अरे पियारे... ... . इश्क की आग

'वेदना छिपाये नहीं छिपती' इस भाव को लेकर कहता है, हे प्यारे, भला क्या करूं, इस वेदना को कहां छिपाऊँ, जिसे इश्क की आग लगी हुई हो, वह दिल रूपी बारुद में आग लगने पर आग रुकने के स्थान पर भयानक विस्फोट के साथ प्रचण्ड रूप से प्रकट होती है। इसी प्रकार मन में प्रेम की ज्योति जलने पर नहीं छिप सकती, उसका प्रभाव अवश्य प्रकट होता है।

आतिस ... ... लागी लाय

प्रेम की आग प्रज्वलित होते ही दिल में पहुंच जाती है, वहां पर गहरे इश्क या प्रेम शक्ति रूपी बारूद भरी हुई थी आग का या प्रेम का प्रभाव पड़ते ही वह दूने रूप में भभक उठता है।

वृन्दावन ... ...चंचला।

रासलीला का वर्णन करते हैं। वृन्दावन के जंगल में आकाश मार्ग में देवताओं के बिमानों की भीड़ लगी हुई है। रास क्रीड़ा देख २ कर अप्सरायें मन चली हो रहीं हैं, उनकी रास में सम्मिलित होने की इच्छा होती है, वंशी को बजाने की ध्वनि वायु में फैल कर दूर २ तक फैल गई है, लक्ष्मी वैकुण्ठ लोक में भी बैठी हुई रास के लिये ललचा कर अपने हृदय रूपी अंचल को अर्थात् हृदय को भुला बैठी है। दो दो गोपियों के बीच में प्यारे त्रिभंगी लाल श्री कृष्ण नृत्य कर रहे हैं, नागरीदास कहते हैं कि उनके और गोपियों के पैर पटकने से पायलों की छन २ की ध्वनि सुनाई देती है। रास क्रीड़ा के गोल चक्कर में हाव भाव के प्रकट करने के साथ घूमते समय कृष्ण उन गोपियों के साथ घूमते ऐसे प्रतीत होते हैं मानो बादलों के समूह में चंचल बिजली चमक रही हो।

सुवर्ण से गौर वर्ण वाली गोपियां हैं, दो २ के बाद अनेक रूप

बनाये श्रीकृष्ण है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक मेघों के बीच २ में बिजलियों की रेखा चमक रहीं हो। रूपक, उत्प्रेक्षा, सम्बन्धति शयोक्ति।

यह वृन्दावन... ... . रस रीति

यह पवित्र वृन्दावन धाम, यह शरद् ऋतु की चान्दनी रात्रि क सुन्दर रमणीय काल, श्री राधा और श्रीकृष्ण का यह अखण्ड प्रेम और नित्य रास विहार का यह ढंग नागरीदास कहते हैं, सदा मे मन में प्रतिबिम्बित से निवास करें। तुल्ययोगिता है।

उज्ज्वल .. .. आवत

शुक्ल पक्ष की चान्दनी रात थी, वह अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाली थी, नक्षत्र पति चन्द्रमा उदित हो रहा था, उसकी उदय कालीन लाल २ कांति मन को हर लेती थी, उस कांति को देख कर नायिकों के मान या प्रणाम कोप रूप रुपी गढ़ दग्ध हो गये, ढह गये, अब सब का अपने प्रियतयों से मिलने के लिये उत्कण्ठित हो रहा था जैसे २ पूर्ण चन्द्रमा आकश में चढ़ता जाता था. रात्रि खिलती जा रही थी।

जगमगात .. .. दहनी

वन की ज्योतियां चसकने वाली औषधियां जगमग चमक रही थी, पानी स्रोत, चश्मे अमृत की धार से सुशोभित हो रहे थे। पेडों में नये-नये पल्लव ऐसे चमकते थे, जैसे तारे कमक रहे हों। धवल वर्ण की चान्दनी रात थी, चित्त को सुख दे कर कांत का उमाह या आवेश उत्पन्न करती थी, उसी प्रकार धीमी २ और सुगन्धत वायु चल रही थी जो कि दिनमणि सूर्य के ताप से होने वाले कष्ट को जलाने वाली थी, वायु की शीतलता का ज्ञान इस हद से समझना चाहिये।

अधिनायक .. .. पाइम आई

पर्वत राजा गोवर्धन पर्वत मानों राजा थे, सुन्दर वृन्दावन जो कि पर्वत की तलहटी में था पैर रखने का पाद पीठ था। स्फटिकमणि या बिल्लौरी पत्थर की शिलायें थी मणियों के शिखर थे, इनको दोष रहित

अर्थात निर्मल कान्ति चमक रही थी। प्रत्येक शिला पर चन्द्रमा का प्रतिविम्ब झलकता था, उनमें पड़ कर चमकती किरणों की शोभा बड़ी छाई हुई थी, बीच २ आम और कदम्ब वृक्षों के झाव या टहनियों के झुण्ड नीचे परों में झुक रहे थे।

ठौर ठौर... ... ... गिरधारी

स्थान स्थान पर चारों ओर फूलों के ढेर सुशोभित थे, उन फूलों से सुख देने वाली मधुर सुगन्ध फैलती थी जिसके मद से अन्धे होकर झूमते भौंरे घूम रहे थे, झरनों में से निर्मल जल वह रहा था, जिसकी झर २ की ध्वनि हृदय को बड़ा सुख देने वाली थी। उन झरनों के जल की स्वाभाविक ही अत्यन्त मधुर सुगन्ध थी, केसर के भी अभिमान को चूरने वाली थी। उस पवित्र और सुन्दर प्रदेश में स्थान २ पर अनेक उपयुक्त स्थान देख कर प्रबल काम निवास करता था, अर्थात् उसका प्रत्येक स्थान काम का उद्दीपक था। ऐसे रमणीय स्थल में उस पर्वत के वृन्दावन जैसे वन में गिरधारी श्रीकृष्ण नित्य प्रति नाना प्रकार की राम लीलायें किया करते थे।

भगवत रसिक

सब कालन... ... ...मंगल करन।

जो भगवान् सब कालों का भी काल है, सृष्टि के संहारक तत्वों का भी अन्त कर्ता है, इन्द्र आदि अष्ट लोकपालों का जो पालन करता है अर्थात् संकटों के समय जो उन्हें संकटों से उबार कर ऐश्वर्य सुरक्षित कर देता है; जो स्वयं इस अपनी त्रिगुणात्मक माया से स्वतन्त्र है, विशाल अर्थात् अन्यों से अज्ञेय बुद्धि से जो सब चर अचर का शासन करता है। जो एक मात्र होकर कौतूहल से इस विश्व की सृष्टि करता है, पुनः उसमें रमता है, आप ही अपने बनाये संसार में व्यापक रहता है, देखने में भूल सी करता है, संसार समझता है कि वह परमात्मा भी अनेक भूलें करता है, परन्तु यह भ्रम है, वह किसी भूल में नहीं पड़ता। अथवा भ्रम उत्पन्न करने वाली अविद्या रूप योगमाया की वह सृष्टि करता है, परन्तु स्वयं इस भ्रम में या अविद्या के जाल

में नहीं पड़ता, छहों प्रकार के ऐश्वर्यों में समर्थ वह पापों के हरण करने वाले अनाथ के भी रक्षक अष्टैश्वर्यों के स्वामी हर्ष और कल्याण प्रदान करने वाले सर्व समर्थ प्रभु शरीर और मन से उत्पन्न वेदनाओं को अर्थात् आधि व्याधि को दूर करें।

कुँजन तें... ... ... नैननि भरे

अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्त और भगवत्प्राप्ति का मार्ग रूप मानव का कर्तव्य बताते हैं कि कल्याण चाहने वाला व्यक्ति श्री राधा कृष्ण के लीला विहार से पवित्र कुंजों में रात्री को शयन करे, प्रातः काल उन्हीं कुंजों से जाग कर यमुना में अपने शरीर को धोवे या स्नान करे, निधिवन नामक कुंज में भगवान् को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे। जो प्रणाम सारे शरीर को डण्डे की भांति भूमि पर लिटा कर किया जाता है, उसे साष्टांग या दण्डवत् कहते हैं, इस दण्डवत् प्रणाम से यहां पर श्रीकृष्ण का पूजन आदि कर्म भी अपेक्षित है, क्योंकि पहले पूजन करके पीछे प्रणाम किया जाता है, इसके अनन्तर बांके बिहारी का दर्शन करे, निर्मल और उपद्रव रहित एकान्त स्थान में स्थिर भाव से बैठ कर भगवान का चिन्तन करे, मन में भी किसी प्रकार की इच्छा आदि अशान्ति का कारण न रहने दे, जब भोजन की इच्छा हो, घर २ से प्रसाद ले, अर्थात् कृपणापण के रूप में लोग जो कुछ थोड़ा बहुत दें वही मधुकरी भिक्षा लेकर भोजन करे। भगवान के प्रेमियों की ही संगति करे, हाथ में कलवा, मिट्टी का पात्र और गले में गूदड़ी लिये घूमे, इसका तात्पर्य अपरिग्रह भाव से है, भक्ति के लिये सर्व प्रथम धन माया से सम्बन्ध तोड़ना आवश्यक है। सब कुछ त्याग कर केवल इन दो वस्तुओं को रखे, इस प्रकार अकिञ्चन होकर वृन्दावन में रमता फिरे और श्रीराधा कृष्ण के रूप को अपने नयनों में रमाले।

साँचे श्रीराधा... ... ...बोले सांचे

श्रीराधा रमण, राधा पति श्रीकृष्ण ही सच्चे तत्व हैं, वही सदा रहते हैं, बाकी संसार झूठा है। जिस प्रकार जादूगर द्वारा खेल में बताये गये पदार्थ शीघ्र ही अदृश्य हो जाते हैं, इसी प्रकार इस संसार

को मिटते देर नहीं लगती। राख की बनी सम्पत्ति की भांति नष्ट हो जाता है, राख की वस्तु सहसा उड़ जाती है। पत्नी, पोते बेटे सभी ऐसे देखने को हैं जैसे धुँए का घरहरा, थोड़ी हवा से छाया धुँवा उड़ जाता है, वैसे ही पत्नि आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। भगवत् रसिक कहते हैं कि इस प्रकार संसार के क्षण भंगुर होने पर भी जो लोग लोभ के कारण घर २ में नाचते हैं, वे अत्यन्त नीच हैं। वास्तव में वे सब सुनार द्वारा झूठे गढ़े हुए मोम के सांचे हैं। जैसे सुनार और धातु भर कर ऊपर से कुछ चान्दी या सोना लगा देता है, ऐसे गहने शीघ्र ही काले पड़ जाते हैं, उनकी कान्ति शीघ्र ही उड़ जाती है। ऐसे ही ये सभी सांसारिक पदार्थ आँख मूँदते २ नष्ट हो जाने वाले हैं।

नित्य बिहारी ... ... नित्य बिहारी।

नित्य बिहारी परम पुरुष का एक अंश प्रथम पुरुष नारायण के रूप में अवतार कहाया, शेषनाग पर सोने वाले नारायण नित्य विहारी भगवान् के एक स्वरूप हुए, उन नारायणके अंश से योगमाया उत्पन्न हुई, जिसका यह सारा फैलाव दिखाई दे रहा है, उस माया से महत् नामक तत्व का उत्पत्ति हुई, महत्तत्व से अहंकार की, अहंकार से वेदों का उत्पत्ति हुई। अहंकार ही सत्वरजस्तम इन तीन गुणों के रूप में ३ भेदों में बाँटा, उन तीनों गुणों का आधार लेकर नारायण ने शिव, ब्रह्मा और विष्णु तीन रूप धारण किये। इस प्रकार ये सभी रूप भगवान् के ही तत्व या अंश हैं, इन सबके मूल कारण भगवान् नित्य रास विहारी श्री कृष्ण हैं।

अचारज ... ...रसिकारज।

हमारे आचार्य अर्थात् मार्ग दर्शक ललिता सखी के उपासक स्वामी हरिदास जी हैं, हमारा छाप या चिन्ह केवल रसिक है, नित्य ही किशोर रहने वाले श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं, राधा कृष्ण के नाम मंत्र का जप करते हैं। रसिकों या प्रेमियों को बेदवाणी राधाकृष्ण के मूल मंत्र का जप करते हैं, श्री वृन्दावन ही हमारा

तीर्थ है, हमारी उपास्य देवता महारानी राधा हैं। प्रेम देवता के बिना मिले, प्रिय देव के दर्शनों के कोई भी कार्य अथवा कल्याण रूप कार्य सिद्ध नहीं होता। सब प्रकार का सुख देने वाले रसिकों के आचार्य स्वामी हरिदास जी का इसलिये दर्शन हुआ। अर्थात् स्वामी हरिदास जी ने ही उन इष्ट देव का दर्शन कराया।

नाहि हिन्दू ... ... सों है नहि।

हम हिन्दू, मुसलमान, जैन या अंग्रेज कुछ नहीं हैं, हम तो केवल कुँज बिहारी श्री कृष्ण की सेवा के लिये फूल चुनने वाले सेवक हैं। हमने वेदों का यज्ञ आदि कर्म काण्डी मार्ग और तन्त्र आदि का वाम मार्ग दोनों त्याग दिये हैं, केवल श्री कृष्ण और राधा की लील देखना हमारा धर्म कर्म है, हमारा नाम सखि भगवत् रसिक है। राधा की सखी ललिता को पाकर उसकी कृपा से श्री श्याम सुन्दर की सेवा करते हैं, इसके अतिरिक्त हमें न किसी से बैर है न मोह है। श्री कृष्ण के अतिरिक्त हमें किसी से अपेक्षा नहीं है।

जैसे मिले ... ... बाहिर तैसे

जैसे नाग सिलाने से सोने में दाग लग जाते हैं परन्तु सुहागे के मेल के साथ तपाने से वे सब दाग छूट जाते हैं यही ललिता की रीति है अर्थात् वह भी सम्पूर्ण बुराइयों को अन्तर से बाहिर निकाल देती है। उसे कि यदि पानी की धारा किसी खड्ड या गड्ढे में समा जाय तो उस गढढे का कूड़ा करकट सब पानी के ऊपर तरन लगता है, भगवत् रसिक कहते हैं कि अनन्य अर्थात् एक मात्र भगवान हृदय में इस प्रकार बिराजते हैं, जैसे अंजन या सुरमा तो आँखों के अन्दर रहता है पर बौरनियां अर्थात आँखों के आवरण बाहर रहते हैं। अर्थात ललिता रानी या ललिता की सखी राधा रानी का हृदय में निवास होते ही अन्तः करण के दोष सब बाहिर आजाते हैं। वाक्यर्थोपमा अलंकार है।

चसमा नित्य... ... ... बिनु चसमा

श्रीनित्य बिहारिणी राधा रानी ने मुझे अपने नित्य विहार के स्रोत दिया है, उस रास विहार को देख कर हृदय में प्रेम और वि...

दोनों का संचार हो गया है. मैंने अपने हृदय में भी इस को प्रत्यक्ष देख लिया है। हृदय में प्रेम विश्वास द्वारा अपने प्रिय और सर्वस्व को पा लिया है जिसका कि नारद, शुकदेव, सनकादि मुनि, वेद और शास्त्र 'नेति नेति' कहा करते हैं. अर्थात जिसके स्वरूप का निश्चय नहीं कर पाते भगवत रसिक कहते हैं कि यह प्रेम मार्ग प्रत्यक्ष ही पूर्ण चन्द्रमा है, परन्तु शुद्ध भाव रूपी स्रोत के बिना प्रेम रूपी अमृत नहीं बरसता, अर्थात् हृदय में शुद्ध प्रेम के बिना उस रास बिहारी के दर्शन नहीं होते जोकि आनन्द प्राप्त हो सके। रूपक अलंकार

देख हाट ... ...कहुं देखे

जैसे प्रकार बाजारों में पालिस किये हुए कांच के टुकड़े तो बिक जाते हैं परन्तु सच्चे मोतियों को लिये हुए रत्न विक्रेता गाहक न मिलने के कारण फिर जाते हैं, अर्थात जैसे नकली रत्नों के ग्राहक तो मिलते हैं, सच्चे रत्नों के नहीं जैसे ऊसर में बादल बरसना व्यर्थ होता है, जैसे ५६ प्रकार के पदार्थ बना कर किसी जंगली पशु को परसना व्यर्थ होता है, इसी प्रकार कोरे कर्म काण्डी वर्ण और वैदिक धर्म में लगे रहते हैं परन्तु कल्याण का साधन वास्तविक भगवत, प्रेम उनमें नहीं होता। उनके ऐसे कर्म काण्डी धर्म के भ्रम में फिरने वाले तो बहुत देखे हैं परन्तु भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम का मर्मज्ञ कोई एक आध ही दिखाई देता है। यहां वाक्यार्थोपमा अलंकार है।

अनुभव ... ... अनुभव

बिना प्रत्यक्ष अनुभव के संसार अन्धा हो गया है उसे कोई वस्तु प्रत्यक्ष नहीं होती। जिसका मुंह हो न हो उसे दर्पण दिखाने से क्या लाभ अज्ञानों को अर्थ वाली वाणी कहने से कोई लाभ नहीं, बिना प्रत्यक्ष अनुभव किये सुनने मात्र से विश्वास नहीं होता। बिना देखे तो शंका सन्देह से हृदय को जलाना मात्र है। मृत देह को कितना ही क्यों न मला जाय जैसे उसमें जीवन नहीं आ सकता, उसी प्रकार भगवत रसिक कहते हैं कि बिना प्रत्यक्ष अनुभव किये अप्रत्यक्ष के भर्म को कोई क्या जान सकता है। विनोक्ति और वाक्यार्थोपमा अलंकार हैं।

काहू दई ... ... नहि काहू

रसिकों की, भगवत्प्रेमियों की प्रेम रूपी वस्तु उन्हें न किसी ने दी न ली, भगवान् का प्रेम उन्होंने किसी से खरीदा या दान में नहीं पाया, परन्तु उनके हृदय में वर्तमान दिखाई दिया करता है, जैसे मणिवाला सांप सदा अपनी मणि अपने साथ लाता और ले जाता है किसी ने देखा नहीं कि कब और किस ने उसे मणि दी है। वे अपने भगवत् प्रम को निरन्तर हृदय में सुरक्षित रखते हैं, अपने इष्ट देव के प्रेम का इस प्रकार सेवन करते हैं जैसे कंजूस व्यक्ति अपनी सम्पति की देख भाल किया करता है। भगवत रसिक कहते हैं कि श्रीराधा और कृष्ण की सुन्दर रास क्रीड़ा मन में रमी हुई है· हमारी दृष्टि में भर गई है परन्तु इसका रहस्य कोई नहीं जान पाता। वाक्यार्थोपमा अलंकार है।

भगवत रसिक ... ... उर भगवत

भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान् के प्रेमी अपनी बुद्धि को एक-मात्र श्री राधा कृष्ण के प्रेम में लीन रखते हैं. उनका प्रेम दृढ होता है, जैसे अमरबेल आकाश को नहीं छोड़ती, कस्तूरी सुगन्ध को नहीं छोड़ती हारिल पक्षी जैसे लकड़ी को नहीं छोड़ता, सर्वदा बहने के लिये उस लकड़ी को साथ लिये रहता है। चुम्बक पत्थर पकड़े या खींचे हुए लोहे को नहीं छोड़ता, लकड़ी जैसे एक बार पकड़ी अग्नि को नहीं छोड़ती, हवा या वायु के चलने से जैसे पहाड़ नहीं हिलता, इसी प्रकार किसी प्रकार के रूप रस आदि गुण का शरीर के साथ स्पर्श होने से भी मन नहीं डिगता श्रीराधा और श्रीकृष्ण को अपने हृदय रूपी भवन में बसा लिया है। वाक्यार्थोपमा अलंकार है। मालोपमा भी है।

चलनी में ... ... को चलनी

लोग छाननी में तो गाय दुहते हैं और दोष भाग्य को देते हैं, भगवान् और गुरु का कहना तो मानते नहीं अपना किया ही लेते हैं अर्थात् जो अपने मन को भाता है, वही करते हैं, उसका परिणाम यह होता है कि वे दुःख भोगते हैं जोकि उनके किये का ही फल होता है,

वास्तव में यह ईश्वर की इच्छा से नहीं होता, जब अपनी ही भूल हो तो स्थान विशेष जैसे कोई तीर्थ, काल विशेष जैसे कोई पर्व, प्रारब्ध या भाग्य और देवता कोई भी रक्षा नहीं कर सकता, मूर्ख बन्दर मुट्ठी या लोभ नहीं छोड़ता, तोता अपना हठ नहीं त्यागता और कमल को पकड़े रहता है, उसका परिणाम दुःख ही होता है, इसी प्रकार मूर्ख के लिये चलनी भाग्य बन जाती है, मूर्ख चलनी किये काम को भाग्य मानता है।

यहाँ पर चलनी से अभिप्राय कोरे धार्मिक आचार से है, चलनी में दूध दुहने का परिणाम यही होगा कि दूध सारा बिखर जायेगा, हाथ कुछ नहीं लगेगा। इसी प्रकार जो लोग केवल धार्मिक आचारों का तो पालन कट्टरता से करते हैं परन्तु उनमें भगवान् के प्रति निष्ठा तनिक भी नहीं होती। परिणाम यह होता है कि वे धर्म कर्म व्यर्थ ही जाते हैं, उनके भुलावे में वे लोग अनेक पाप भी कर बैठते हैं और फल स्वरूप दुःख ही भोगते हैं, परन्तु इसका भार वे अपने ऊपर न लेकर ईश्वर या भाग्य पर डालते हैं। वास्तव में ईश्वर तो उन्हें कष्ट नहीं देना चाहता, अपनी भूल का उन्हें फल भोगना ही होगा। बन्दर लालच नहीं छोड़ता, जिसके कारण वह पकड़ा जाता है, तोता कमल के फूल को फल समझे लिये रहता है परन्तु चोंच मारने पर उसमें सार कुछ नहीं निकलता। इससे वह यदि दुःख भोगता है तो उसकी अपनी भूल का ही परिणाम है। इसी प्रकार धार्मिक बनने वाले भक्ति हीन व्यक्तियों के कोरे आचार निःसार ही रह जाते हैं। भाव यही है कि कोरे आचार से कल्याण नहीं होता, कुछ भगवान् के प्रति प्रेम भी चाहिये।

अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्य लिंग अलंकार हैं।

अन होनो ... ... अन होनी

अन होनी जो कि भाग्य से सम्भावित नहीं है, कभी नहीं होती, जो भवितव्यता है, जो होनी है, वह कभी टालने से टल नहीं सकती, उदाहरण के लिये देखिये सीता और राजा दशरथ दोनों कितने समर्थ

शक्ति शाली थे, राजा दशरथ चक्रवर्ती और ऐश्वर्य सम्पन्न सूर्य वंशी प्रतापी राजा थे, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे वीर और योग्य उनके पुत्र थे, सीता भी विदेहराज, मिथिलापति राजा जनक की कन्या महाराज दशरथ की पुत्रवधू, भगवान् राम की प्रिय पत्नी और लक्ष्मण आदि की पूज्या थीं। राम और भरत के साथ गुरु वशिष्ठ सभी ये महा शक्तिशाली, तथापि इनको कितना कष्ट उठाना पड़ा। सीता को सारा जीवन पति वियोग में बिताना पड़ा, दशरथ को चार पुत्र होने पर भी पुत्र वियोग में प्राण त्यागने पड़े, राम को वनवास, सीता वियोग आदि कष्ट उठाने पड़े, इन सभी का पुरुषार्थ और गुरुवशिष्ठ का मन्त्र-बल भी इन विपत्तियों को न रोक सका।

भगवान् परम शक्तिमान परमेश्वर श्रीकृष्ण के देखते २ यदुवंश नष्ट हो गया, राजा परीक्षित जैसे महा भक्त और धर्मात्मा ने एक मौनी ऋषि के गले में मरा सांप पहनाया, अतः भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान् की इच्छा जान कर इसको अनहोनी न समझिये, भगवान् के चाहने के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं है।

विशेष... ... ...श्री कृष्ण को गान्धारी ने वँश नाश का शाप दिया था। दुर्वासा ऋषी ने भीउनके पुत्रों को वंश नाशक मुद्गर जनने का शाप दिया था, श्रीकृष्ण ने उस मुद्गर का चूरा कर समुद्र में फिकवा दिया, परन्तु उसके आधार पर एक बड़ी जंगली घास उत्पन्न हुई जो कि अगों पर तलवार की सी काट करती थी, एक बार प्रभास तीर्थ पर सब यादव नहाने गये, वहीं मदिरा से मतवाले हो कर सब परस्पर लड़कर मर गये।

इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

जात जात... ... ... जात जात में

जाति जाति में जातियाँ हैं अथवा सभी जातियाँ जात अर्थात् जन्मधारी जीवों में हैं, प्रत्येक जीव ही जात या जन्मधारी है, अतः सभी अच्छी या बुरी जाति के हैं। जो रसिक है, एकमात्र भगवान ही जिसके प्रेम या विषय हैं, वही जिसके सगे हैं उसकी जाति रसिक

ही हैं और कोई जाति नहीं है, भला मैं उसकी और क्या जाति बताऊं उसका सजातीय या समान जाति का बन्धु उसे कहेंगे जो कि सुजान और समझदार होगा। उसकी भाँति भगवत्प्रेमी होगा, जो कि इस पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप पंच भूतों के बने शरीर रूपी धूल की जाति वर्णन करता है, इसी शरीर को महत्व देता है, भगवद् भक्ति से जो विमुख है, दूर है, उसे हम विजातीय अर्थात् भिन्न जाति का कहेंगे। तर्क करने वाला वह व्यक्ति जो कि शरीर की जाति को ही महत्व देता है, अपने स्वरूप को नहीं देखता, यह नहीं देखता कि यह शरीर रक्त मांस हड्डी आदि घृणित पदार्थों से बना है इसमें मल मूत्र श्लेष्मा आदि घृणित सामग्री भरी है, सभी मनुष्यों का शरीर वैसा ही है, तब भला इस जाति के भेद से क्या लाभ होगा। यह केवल बातों २ में ऊंची नीची जाति का भेद मानता है, भगवत रसिक कहते हैं कि इस प्रकार के विचार रखने वाले व्यक्ति भगवान् के भक्त नहीं हैं, उनके लिये सारा संसार ही जाति २ में हैं या सारा संसार ही जात या जन्म धारी में हैं। भाव यही है कि जीव धारण करने वाले ही जाति हैं, इसके अतिरिक्त शरीर की कोई अच्छी बुरी जाति नहीं सुमार्ग पर चलने वाला और हरिभक्त ही अच्छा जातीय है और इससे विपरीत आचरण वाला विजातीय है।

पैसा पापी .. ..परसौ पैसा

अपरिग्रह का भाव प्रकट करते हैं कि महात्मा को पापी पैसा अर्थात धन छूने मात्र से पाप लगता है। धन को छूने मात्र से सज्जन बुद्धि पाप मय हो जाती है। धन उसे गुरु और अपने पूज्य परमेश्वर से विरुद्ध कर देता है, दुःख उत्पन्न करता है, ज्ञान वैराग्य भाव सब को नष्ट करता है, मन में काम, क्रोध, अहंकार, लोभ ममता और ईर्ष्या सजा देता हैं, बढाता है, सब शत्रुओं में धन मुख्य शत्रु है, उसके समान भक्तों का शत्रु कोई नहीं। भगवत रसिक कहते हैं कि जो लोग एक मात्र भगवान् को भजते हैं, उन्हें पैसा कभी भूल कर भी नहीं छूना चाहिये।

आधै जो सा... ... ...कैसे आवे

वर्तमान काल के साधुओं की दशा पर कटाक्ष है, जो आता है, वह आटा मांगते। जहाँ जाता है, वहीं आटे का प्रश्न खड़ा रहता है, आंखों में आटे का ही चश्मा लगा हुआ है, अर्थात् सदा आटा ही दिखाई देता है ईश्वर के प्रति भक्तिभाव फीका पड़ गया, भक्ति की प्रधानता आटे के लोभ ने ले ली। इस प्रकार सच्चे साधु या महात्मा का स्वरूप पहिचान में नहीं आता, लोग सज्जन को नहीं पहिचानते, अपनी प्रतिष्ठा अहंकार के नशे में डूबे रहते हैं, उन्हे कुछ का कुछ दिखाई देता है, भाव कि सज्जन को भी वे कुछ का कुछ समझते हैं। श्री हरि, गुरु और सज्जन को छोड़ कर केवल अपनी प्रभुता, अपने गौरव के ही गुण गाता है, भगवत रसिक जी कहते हैं, भला कहो तो कि ऐसे हृदय में राधा कृष्ण कैसे आयें।

रूपक और काव्यलिंग अलंकार है।

गेही संग्रह... ... ... गेही

जो गृहस्थी संग्रह को त्याग दे, गृहस्थी अन्य तीनों आश्रमों को भिक्षा देने वाला होता है, अतः उसका कर्तव्य संग्रह करना है, उसे अन्न, धन, वस्त्र आदि जोड़ना चाहिये, परन्तु गृहस्थी यदि इस कर्तव्य का पालन न करे और जो विरक्त अर्थात् वैराग्य से घर बार को छोड़ चुका हो, सन्यासी संग्रह करने लगे, साधु के लिये संग्रह या जोड़ना महा पाप लिखा है, उसे तो यह इच्छा लाभ सन्तुष्ट अर्थात् अपने आप जो कुछ मिल जाय उससे सन्तोष करे, परन्तु यदि वह विरक्त पुरुष धन आदि जोड़ने लगे तो ये दोनों भगवान और गुरु दोनों की आज्ञा के विरुद्ध चलने के कारण उनके विरोधी हैं। उनकी आज्ञा से विरुद्ध होने के कारण यमराज के हाथ जाते हैं और २८ नरकों में मुंह नीचा करके डाले जाते हैं।

भगवत रसिक कहते हैं कि हे भाई ? तुम एक मात्र प्रेमी श्याम सुन्दर को भजो, अपने को कर्तव्य से भ्रष्ट सन्यासी और गृहस्थी का परित्याग कर दो।

जाका जैसी... ... .तैसी ताका

भगवान को मिलने के मार्ग अनेक बताये गये हैं, जिसको जैसी ज्ञात हुई, समझ में आई उसने वही रीति बताई, कौन सा मार्ग एक ही ठीक है इसका कोई निश्चय नहीं हो सकता, मार्गों के भिन्न २ होने का प्रमाण हमारे वेद, स्मृतियां, श्रीमद्भागवत और गीता आदि धर्म ग्रन्थ साक्षी दे रहे हैं 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थात् जो मुझे जिस भाव को भजते हैं मैं भी उन्हें उसी भाव से अपनाता हूं। एक लक्ष्य के लिये अनेक मार्ग होने की सँगति सिद्ध करने के लिये उदाहरण देते हैं। सारी प्रजा के लिये राजा एक ही होता है, उसके लिये सारी प्रजा समान है परन्तु प्रजा में जिसकी जैसी भावना होगी राज को उसी दृष्टि से देखेगा। कोई उसी राजा को बड़ा सज्जन, धर्मात्मा और न्यायकर्ता के रूप में मानता है तो दूसरा उसे अन्यायी और दुष्ट कहता है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

हाथी देखो... ... ...हरि हाथी

भगवान के स्वरूप निश्चय के विषय में पुनः लिखते हैं, अन्धों ने हाथी अपने २ अनुमान से देखा, किसी ने कान, किसी ने पूंछ किसी ने पैर किसी ने पीठ छू कर उसे प्रणाम किया, इस प्रकार विचारों का ढ़ेर लग गया, वही दशा परमात्मा की है, उसे सभी भिन्न २ स्वरूप वाला बता कर प्रणाम करते हैं। परन्तु उसका जो वास्तविक रूप है वह पेट तले अर्थात् छुपा ही हुआ है। बड़े २ महात्मा, महन्त, वेद, शास्त्र और पुराण इस विषय में झगड़ते हैं, विवाद करते हैं।

भगवत रसिक कहते हैं कि दृढ़ और अनन्यता रूप निश्चयात्मक दिव्य दृष्टि साथ में लेकर जिन्होंने उनका गुणात्मक स्वरूप देखा तो उन्हें हृदय रूपी शरीर में ही हरि रूपी हाथी मिल गया।

भाव यह है कि जैसे अन्धों ने हाथी के अंगों को टटोल २ कर अपने २ अनुभव के अनुसार हाथी का स्वरूप बताया, परन्तु वास्तव में वे उन्हें वास्तविक ज्ञान न हो सका, इसी प्रकार वेद आदि शास्त्रों ने

ईश्वर के स्वरूप के विषय में अनेक मत प्रगट किये हैं, उनके भ्रम में बुद्धि फिर रही हैं। परमात्मा के ज्ञान के लिये दृढ़ निश्चयात्मक दृष्टि होनी चाहिये। तभी उसके स्वरूप का ज्ञान होता है. वास्तव में भगवान हृदय में ही वर्तमान हैं।

विशेष .. .. एक बार पास के गाव में हाथी आया सुन कर कुछ अन्धे उसे देखने को गये. वहां उन्होंने हाथों से उसे टटोला, जिसका हाथ कान पर गया उसने हाथी छाज सा बताया, जिसने उसके दाँत छुए उसने मूसल सा बताया, जिसने सूंड छुई उसने पतनाले जैसा बताया, जिसने पैर छुए उसने खम्बे सा बताया, पीठ छूने वाले ने दीवाल सा पेट छूने वाले ने बिटौड़े के समान और पूँछ छूने वाले ने रस्सा सा बताया। एक व्यक्ति ने जो आँख वाला था उन्हें समझाया कि उन सभी का जो जो ज्ञान है सभी उसके अंगों के स्वरूप में हैं। उन सभी को मिलाने से जो स्वरूप बनेगा वही हाथी होगा।

चेला काहू... ... ... गुन चेला

हम न किसी के शिष्य हैं न किसी के गुरु, केवल प्यारे नन्दलाल की सखी हैं जो कि उनके रास महल इन बृन्दावन के कुञ्जों में रहती हैं। इन महलों में रहती हुई सदा उनकी सेवा किया करती हैं यदि पलक मारने मात्र अर्थात् पल भर भी अन्तर पड़ जाय हम अनुपस्थित हो जायं, उनकी सेवा न करें तो दोनों पति-पत्नि राधाकृष्ण अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं।

भगवत रसिक जी कहते हैं कि हम बिना भगवान् की रास क्रीड़ा के कोरा भगवान का नाम उच्चारण नहीं करते, हमतो उनके प्रेममय रास बिहारी रूप के उपासक हैं, हमें शुद्ध सेवाभाव की भक्ति सुहाती है, कोरा नाम जपना नहीं। इसी लिये हमने शरीर को ही आत्मा मानने वाले कोरे कर्मकाण्डी जो कि तीर्थों में नहानेमात्र से मुक्त समझलेते हैं, ऐसे अविद्याग्रस्त और त्रिगुणों के वश वर्ती गुरुओं को त्याग दिया है।

नहीं द्वैत ... ...कछु नाहीं।

भगवान न द्वैत वादी हैं, न अद्वैत वादी, न विशिष्टाद्वैतवाद के अन्तर्गत हैं, वे मतों के बन्धन में नहीं हैं, केवल ईश्वर की इच्छा ही द्वैत अर्थात् पृथक भेद का रूप है। ईश्वर स्वयं अपनी इच्छा से ही सब को पालता है, स्वयं निर्लेप रहते हैं परन्तु भक्त से वे प्रसन्न रहते हैं, भगवत रसिक कहते हैं कि एकमात्र उन राधा के गले में बांह डाले फिरते हैं, अपनी इच्छा मात्र से सब कुछ कार्य सिद्ध करते हैं, उनके लिये उचित और अनुचित कुछ नहीं है।

विशेष—धार्मिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन करने वाले महात्माओं ने अपने २ मतों के दार्शनिक नामकरण किये हैं। इनमें मध्व स्वामी, विष्णु स्वामी, बल्लभ, रामानुज, ये वैष्णव मतों के आचार्य हुए हैं। इन में मध्वाचार्य का मध्व सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी का निम्बार्क सम्प्रदाय, बल्लभाचार्य का बल्लभ सम्प्रदाय और रामानुज का रामानुज सम्प्रदाय कहलाता है। इसी प्रकार स्वामी शंकराचार्य ने भी ईश्वर के स्वरूप का निरूपण किया है। मध्वाचार्य ने जीव और ब्रह्म दोनों की सत्ता पृथक् मानी है, उनका मत द्वैत वाद कहलाता है, बल्लभाचार्य जीव, ब्रह्म और माया अथवा ब्रह्म, जड़ और चेतन तीनों की सत्ता मानते हैं, उन के मत में जड़ और चेतन ब्रह्म के ही अवस्था के भेद रूप हैं। शंकराचार्य का मत अद्वैत वाद कहलाता है, उनके मत में केवल ब्रह्म की ही सत्ता है, जीव या जगत् का दर्शन केवल माया या अविद्या के कारण है, आत्मा पर से माया का आवरण हट जाने पर 'अहं ब्रह्मास्मि, अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' का अथवा 'सोऽहं' का बोध होजाता है, आत्मा ब्रह्म ही है। रामानुजाचार्य के मत में शंकराचार्य के मत का खण्डन करके द्वैत विशिष्ट अद्वैत का प्रतिपादन है। इसका अभिप्राय यही है कि प्रकृति और ब्रह्म एक होते हुए भी दो हैं, जब ब्रह्म 'एकोहमनेको भविष्यामि' अर्थात् अकेला मैं अनेक होऊँगा का संकल्प करता है, तभी अपनी परमशक्ति प्रकृति जिसे योग माया भी कहते हैं, चराचर रूप धारण करता है, जब इस माया का संकोच करता है, तब पुनः एक हो जाता है।

इसी आधार पर उन्होंने ब्रह्म के द्वैत और अद्वैत सिद्धान्तों का निरूपण किया है, तभी उनके सगुण और निर्गुण अथवा साकार और निराकार इन दो रूपों की स्थापना हुई है। भगवत रसिक यद्यपि निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के अनुगामी थे, इस लिये उनके उपास्य श्री कृष्ण और राधिका ही हैं, परन्तु यहां उन्होंने अपने इन वादों के झमेले में न पड़ने का ही विचार प्रदर्शन किया है। उनका कहना केवल यही है कि भगवान् के स्वरूप का निर्णय करने के लिये अपनी २ बुद्धि के अनुसार सबने द्वैत वाद, अद्वैत वाद आदि विचार प्रगट किये हैं, परन्तु यह न समझना चाहिये कि वे उन वादों की सीमा में बद्ध नहीं हैं, वे तो अपनी इच्छा के ही वशवर्ती हैं, हां भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये श्री विग्रह अवश्य प्रकट कर देते हैं।

सत गुरु… … … … … … … … …२३ सत गुरु।

सच्चे मार्ग को दिखाने वाले गुरु का शब्द अर्थात् उपदेश स्वाति नक्षत्र में बरसी जल की बूंद है, शिष्य का हृदय सीपी होता है, सुन्दर शील या निष्ठा पूर्वक आचरण रूपी मछलों की टक्कर से वह उपदेश रूपी जल मोती बन जाता है, अर्थात् उस शिष्य का कल्याण कर देता है। जैसे समान जाति वाले अर्थात् उसी प्रकार उपदेश ले कर आचरण करने वाले दूसरे भक्तों की संगति होगी, उनकी देखा देखी उस शिष्य का भी कल्याण हो जाता है, उस आचरण के बिना वह उपदेश रूपी जल का जल बना रहता है, उसमें कोई अन्तर नहीं आता, वह मुक्ता नहीं हो सकता, भगवत रसिक जी कहते हैं कि एक-मात्र भगवान् का भक्त सद्गुरु के उपदेश रूपी गर्भ को सदा हृदय में धारण किये रहता है। सगति वाले सज्जन रूपी सास सदा उस गर्भ की रक्षा में सहायता करते हैं, सद्गुरु को स्वामी या पति समझना चाहिये जोकि गर्भाधान करता है।

भाव यह है कि जैसे सीपी में स्वाति नक्षत्र का बरसा जल मुक्ता बनाता है, इसी प्रकार गुरु का उपदेश शिष्य के हृदय में स्थान

पाकर यथोचित आचरण से कल्याण का साधक हो जाता है। उस भक्त या शिष्य को उपदेश अपने हृदय में उसी प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने पति के तेज रूप गर्भ को सुरक्षित रखती है।

इसमें अच्छे सांग रूपकों की ससृष्टि है।

मांछी माछर··· ··· ··· ··· ··· ··· ···माछर मांछी।

जीव के लिये विरक्त हो कर रहने में या इस संसार में दस भयानक दुःख हैं, मक्खी, मच्छर, भिखारी, रहन के लिये स्थान, चूहे, बादल, चोर, काट, दीमक, अन्न, वस्त्र इन दुःखों के कारण भला वह जंगल में कैसे रह सकता है। वहां खाना न मिले तो मन में थोड़ा भी धैर्य न रहे, पहनने को वस्त्र न मिले तो भी धैर्य न रहे, भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान् का मिलन बड़ा कठिन है, वेद भी इसके साक्षी या प्रमाण हैं। केवल वृन्दाबन में निवास करना ही सुगम उपाय है, जहां मक्खी मच्छर का संकट नहीं है।

भाव यह है कि भगवान् की प्राप्ति के लिये लोग बनों में जाकर निवास करते हैं; परन्तु वहां तो जो कष्ट हैं, उनके कारण उनका भगवान् में ध्यान ही लगना कठिन है। क्योंकि खुले स्थान में बन की मावखया और मच्छर तंग करते हैं, यदि बस्ती पास में हुई तो भिखारी वहां भी पहुंचेंगे। उन्हें कुछ देने को अपने पास न होगा तो वैसे मन को अशांति होगी, यदि कुछ संग्रह कर भी लिया तो चूहे बादल और चोरों की चिंता पड़ जायेगी इनके अतिरिक्त काटे, दीमक और स्थान के कष्ट उसके हृदय को सदा अशांत रखेंगे। अशान्ति में भगवान् का ध्यान बहुत कठिन है, इसलिये वृन्दाबन में विहार करना चाहिये जहां कि उपर्युक्त उपाधि कोई नहीं है।

कौवा धोये··· ··· ··· ··· ··· ··· ···करि कौवा।

भगवत रसिक जी कहते हैं कि जीवन का अपना जो जन्म जात स्वभाव है, गुण कर्म से नहीं बदलता, उदाहरण के लिये कौवे को यदि धोया जाय, साबुन आदि से धोने पर भी वह हंस नहीं बन

सकता, कुत्ता कई वार नहाने से गाय का बछड़ा नहीं बन सकता, यदि स्वयं भगवान् भी गधे को मल २ कर धोय तो वह घोड़ा नहीं बन सकता। इसके लिये दुर्योधन को प्रमाण मानिये कि भगवान् स्वयं दूत बन कर उसके पास गये, परन्तु वह उनके समझाने से भी न माना। भगवत रसिक कहते हैं कि नहलाने धुलाने से नाई ब्राह्मण नहीं बन सकता, ऊँट को संगति करने से भ कोवे का गुण और गन्दी वस्तुओं पर बैठने का स्वभाव नहीं छूट सकता।

विशेष··· ··· ··· ··· ··· ··· ···जब पाण्डव अज्ञात रूप में तेरहवें वर्ष का वनवास पूरा कर चुके तो उन्होंने प्रतिज्ञानुसार अपना राज्य भाग पुनः मांगा, अन्यथा युद्ध का आह्वन करने को उद्यत होना निश्चय किया। इस महायुद्ध के विनाशकारी परिणाम को विचार कर श्री कृष्ण युद्ध टालने की इच्छा से पाण्डवों के दूत बन कर दुर्योधन के पास उसे समझाने के लिये गये थे, परन्तु दुर्योधन ने उनकी एक बात भी नहीं सुनी, उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धं न केशव' अर्थात् हे कृष्ण! मैं युद्ध के बिना पाण्डवों को सूई की नोक के बराबर भूमि भी नहीं लौटाऊँगा, तब वे उनका अतिथि सत्कार त्याग कर विदुर के घर गये थे।

इस पद्य में विशेषोक्ति और अर्थान्तर न्यास अलंकार है।

कौट कूकर··· ··· ··· ··· ··· ··· ···न काटें।

किसी व्यक्ति को पागल कुत्ता काट ले, पुनः उसे भूत दबाले और पुनः वह अपना नित्य का नशा करले, इन विकारों से ग्रस्त हो कर दूसरे के लड़के का दाव बैठे। वही दशा प्रेम का है, अर्थात् प्रेम में पड़कर मनुष्य की यही दशा होजाती है, प्रेम के प्रभाव से वह जीव से ब्रह्म बन जाता है, गोपियां इस की प्रमाण हैं जो श्रीकृष्ण के प्रेम में इतनी तन्मय हो गई कि अपने आप को भूल कर साक्षात् ब्रह्म स्वरूपिणी हो गई थीं। भगवत रसिक जी कहते हैं कि श्री कृष्ण के साथ अनन्य प्रेम भाव से व्याप्त हो कर नित्य श्री राधा और

श्री कृष्ण के रास विहार का आनन्द पान करे, उसे काम की वेदना पीड़ित नहीं करती।

सांचौ नहिं··· ··· ··· ··· ··· ··· ···गज साँचौ।

आज कल कोई सत्य धर्म दिखाई नहीं देता, भला किस धर्म को अपनायें, सब अपने २ मन चाहे मार्ग अपना रहे हैं, किस पर विश्वास करें, किसको अपना मन रूपी धन अर्पण करें, नगर और बन सभी में खोज कर सम्प्रदाय और अनेक धर्म वाले देख लिये, एक मत न होने से कहीं भी विश्वास नहीं टिकता। भगवत रसिक कहते हैं कि सच्चा भगवत् प्रेमी सांसारिक संग की आग भी नहीं सहता, अर्थात् इस संग रूपी अग्नि के निकट नहीं जाता, क्योंकि वह जानता है, सब अपने २ स्वभाव के दोष से ग्रस्त हैं, कुत्ता हड्डी चाबना नहीं छोड़ता, सिंह हाथी को मारता ही है। इसलिये संग का प्रभाव अवश्य ही होता है।

घर घर में ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· घर घर।

घर २ में गुरु रूपी वैद्य हैं जो कि संशय रूपी रोग की औषधी जानते हैं, बिना गुरु रूप वैद्य के यह सन्देह दूर नहीं होता, जो कि मंत्र रूपी औषधि बताते हैं और वह शीघ्रही सिद्ध भस्म हो जाता है, इसकी अनेक प्रकार से परीक्षा करके देखली है, हमारा कहा मानो और मन-माना सुख लो, गुरु रूपी वैद्य बड़े बड़े संशय रूपी रोग को नष्ट करता है, भगवत् रसिक कहते हैं कि एक ही गुरु करे घर २ नहीं भटके। इसका अर्थ यों भी हो सकता है—गुरु और वैद्य घर २ में हैं, प्रत्येक घर को गुरु और वैद्य की आवश्यकता होती है, गुरु तो मंत्र बताते हैं और वैद्य औषधि बताते हैं, मंत्र ऐसा बतावें कि कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो जाय, औषधि वैद्य ऐसा बताये जो शीघ्र ही सिद्ध या तैयार हो जाय अथवा रोग नाश रूप कार्य शीघ्र ही हो जाता है, अनेक बार इसकी परीक्षा करली है, इनके विषय में हमारा बताया करो और मन-चाहा सुख पाओ, वैद्य रोगी को वर या श्रेष्ठ अर्थात् नीरोग कर देता है, गुरु सन्देह से शिष्य को रहित कर देता है, भला बताओ, इनमें

किसे त्यागें, वैद्य या गुरु कोई भी उपेक्षा योग्य नहीं हैं। इस लिये भगवत् रसिक कहते हैं कि एक गुरु को निश्चय करले, उसके उपदेश पर चले, घर २ में न भटके, इसी प्रकार एक वैद्य पर विश्वास कर लेना चाहिए, घर २ न भटकना चाहिये, भाव यह है कि मनुष्य को केवल एक गुरु बना कर उसके उपदिष्ट मार्ग पर चलना चाहिये। दीपक अलंकार है।

परम पावन ... ... मनमानी।

करुवा जो कि टट्टी सम्प्रदाय के महात्माओं का एकमात्र बर्तन होता था, उसका पानी बड़ा ही पवित्र है, उसको पीते ही मदनमोहन और राधिका रानी हृदय में आ जाते हैं। रास क्रीड़ा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, हर्ष और मनोरंजन कहानी ही रह जाते हैं, अथवा रास-क्रीड़ा को देख कर होने वाले हर्ष और मनोरंजन की कहानी का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। भगवत् रसिक कहते हैं कि राधा कृष्ण के क्रीड़ा के निकुंज रूपी महलों में मन मानी सेवा का अवसर मिलता है।

लखी जिन ... ... मुखम्यान।

जिन्होंने प्यारे नन्दलाल की मुस्कान देख ली, उन्होंने वेद की विधि जप, योग, इन्द्रिय-दमन और ध्यान लगाना, सब कुछ भुला दिया, नियम, व्रत, आचार, पूजा, पाठ और गीता का ज्ञान सब कुछ भूल गये, भगवत रसिक जी कहते हैं कि नन्दलाल ने मुख रूपी म्यान से मुस्कान रूपी तलवार खींच कर आंखों में मार दी है अर्थात् आंखों को अपनी मीठी मुस्कान से घायल कर दिया है।

हम सोंइन ... ... नहिंआवै।

हमारी इन महात्माओं से जाति है या जातीयता है अर्थात ये महात्म हमारी जाति के हैं। जिनका नाम लेने मात्र से दुःख छूट जाते हैं और संग करने से शरीर को भी सुख होता है।

सब से बड़े महान् हैं कामदेव जो भगवान् का पुत्र है, रति जो कि कामदेव की पत्नी और भगवान् की पुत्र वधू है। गणेश जी जो भगवान् का नित्य भजन करते हैं, ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग सोने वाले नारायण या

विष्णु, कृष्णोपासक नित्य रास बिहारी नारायण को मूलतत्व और शेष शायी विष्णु को उनका अंश मानते हैं, इसलिये नारायण को श्री कृष्ण का भक्त माना है। देवता, मनुष्य, असुर, मुनि, पशु और पक्षी तक जितने भी श्री हरि की भक्ति में लीन रहने वाले सन्त, आदि रामायण लेखक बाल्मीकि ऋषि, महा भक्त नारदजी प्रतापी अगस्त्य ऋषि भागवत पुराण के ऋषि शुकदेव जी, यद्यपि श्रीमद् भागवत महर्षि वेद व्यास-कृत है तथापि उसका प्रचार शुकदेव जी ने ही किया है, इसी कारण श्री-मद् भागवद् भगवद् को शुकशास्त्र कहा जाता है। भागवत कार वेद व्यास, कथाकार सूत जी जोकि सारथी कुल में उत्पन्न होने पर भी अपने पाण्डित्य के बल से व्यास के उच्चासन के अधिकारी हुए। भीलनी सवरी, चांडाल, वशिष्ठ मुनि, बिदुर और उनकी पत्नी, जोकि प्रेम में प्रवीण थीं, कहते हैं कि जब श्री कृष्ण और दुर्योधन आतिथ्यत्याग कर विदुर जी के घर पहुंचे, विदुरजी घर पर न थे, उनकी पत्नी स्नान कर रही थी, श्री कृष्ण का स्वर पहचान कर वे शीघ्र आगई। उन्होंने प्रेम में श्री हरि केले खिलाने आरम्भ किये परन्तु प्रेम में इतनी विह्वल हो गई कि केले का छिलका तो भगवान् को देती रहीं और गूदा बाहर फेंकती रही। भक्त वत्सल भगवान् बड़े प्रेम से उन छिलकों को खाते रहे। विदुर ने आकर पत्नी को ध्यान दिलाया और उस के प्रेम के लिये अपने भाग्य को सराहा।

गोपियां जो श्री कृष्ण के प्रेम के लिये प्रसिद्ध हैं, गोप, द्रौपदी जिसने शिशुपाल को मारने के समय सुदर्शन चक्र से श्री कृष्ण उंगली कट जाने पर अपने बहु मूल्य साड़ी फाड़कर उस पर पट्टी बांध दी थी, पाण्डवों की माता कुन्ती, पांचों पांडव, उद्धव जो महा भागवत कहे गये हैं, विष्णु स्वामी निम्बार्क, मध्व स्वामी, रामानुजाचार्य जिन्होंने विष्णु भक्ति के शुद्ध मार्ग चलाये, लालाचार्य, धनुर्दास, कृष्ण प्रेमी में द्रवित रहने वाले कूरेश, गुरु ज्ञानदेव, उनके शिष्य त्रिलोचन, इनमें किसे पीछे छोड़ें, अर्थात् सभी उल्लेखनीय हैं। पद्मावती के चरणों का यश वर्णन करने वाला चारण, यशस्वी गीत गोविन्दकार जयदेव कवि, चिन्तामणि

वेश्या जिसने रसिक विल्व मंगल को भगवान् का प्यारा रूप दिखाया अथवा उनके मनको भगवान् की ओर फेर दिया, केशव भट्ट, श्रीभट्ट, नारायण भट्ट, गदाधर भट्ट, वल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ, वल्लभाचार्य जी, व्रज के निवासी गूजर और जाट भी, नित्य ही आनन्दमय रहने वाले, कृष्ण के साथ अद्वैत भाव या एकात्मता पाये महाप्रभु उपाधिधारी श्रीशचीदेवी के पुत्र चैतन्य महाप्रभु, बंगाल में इनके अनुयायी बहुत हैं। गोपाल भट्ट, गोस्वामी रघुनाथ, धन्य भाग्य माधव गोस्वामी, पत्नी, पुत्र और सम्पूर्ण सम्पत्ति को छोड़ कर वृन्दावन में निवास करते हुए सनातन अव्यय स्वरूप भगवान् का भजन करने वाले हरिराम व्यास जी, गोस्वामी हित हरिवंश जी, जिन्होंने नित्य ही राधा कृष्ण से प्रेम किया, हमारे आचार्य श्रीस्वामी हरिदास टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक, बिट्ठल बिपुल बिहारिणी राधा की दासी नागरी, जोकि प्यारे नन्दलाल के नित्य बिहार की सेविका हैं, नवीन माधुर्य वाली हैं, तानसेन, कर्मण्य अकबर, मीराबाई, कर्मबाई, रत्नावती, मीर, माधव, रसखान जिन्होंने सवैयों में प्रेम की रीति गाई, अग्रदास, नाभादास आदि राम और सीता की सखियां, सूरदास, मदनमोहन, बरसी जो कि माखन चोर की सखी थे, माधव, गोस्वामी तुलसीदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, विष्णुपुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा, गुरु रामानन्ददास जी जिन्होंने सर्व प्रथम राम भक्ति का प्रचार किया और विरक्त सम्प्रदाय की नींव डाली, भगवान् अलि संभवतः अलि बेली अलि से अभिप्राय है, रसिक मुरारि, श्यामानन्द, रंक बंका, रामदास, चौधरी, अत्यन्त त्यागी केवल कृष्ण प्रेमी निर्भर लाखा अंगद, गोविन्द महाजन, प्रबोधानन्द, मुरारीदास, प्रेमनिधि, पिट्ठलदास, भक्तों में श्रेष्ठ मथुरिया, लालमती, सीता, सम्पूर्ण प्रभुत्व को त्यागने वाली गोपाली बाई, जिसने भगवान् को पूज कर पुत्र को विष दे दिया था, आनन्ददायिनी भक्ति पाई थी, पृथ्वीराज, खैमाल, रासलीला के आनन्द का रसिक चतुर्भुज राम, आशकरण, मधुकर, राजा जयमल, हरिदास, जनदास, भक्तसैन, भक्त धन्ना, कबीरदास सन्तमत प्रवर्तक, भक्तमाल

लेखक नाभादास, कूबा या कुब्जा, धर्मव्याध सदना कसाई, कहते हैं व्यास जी ने शुकदेव जी को इनसे उपदेश प्राप्त करने के लिये भेजा था। भक्त रैदास, पिंगला नर्तकी जोकि कहते हैं तोते को राम २ सिखाती हुई मर कर कल्याण की अधिकारिणी हुई थी। चित्रकेतु, प्रह्लाद, इनका वृत्तान्त प्रसिद्ध है, विभीषण जिन्होंने रामद्रोही रावण का त्याग किया। राजा बलि जिनके घर भगवान् वामन बन कर गये थे, जाम्बवन्त राम सेवा के प्रमुख सेनापति, भक्तराज हनूमान. इनका प्रभाव तो लोक-विश्रुत है, गीध जटायु जिसने सीता को बचाने के लिये प्राणों को बलि दी, निषादराज गुह जो राम भक्ति के कारण परम पवित्र हो गये थे, भगवत रसिक कहते हैं कि मैं इन्हें प्रेम, विश्वास, और अत्यन्त प्रसन्नता या भगवत् कृपा के अधिकारी होने के कारण इन महात्माओं को अपना मन चाहा गुरु समझता हूं। सभी प्रकार की सम्पति और वैदिक मर्यादा को तोड़ कर उन के हाथ बिक गया हूँ। वर्तमान काल के अतिरिक्त अतीत काल में जो भक्त हुए, इसी प्रकार जो भविष्य युग में होंगे, मेरा उन सभी से प्रेम व्यवहार समझो, जो लोग अभिमानी हैं, हम उन से सर्वथा दूर रहते हैं, हम रसिक मात्र को अपना परिवार बना कर उनके साथ आदर से भोजन पाते हैं, ऊँचा या नीचा कुल, आचार और समाज में सम्मान की चिन्ता नहीं करते।

वेषधारी ... . पाखण्डै जानौ।

कोरे साधु का वेष धारण करने वाले अर्थात् जिन्होंने साधु या फकीर का वेष तो बना लिया है परन्तु मन नहीं बदला, वे लोग भगवान के हृदय को चीरते हैं, उन्हें प्रसन्न करने के स्थान पर दुःख ही देते हैं, वे स्वप्न में भी परमार्थ मोक्ष या परोपकार को नहीं समझते अथवा स्वप्न में भी उन्हें भगवान के तांत्विक ब्रह्मज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं वे केवल पैसों को ही पालते हैं अर्थात् केवल धन संग्रह में व्यस्त रहते हैं। कभी वे उदेशक व्याख्यानदाता बन जाते हैं श्रीमद्भागवत की कथा गाते हैं, उन्हें अच्छा बुरा अथवा शब्द के शुद्ध और अशुद्ध अर्थ का

कोई ज्ञाग नहीं होता, केवल पैसों के चढ़ावे का ध्यान रहता है। कभी वे लोग भगवान् के मन्दिर में सेवा भाव के नाम पर निवास करने लगते हैं, उनके मन में प्रेम या भक्ति का अंश मात्र भी नहीं होता केवल पैसा पाने की आशा ही उन्हें ऐसा करने को प्रेरित करती है। वे कभी कीर्तन के नाम से नाचते हैं, गाते हैं, कभी उनके चित्र बना कर रखते हैं कि पैसे चढ़ेंगे या भक्त लोग भगवन् का चित्र देख कर बदले में बहुत सा धन देंगे, अच्छी चटकदार जो सुनने में अच्छी लगे,ऐसी कविता करते हैं, परन्तु यह सभी करना धरना व्यर्थ है, भगवान् सचाई के बिना, सत्य प्रेम भाव के बिना हाथ नहीं आते। तत्वज्ञान, वैराग्य और भक्ति के बिना उनका करना धरना कुछ भी एक भी कार्य सत्य न समझे भगवत रसिक कहते हैं, भगवान से दूर रहने वाले वे लोग केवल कपट की चतुराई दिखाते हैं, उनका किया कराया सब कोरा पाखण्ड समझना चाहिये।

इतने गुन ... ... ताप नसावन।

जिस में इतने गुण हों वही सन्त या महात्मा कहने योग्य है, श्री लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् के उपासक का जैसा वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है, अथवा श्रीमद्भागवत में लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् ने जैसे लक्षण अपने मुख से कहे हैं। जो नित्य शुद्ध भाव से भगवान का भजन करता हो महत्माओं की सेवा करे सभी प्राणियों पर दया भाव रखे, हिंसा लोभ, पाखण्ड और कपट का त्याग करे कामिनी और सोना जो माया के स्वरूप हैं, इन्हें विष के समान देखे अर्थात् इन पर आसक्ति न रखे; सुख दुःख और मान-अपमान सभी कुछ सहने वाला हो, मन उसका अत्यन्त ऊँचा हो, धैर्यशाली हो, बड़ी से बड़ी विपत्ति में न घबराये, कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान रखता हो, सब को प्रिय लगने वाले सत्य वचन बोलता हो, एकाकी या अकेला रहे एकमात्र भगवत सेवा का संकल्प किये हो, इन्द्रिय दमन करने वाला हो, जिस के हृदय में अभिमान न हो, ऐसा महात्मा जगत भर को अपने व्यक्तित्व से पवीत्र कर देता है, भगवत् रसिक जी कहते हैं कि उसकी संगति

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि भौतिक कष्टों को नष्ट करने वाली होती है।

हमारो ... ... अलौकिक ठौर।

हमारा बृन्दावन दूसरा हृदय है, अथवा हमारा मन दूसरा वृन्दवन है, वहाँ माया जाल और समय का प्रभाव नहीं पड़ता जहाँ कि रसिकों के शिरोमणि श्रीकृष्ण निवास करते हों। हृदय में श्रीकृष्ण का निवास सिद्ध करने के लिये उसे वृन्दावन बताया है। अच्छी बुरी वासनायें और कामनाओं के लिये मन को दौड़ादौड़ मिट जाती है, हृदय रूपी वृन्दावन में सांसारिक भोगों की वासनायें नहीं रहती, भगवत रसिक जी कहते हैं कि हमारे सद्गुरु ललितमोहिनी दास जी ने यह निर्मल और अमूल्य स्थान बताया है।

बलि जैहों ... ... आरज।

रसिकों के आचार्य श्रीहरिदास जी पर मैं न्योछावर हो जाऊँ, जिन्होंने हृदय रूपी समुद्र के भावरूपी जल को मथ कर नित्य ही रास विहार की लीलायें दिखा कर या सुनाकर हमारा उद्धार किया। हमारे सम्पूर्ण भ्रम, अज्ञान, संशय और कष्ट हर लिये हमें अपने हाथों में लेकर अर्थात् अपना सहारा देकर हमारे सारे कार्य सिद्ध कर दिये। भगवत रसिक जी कहते हैं कि राजा कृष्ण के उपासक सज्जनों को प्रशंसित किया, प्रशंसा करके उनका उत्साह बढ़ाया।

नमो नमो ... ... मकरन्द।

वृन्दावन के चन्द्रमा श्रीकृष्ण को नमस्कार हो जो कि नित्य अर्थात् अविनाशी हैं, अनन्त हैं। अनादि अर्थात् जिनके आदि कोई नहीं, एक रस, सदा अविकारी एक से रहते हैं, प्यारी राधा के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक विहार करते हैं, वे सच्चिदानन्द भाव से पूर्ण हैं अर्थात् अस्तित्व सदा रहने से सत् हैं, सदा चैतन्य अर्थात चेतना-मय होने के कारण चित् हैं, सदा एक से अखण्ड आनन्द स्वरूप होने के कारण आनन्द मय कहाते हैं, इन तीनों तत्वों से ही उन्हें सच्चिदानन्द कहा जाता है। पक्षी, मृग, वृक्ष और लताओं के समूह भी इस बृन्दावन में

निवास कर धन्य हो गये हैं। भगवत रसिक जी कहते हैं, भगवान् के प्रेमी इस बृन्दावन का नित्य सेवन करते हैं, उनके लीला विहारी के इन रागों को गाते २ और इसका रस लेते २ भ्रमर बन गये हैं।

दुख सुख ... ... सनौ।

शरीर संसार के सुख दुःख आदि भुगतता है, इसका कोई डर नहीं। राजा और रंक, धनी और निर्धन चाहे निन्दा करें चाहे प्रशंसा, परोपकार का व्यवहार अथवा सांसारिक उचित कर्म बनें या न बनें, परन्तु भगवत रसिक जी कहते हैं कि मेरी आँखों में भगवान् के प्रेमी अंजन या सुरमा बन कर रहें, अर्थात् सांसारिक काम धन्धे चलें या न चलें भगवान् के भक्त नेत्रों में बने रहें, उनके दर्शन सदा मिलते रहें।

तुव मुख ... ... मद तेरे।

हे भगवान् आपका मुख कमल है, उसके रूप पराग का पान करने के लिये मेरे नेत्र भ्रमर बन गये हैं। आंखें पलक भी नहीं झपती, बिना आपको देखे ये फड़ फड़ाती हैं, फेरने से या लौटाने से लौटती नहीं। आपके मुख कम्ल के रूप रूपी मकरन्द का पान रते हैं और भूल कर भी इधर उधर नही देखते, भगवत रसिक कहते हैं कि ये मतवाले हो गये हैं, आपके रूप के मद से तृप्त होकर घूमते रहते हैं।

तुव मुख ... ... सकैना।

हे भगवन्! मेरे ये नेत्र आपके मुख रूपी चन्द्रमा के प्रेमी चकोर बन गये हैं। ये बड़े ही अनुराग या प्रेम भाव से व्याकुल हैं, दर्शन के इतने लालची हैं कि पल भर भी तो नहीं मुंदते, ये तो अपनी सुध बुध भी भूल गये हैं। रात दिन मिलने के लिये तड़पते हैं, मिले रहने पर भी अनुराग के कारण इतने आकुल या उत्कण्ठित रहते हैं कि मानो कभी मिले ही न हों। भगवत रसिक कहते हैं कि रसिक की बातें बिना रसिक के कोई नहीं समझ सकता, प्रेमी की बात को प्रिय ही जानता है, और कोई नहीं जान सकता। भाव यह है कि इनकी भावना को आपही जान सकते हैं, अतः इनकी उत्कण्ठा पूर्ण कीजिये। दोनों पद्यों में रूपक है। दूसरे में उत्प्रेक्षा और विशेषोक्ति भी है।

काया कुंज ... ... स्यामा स्याम

शरीर कुंज, लताओं का समूह है, मन उसका अन्तर्वर्ती गृह है। यद्यपि कुंज और निकुंज एक ही अर्थ के वाचक हैं, तथापि यहाँ पर इनका भिन्न २ अर्थों में प्रयोग हुआ है। नेत्र उस निकुंज के सुन्दर द्वार हैं, भगवत रसिक जी कहते हैं कि हृदय रूपी सुख दायक कमल पर श्रीराधा कृष्ण सुशोभित हैं। सांग रूपक।

जीभ जुगल... ... ...मृग भूप।

मनुष्य जीवन के कर्तव्य बताते हैं, जीभ राधा कृष्ण के नाम मन्त्र का जप करे, नेत्रों से उनके रूप का दर्शन करे, भौंरे की जीविका से पेट भरे, भौंरे की वृत्ति होती है मधुकरी भिक्षा, भौंरा अनेक फूलों से रस ले २ कर अपना पेट भरता है, इसी प्रकार अनेक घरों से मांग कर थोड़ा २ प्राप्त अन्न को मधुकरी भिक्षा कहते हैं। कुत्ता, मृग और राजा को छोड़ दे अर्थात् इन सबकी वृत्ति छोड़ दे। कुत्ता पेट भरने के लिये बड़ी दीनता दिखता है, दुत्कारने पर भी पूंछ हिलाता रहता है, ऐसी मनोवृत्ति छोड़ दे, मृग की आसक्ति त्याग दे, मृग बीन के स्वर से लुब्ध हो कर मारा जाता है, इसी प्रकार भक्त कहीं भी असक्त न हो, अथवा चरने के लिये इधर २ खेतों में फिरते रहना मृग का कार्य है, इस प्रकार भक्त को खाने के लिये भटकने की आवश्यकता नहीं। राजा औरों को दबाकर, दूसरे का राज्य या धन छीन कर अपना ऐश्वर्य बढ़ाता है, ऐसा भी कदापि न करे, अपने पेट के लिये किसी के चित्त को न दुखाये।

इस में तुल्य योगिता अलंकार है।

जप तप... ... ...संसार।

भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान की अनन्य भक्ति के बिना जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, तुला आदि दान, चान्द्रायण आदि व्रत, योग, यज्ञ और धार्मिक आचार विचार सब जीवात्मा को संसार में चक्कर ही कटाते हैं।

बेदनि··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···खिलाप ।

भगवत रसिक जी कहते हैं वैद्य वही है जो वेदना को दूर करे, रोग दूर करने वाला ही वास्तव में वैद्य कहाने योग्य होता है। गुरु वही जो भगवान् को मिलादे। भोजन वही जो भूख मिटा दे, बाकी सब इसके विरुद्ध हैं। अर्थात् र ग न दूर कर सकने वाला वैद्य नहीं, भगवान् से न मिला सके वह गुरु नहीं, जो भूख बुझाने के स्थान पर केवल स्वाद की वस्तु हो, भूख न मिटा सके वे भोजन नहीं कहे जा सकते। परिसंख्या अलंकार है।

भगवत··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···अंग संग।

भगवत रसिक कहते हैं कि जीव स्वतन्त्र नहीं है, पतंग की भांति पराये आधीन है, गुणों के त्याग देने पर वह शून्य में विचरता है, अर्थात् जीवात्मा गुणों के अनुसार न चलने पर इधर उधर भटकता रहता है, उसे शांति नहीं मिलती, जैसे गुण अर्थात् डोरी छोड़ने पर पतंग आकाश में खुली उड़ती है, गुण ले लेने पर अपने पास आ जाती है।

इसी प्रकार गुण अपने में अपना लेने पर वह शरीर के साथ ही रहता है। अथवा तीनों गुणों सत्व रजस्तम को या उनका प्रभाव त्यागने पर स्वतन्त्र ब्रह्म ज्ञान के आकाश में विचरता है, इन गुणों के प्रभाव में आकर शरीर के साथ या उससे आसक्त हो जाता है।

उपमा व ३ लेष अलंकार हैं।

भगवत··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···डारति तोर।

भगवत रसिक कहते हैं कि भक्त जन चक्री है जो डोरी लपेट के घुमाई जाती है चक डोरी भी कहते हैं, भगवान् का ध्यान उसकी डोर है, रात दिन उससे राधा खेलती हैं, वे उस डोर को कभी भी नहीं तोड़ती। सांगरूपक अलंकार है।

ग्रामसिंह··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बेकूप।

कोई कुत्ता बन में सिंह का रूप देख कर भौंकने लगा, परन्तु नगर

की गलियों के मूख कुत्ते उसकी भौंकने की आवाज सुन कर ही भौंकने लगते हैं। भाव यह है कि कोई महात्मा तो परमात्मा के सत्य प्रेम के कारण फकीरी रूप धारण करता है, उसके मन में तो सत्य ही फकीरी रहती है, परन्तु लोग उसके जैसी विरक्ति मन में आये बिना ही वेष बना लेते हैं, आत्मज्ञान के बिना ही केवल सुना सुनाया वेदान्त बबूका करते हैं, जैसे कुत्ते अकारण भौंकते हैं। अप्रस्तुत प्रशंसा है।

नहि निर्गुन··· ··· ··· ··· ··· ··· ···जीवन मूरि।

भगवत रसिक कहते हैं कि भगवान् न तो सगुण ही हैं न निर्गुण या निराकर ही हैं, न वे समीप ही हैं न दूर ही हैं, भगवान् की गति या महिमा निराली है जो जीवन के सुख का कारण है। विरोधाभास है।

तुष्टि पुष्टि··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···न भोग।

भगवान् के प्रेम मार्ग का पार्थिक भगवत्प्रेस से सदा तृप्ति और पुष्ट या स्वस्थ सबल रहता है, उसे बुढ़ापा या रोग प्रभावित नहीं करते। बाल्यअवस्था और यौवन का भी वह उपभोग नहीं करता, इन के विकार भी उस में कुछ परिवर्तन नहीं करते।

जनम मरन··· ··· ··· ··· ··· ··· ···अनुपम दोइ।

जिनका जन्म और मरण रूप विकार नहीं है, जिन पर त्रिगुणात्मिका माया का कोई प्रभाव नहीं है, जिन के पुष्प धाम में रात्रि या दिन नहीं होते, जैसे कहा है 'न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः' आदि, अर्थात् मेरे लोक को सूर्य, चन्द्र अथवा अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते, जो सच्चिदानन्द रूप हैं, सदा नित्य, चेतन, उद्बुद्ध और आनन्दमय हैं, सदा एक रस हैं, निर्विकार हैं, दोनों राधाकृष्ण ऐसे अनुपम रूप वाले हैं।

निसि वासर··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···व्यौहार।

दिन, रात्रि, तिथियाँ प्रति पदा आदि, बारह मास, छहों रितुएँ, अन्य जगत् के जन्म से लेकर मृत्यु तक के व्यवहार हैं, इन सबको

सांसारिक भोग विलास, अर्थ चिन्तन आदि धन्धों को छोड़ कर केवल अटल, अखण्ड प्रेम में देखो अर्थात् सब का ज्ञान बल पूजनचर्या में तन्मय कर दो।

छके जुगल··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···कौ ख्याल।

दोनों राधा कृष्ण परस्पर की कान्ति या सौन्दर्य रूपी मदिरा से तृप्त हैं, पुनः उन्हें शुद्ध और अटूट प्रेम रूपी नाग ने डस लिया है, फिर भी दोनों की लीला देख कर विष चिकित्सक उनका नियम से नहीं छूता। उनके पास विष वैद्य नहीं फटकने पाता। विशेषोक्ति अलंकार है साथ ही रूपक भी है।

नवरस··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बुधि चित्त।

उन राधाकृष्ण के नित्य के विहार वर्णन में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक बीभत्स अद्भुत, शांत ये नवों रस हैं और नित्य नवीन आनन्द होता है, अन्य पदार्थों का नित्य सेवन आनन्द को न्यून कर देता है, परन्तु यहाँ आनन्द प्रति दिन बढ़ता जाता है, यह भी विलक्षणता ही है। इस अनुभव को रसज्ञ हृदय ही जान सकता है। भगवत रसिक कहते हैं कि भक्त लोग जो भगवान् के प्रेमी हैं, वे शरीर, बुद्धि और मन को उनकी सेवा में ही लगा देते हैं, अर्थात् भक्त लोग उस रास विहार के रस को मन और बुद्धि दोनों से लूटते ह। व्यतिरेक व्यंग्य है।

जय जय··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···तजि भवन।

हे रसिक, राधा वल्लभ! आपकी जय हो। आप रूप, औदार्य आदि गुणों, लावण्य अर्थात् रूप की लुनाई, निग्रह और अनुग्रह अर्थात् कृपा और दण्ड की प्रभुशक्ति से युक्त हैं प्रेम के सदा पूर्ण रहने वाले भवन हैं। भक्ता कहिये, भक्तों की विपत्ति को दूर करने वाला आपके अतिरिक्त और कौन है। हे भगवन्! हमारे मन की वासना जन्य गन्दगी को दूर कीजिये, माया की आंधी इस पर प्रभाव न डाल सके, इन्द्रियों को विषय रसों का सेवन करते २ अजीर्ण (बद हजमी) रोग हो गया है उसे दूर करने के लिये खूब वमन या

उल्टियां कराइये, अर्थात् विषयों की ओर से घृणा उत्पन्न कीजिये। प्रायः चिकित्सक अधिक खाने से हुए अजीर्ण की शान्ति के लिये लंघन और वमन कराया करते हैं। हमारे हृदय के नेत्र खोल दीजिये, ज्ञान चक्षुओं को प्रकाशित कीजिये, जिससे आनन्द देने वाला और साँसारिक दुःखों से छुड़ाने वाला आपका पवित्र लीलाधाम बृन्दाबन दिखाई देने लगे। हे दया के कोष! असह्य प्रेम दारिद्र्य को मिटाने वाले आप चतुर चिन्तामणि रत्न हो चिन्तामणि रत्न सबसे मूल्यवान् कहा गया है, उसके पास रहने से सभी कामनायें पूर्ण हो जातीं हैं। भगवत रसिक कहते हैं कि हे भगवन् कृपा करके हमारी वेदना मिटाइये, इस मौन भाव की चुप्पी को छोड़ कर प्रसन्नता से मुझे गले लगाइये। अपनी शरण में लीजिये।

रूपक और परिकर अलंकार है।

कुंज बिहारी··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बलिहारी।

टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी हरिदास जीं की उस सम्प्रदाय के अनुयायी होने के नाते बन्दना करते हैं। जिनकी आशातृष्णा एक मात्र कुञ्ज बिहारी श्री कृष्ण हैं, और सम्पूर्ण सांसारिक विषयों की दुष्ट आशाओं को त्याग कर चुके हैं, भोजन और वस्त्र पहनने तक से उदासीन हैं, प्रेम के कठिन व्रत को धारण किये हुए हैं। तत्वज्ञान, शील आदि गुण और दया के कोष, भगवत्प्रेमी रसिकों में श्रेष्ट व्यक्तियों में भी प्रधान और रसिक समाज के प्रवर्तक, समय २ पर संगीत की रागरागनियों के द्वारा प्रिय और प्रिया राधाकृष्ण को प्रसन्न करते हैं, अज्ञान या माया के अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य हैं, त्रिविध दुःख रूप सन्ताप को दूर करने के लिये चन्द्रमा हैं, पापों को भस्म करने के लिये अग्निदेव हैं और गौरव अथवा तत्वोपदेश के लिये चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, नित्य निधिवन नामक कुंज में विराजने वाले, सुन्दर आनन्ददायी रास बिहार मात्र धन रखने वाले, अर्थात् रास बिहार ही जिनका सर्वस्व है, ऐसे स्वामी हरिदास जी की जय हो।

भगवत रसिक आप के चरणों पर न्योछावर हैं। माला रूपक व द्वितीय उल्लेख अलंकार है।

यह दिव्य... ... ... जियकौ।

श्री राधा और श्री कृष्ण का अनुग्रह ऐसा अद्भुत है कि दर्शन होते ही मन का हर्ष बढ़ा देता है, छूते ही हृदय के वासना रूप सम्पूर्ण पापों को हरलेता है। अत्यन्त पवित्र प्रेम भावों को उत्पन्न करता है, जिसके कारण भक्त अपने पुरुषत्व या स्त्रीत्व को भुला कर तन्मय होजाता है। भगवत रासिक जी कहते हैं कि अनुग्रह होते ही वह भाग्यशाली व्यक्ति दोनों युगल जोड़ी के हृदय का प्यारा आभूषण बन जाता है, अर्थात् उन्हें प्रिय हो जाता है।

ललित किशोरी

मैं तुव... ... ... नसीला।

हे भगवान् मैं आपके चरणों के निचले भाग की आनन्द दायिनी रेणु हूँ। आपकी प्रेममयी भूति बड़ी गर्वीली है, अपनी अद्वितीयता के कारण बड़ी अभिमानीय हो गई है, आपकी बराबरी कौन कर सकता है। आप पर कराड़ों प्राण न्योछावर करके भी मैं आपकी आनन्द दायिनी प्रीति से उऋण नहीं हो सकती, छुटकार नहीं पा सकती, सखी भाव के उपासक होने के कारण अपने आपको स्त्री लिंग से व्यवहृत किया है जैसा कि नाम से स्त्री वाचक है। हे दयालो, कृपा करके अपनी सुंदर प्रेम की छटा दिखाइये अर्थात अपना प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न कीजिये प्रेम को दान दीजिये। हे उत्तम देवता, मैं ललित किशोरी किस मुख से बड़ाई करुं, मैं तो क्रीड़ा में रूठी हुई हूं, मान किये हूं। मेरे मन में मद वाला करने वाली प्रेम भावना आपके प्रेम के दसवें भाग का सवाँ भाग भी नहीं है, अर्थात अभी तक मुझे उस प्रेम का सौवां भाग भी प्राप्त नहीं हो सका है, जोकि आप का मुझ पर है।

कमल मुख... ... ... उघारे।

प्रातः काल जागरण के लिये प्रार्थना करते हैं हे प्यारे ? अब अपना कमल सा मुख खोलिये वस्त्र के बाहर निकालिये। कमल खिल गये हैं

कुमुदनी कुम्हला गई है, भौंरे मत वाले होकर गूंज ने लगे हैं पूर्व दिशा सूर्य्य बिम्ब के थाल में आरती लिये न्योछावर करने को उद्यत खड़ी हैं। ललित किशोरी कहती है, देखिये यह वाणी सुनिये, ऐसा मुर्गा स्पष्ट उच्चारण कर रहा है। रात्रीश चन्द्रमा विदा मांग रहा है, मैं आप पर बलि हो जाऊं न्योछावर हो जाऊं, थोड़ी आंख खोल कर देखिये। प्रभात की व्यंजना उपर्युक्त साधनों से की है। पर्यायोक्त अलंकार है।

केकीकीर ... ... कुंज बिहार।

मोर कोयल और नर, कोयल, सामने कूजते हुए बंदना कर रहे हैं भौंरे आपके नेत्र रूपी कमलों को छूने के लिये गुंजार के रूप में जय-जय कार कर रहे हैं। पूर्व दिशा पुकार कर कह रही है कि शीघ्र हीं छिद्र रूपी झरोखों को मूंद दो, ललित किशोरी जी कहती हैं सूर्य अब नवीन कुंज लीला देखना चाहता है।

दुनिया... ... ... लगाया जी ॥

संसार के झंझटों में हमे कुछ सुख प्राप्त नहीं हुआ, भाई बंधु माता, पिता, आदि परिवार के व्यक्तियों से भी मन ऊब गया है, घर गाँव और अपना नाम तक छोड़ कर यह भगवान प्रेम का मार्ग अब मन को रुच गया है, ललित किशोरी कहते हैं कि अब पूर्ण आनन्द मय घनश्याम से हठ पूर्वक प्रेम सम्बन्ध जोड़ा है। मन यद्यपि चंचल है तथापि उसे बल पूर्वक भगवत्प्रेम की ओर मोडा है।

क्या करना है ... ... बसाया है।

इस संसार में संतान, सम्पत्ति लेकर क्या करना है, जगत् की यह माया झूठी है माया के बल से दीखने वाला पदार्थ असत्य ही होता है। इस लिये मन को शाल दुशालों और हीरे मोतियों में क्यों फंसा रखा है। माता पिता, पति, भाई बन्धु, सभी ये नातेदार धन्धे हैं, इनका व्यर्थ का जाल है ललित किशोरी कहते हैं कि अब तो हमने अपने हृदय रूपी कमल पर चिदानन्द मय हरि को बसा किया है।

अष्ट सिद्धि ... ... बहती है।

अब तो आठों सिद्धियां, नवों निधियां सदा हमारे हाथ में हैं।

अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व वशित्व ये आठ सिद्धियां कही जातीं हैं, कुबेर के नौ खजाने कहे जाते हैं। सन्तोष के कारण ये सभी पदार्थ हाथ में हैं यही अभिप्राय है। हमें रत्नों, सोना चाँदी आदि की सम्पत्ति नहीं चाहिये। सांसारिक विषयों पर वार्तालाप हमें नहीं भाता, केवल प्यारे का ही प्रसंग चलने की बड़ी इच्छा रहती है। ललित किशोरी कहते हैं कि इस बहती माया की नदी-संसार से वही पार लगावे।

तरह २ ... ...जगावे है।

लोग भिन्न २ प्रकार के आसन लगा कर प्यारे का ध्यान लगाते है, सुबुम्ना नाड़ी को पार कर अर्थात् सुबुम्ना नाडी के मार्ग से प्राणायाम करते हैं, योग शास्त्र की खेचरी मुद्रा के द्वारा शरीर सहित उड़ जाते हैं, ललित किशोरी कहते हैं कि निर्जन, सुनसान वन में योगी लोग योग जगाते हैं, योग साधना करते हैं।

तज दीनी ... ... आना क्या।

जब हमने सारा संसार और उसकी सम्पत्ति सब त्याग दी है, फिर किसी के घर जाने से क्या, अर्थात् किसी के घर क्यों जायँ, कन्द, मूल, फल आदि खाने को जब मिलते ही हैं, फिर खट्टे मीठे पदार्थ खाने की क्या आवश्यकता है। यदि बादशाह क्षण भर में मोती, लाल आदि माल और खजाना इनाम में दे भी दे तो हममें उसका क्या करना है, ललित किशोरी कहते हैं कि जहाँ हमारे स्वरूप को न जाने, जहाँ हमें कोई न पहचाने, वहाँ क्या जाना है।

हम मौजी हैं ... ... घबरावे हैं।

हम अपने मन के स्वतन्त्र हैं, अपनी इच्छा से विचरते हैं, जहां हमारी इच्छा होती है, वहां जाते हैं। एकान्त में बैठकर प्यारे का ध्यान धर कर, जब भूख लगती है, कन्द मूल और फल खा लेते हैं, कभी पहाड़ की गुफा में रहते हैं, कभी वन में घूमते हैं, मनुष्य के पास नहीं फटकते, ललित किशोरी कहते हैं, हमारा केवल भजन ही

आहार है या खाना पीना है, अथवा केवल भजन के आश्रय में रहते हैं, भीड़ भाड़ से घबराते हैं।

छाड़ दिया ... ... पाया है,

ललित किशोरी कहते हैं कि हमने सब माल खजाना छोड़ दिया, हीरे मोती भी लुटा दिये, शाल दुशाले फैंक दिये, संसार से मोह तोड़ दिया। कुल की मर्यादा छोड़ कर माशूक अर्थात् प्यारे ने मनको लुभा लिया है, जब हमने धैर्य और धर्म के विचार सब छोड़ दिये तब यह फकीरी का आनन्द मिला है। धर्म से यहाँ धर्म के नाम पर होने वाले बाहरी आचार से तात्पर्य है।

जंगल में ... ... खिलाता है

हम अब जंगल में आनन्द करते हैं, बस्ती से मन को घबराहट सी लगती है। मनुष्य की गन्ध भी अच्छी नहीं लगती, बन्दरों और मोरों की संगति ही भाती है, अपने हाथों गर्दन काट कर हर समय आहें भरना अच्छा लगता है, ललित किशोरी कहते हैं कि इश्क अर्थात् प्रेम भाव ही यह सब खेल खिलाता है, यह काम कराता है।

अविलम्ब ... ... बसेरो।

हे प्यारे? अब देर न कीजिये, कृपा की दृष्टि से थोड़ा तो देख लीजिये ऐसी दया करो कि यमुना के किनारे घने जंगल के मार्गों में शाम सवेरे घूमा करूं। रात दिन राधा कृष्ण के सुन्दर रूप का दर्शन करूं, अचानक रसिकों भगवत् भक्तों से भेट हुआ करे। ललित किशोरी कहती हैं कि मेरा शरीर और मन दोनों अत्यन्त व्याकुल हैं। यही चाहते हैं कि बृन्दाबन में निवास करूं।

जमुना ... ...न जाऊं।

ललित किशोरी कहते हैं कि मेरी यही कामना है कि यमुना के किनारे घने कुँजो के वृक्षों पर बैठ कर कोयल बन कर कूका करूँ भौंरा बन कर प्यारे लाल के चरण कमलों पर बैठ २ कर मीठी २ गूंज सुनाऊँ मैं कुत्ता बन कर ब्रज की या बन्दावन की गलियों में घूमूं, कृष्ण प्रेमियों के जूठे भात के कण खाऊँ, मेरी बस अब यही कामना है कि ब्रज

की रज को छोड़ कर क्षण भर के लिये भी और कहीं न जाऊँ।

श्रीवृन्दावन ... ... प्यासा है।

हे भगवन्! हमारी यही कामना है कि हमें वृन्दावन में निवास दो, यमुना के किनारे वृक्षों की जहां मधुर छाया रहती है, श्रीकृष्ण प्रेमी जहां निवास करते हैं, परम रमणीय सेवा कुँज में जहां कि बारह महीने एक सी सरसता रहती है, वहां निवास करूँ। ललित किशोरी का हृदय राधा कृष्ण की जोड़ी के सुन्दर रूप के दर्शनों की प्यास से आकुल रहता है।

राधा रमन ... ... गहते हैं।

सुन्दर और मन को चुराने वाले राधावल्लभ के साथ सदा रहा करते हैं, उनकी सुन्दर कान्ति और मधुरता से तृप्त रहते हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। नित्य प्रति प्यारे मोहन की तिरछी चितवन की चोट, कटाक्ष के प्रहारों को हृदय पर सहा करते हैं, उन चोटों को रोकने के लिये किसी प्रकार की आड़ या लाठी आदि की रोक नहीं करते।

श्रीवृन्दावन ... ... तारा है।

जो कोई हमें वृन्दावन की पवित्र रेणु के भी दर्शन करादे, हमारा वास्तविक हितैषी वही है, जो हमें राधा कृष्ण की रूप माधुरी चखा कर तृप्त करदे, वही हमारे प्यारे हैं। जो यमुना के जल का पान करादे वह हमारा पूर्ण उपकारी है ललित किशोरी कहते हैं कि जो हमें राधा कृष्ण की जोड़ी के दर्शन करादे, वही हमारी आँखों का तारा है।

वन वन... ... ... सचुपावे है।

हमें वन वन में भटकना अच्छा लगता है, उसके स्थान पर रत्न और महल नहीं भाते। पेड़ों और लताओं के नीचे पड़ा रहने में हमें सुख का अनुभव होता है, बिछौने और शय्या हमें नहीं भाती। शिर के नीचे बांह लगा कर के सोना अच्छा लगता है पर तकिये का हमें स्मरण भी नहीं आता। ललित किशोरी कहते हैं कि और कुछ नहीं आता केवल हरि का नाम रटने से ही आत्मा को सुख मिलता है।

संसार से विरक्ति का इससे कितना अच्छा परिचय मिलता है।

पवन पान ... ... गुन गावें हैं।

हे सखी! महीनों तक वायु पी कर रह सकते हैं, अब हमें अन्न नहीं भाता रात दिन न पानी पियें न सोवें, बैठे २ समाधि अर्थात् भगवान् से मन की एकाग्रता लगाये रहते हैं, यदि थोड़ी देर के लिये कहीं समाधि टूटने के कारण आँख की पलकें खुल गईं तो हाथों में बीन लेकर उसे बजाने लगते हैं। ललित किशोरी कहते हैं कि अब हम यमुना के किनारे बैठे केवल हरि का नाम और गुण गाते हैं।

लटकि २ ... ... बतरावनि।

मन मोहन का लटक २ कर झूम झूम कर चलना बड़ा भाता है। घूम घूम कर पृथ्वी पर पैर रखते हैं, उनकी चाल हाथी को भी लजाने वाली है। गौवों के खुरों की धूलि से शरीर रमा हुआ है, उसकी उपमा दृष्टि को लजाने वाली है, मानों नये काले २ बादल पर हलकी सी बदली छा गई हो, इस प्रकार अपनी शोभा से आनन्द बरसाती हैं। मुख में दान्तों की दमकती हुई पंक्ति बिजली की सी चमक से मुख तक को सुशोभित कर रही है। बीच २ में मधुर वंशी बजाने से मधुरता और भी बढ़ जाती है। वक्षः स्थल पर मोतियों की माला सुशोभित है मानो बगुलों की कतार हो। गोपाल के गालों पर गुलाल की बून्दे वीर बहूटी का सी शोभा उत्पन्न करती हैं। तगड़ी की छोटी घंटियों की रुनन झुनन की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानों हंसों की चुह-चुहाट हो, शिर के बाल मुख पर बिखरे हुए हैं, शरीर धूलि से सना हुआ है, जमीन पर घुटनों के बल लेट कर चलते हैं, जांघों पर पीली २ सुनहरी कछनी पहने हुए हैं उस पर कस कर दुपट्टा बँधा हुआ है। पीताम्बर, पीला दुपट्टा हवा में फर फराता उड़ता है। शिर पर सुन्दर मुकुट की शोभा है, इस प्रकार सुन्दर खिलाड़ी का वेष बनाया हुआ है। नाक पर बुलाक हिल रही हैं, होठों को तिरछा करके सुन्दर लाल २ पान का बीड़ा चबाते हैं। ललित किशोरी जी कहते हैं कि जब वे मीठी बातें करते हैं तो मन कहता है कि ये मधुरता बोल रहे हैं मुख

से फूल झड़ रहे हैं। इसमें उत्प्रेक्षा, निदर्शना, सन्देह अलंकार हैं।

मुरकि २ ... ... रसीली।

श्रीकृष्ण मुड़ मुड़ तिरछी दृष्टि से देख कर मन चुराते हैं। ठुमुक ठुमुक कर चलते हैं, जोर से पुकार कर बालते हैं, नन्द किशोर श्रीकृष्ण इस प्रकार पुलकित हो रहे हैं। कभी गौवों को हाथों से सहलाते हैं, किसी का शब्द सुन कर चौंक उठते हैं, कभी वनमाली प्यार से उन्हें थप थपाते हैं। सभी गौवों का नाम ले लेकर पुकारते हैं जैसे धौली या धवली, (सफेदगाय) धूमरी, आली आदि, चौंक कर भागने वाली किसी गाय को झट से आगे बढ़ कर पुचकारते हैं। उसे कहते हैं, अरी रंगीली, क्या करती हो, खड़ी रहो, भागो नहीं, इधर उधर की गौवों को एकत्रित कर लेते हैं, कभी रास्ते में ही गाय के थन से मुँह लगा कर दूध पी जाते हैं, जैसे बछिया झुक कर पी लेती हैं। कभी फिरकनी या चकरी लेकर घुमाते हैं। किसी ठीकरी को एक डोर में पिरो कर हाथ में घुमाया जाता है, वही फिरकनी कहलाती है। इस फिरकनी को लेकर घुमाते और साथ में नाचते और बीच २ में रसीली तान गाते हैं, कभी बीच में ही रुक कर गाय से भिड़ कर या गाय पर सहारा ढेक कर पीछे देखते हैं, सुन्दर सीटी सी बजाते हैं। उनकी ये सभी लीलायें मन को चुराने वाली हैं।

मन पछितै हौ ... ... हरि चीने।

अरे मन! भजन किये बिना तू पछतायेगा। अरे अभी भी जाग जा, अभी संभल जा, सचेत हो। यह धन सम्पत्ति कुछ काम न आयेगी। परलोक में इस धन सम्पत्ति का कोई उपयोग न हो सकेगा। यदि तैने कमलसे नयनों वाले श्री कृष्ण के गुणों पर चित्त न दिया, उनके गुणों का कीर्तन न किया तो यह कोई न पूछेगा कि तेरे पास कितनी सम्पत्ति थी। यह संसार देखने मात्र का साथी है' पिता माता सब अपने सुख या स्वार्थ में तत्पर हैं। ललित किशोरी कहते हैं कि आनन्द के मूल भगवान् को पहचाने बिना ससार के झंझट नहीं मिटते। इसलिये भगवान् का समय रहते भजन करले।

अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। कारण से कार्य का बोध कराया गया है।

मुसाफिर ... ... बर जोरी।

ओ बटोही! देख रात थोड़ी रही है। अभी जाग जा, यह सुख की, निश्चिन्तता की निद्रा छोड़ दे, तेरे अमूल्य धन आत्मज्ञान की चोरी होरही है। तेरा मार्ग दूर है लक्ष्य भी दूर है, यह संसार रूपी समुद्र बहुत विशाल है, अरे मूर्ख, मेरी समझाई बात मान जा, ललित किशोरी कहते हैं, जो तू बल पूर्वक कर्म करता है सो हाकिम से यमराज से डर। अथवा तुझे यमराज का भय करना चाहिये जो कि बल पूर्वक खींच लेजाता है। भाव यह है कि यह मनुष्य जीवन एक रात्रि है। प्रातः काल वही है जब आत्मा इस शरीर से छूट कर उस परम पिता परमात्मा से मिलता है संसार एक अपार समुद्र है, यदि दुष्कर्म ही करता रहे तो जन्म जन्मान्तरों तक इसी समुद्र में डुबकी खाता रहता है, मनुष्य जीवन भी बारम्बार नहीं मिलता, जिस लक्ष्य तक तूने पहुंचाना है, वह बहुत दूर है, प्रमात्मा तक पहुंचने के लिये सब से सहज उपाय उस का भजन ही है। अषनु स्वरूप अपने स्वरूप को पहचाइना चाहिये कि आत्मा प्रमात्मा का अंश है, माया इस स्वरूप ज्ञान को भुला रही है। जीवन का भीं कोई निश्चय नहीं कब समाप्त हो जाय। इस लिये अभी से चेत कर विघ्नो की ओर से मुँह मोड़ लो। अति शयोक्ति रूपक अलंकार है।

लाभ कहा··· ... ...उर लाये।

इस सुनहरे मानव शरीर को पाकर क्या लाभ हुआ। कोमल कमल सदृश नेत्र वाले श्रीकृष्ण का कभी भजन नहीं किया, दुःख दूर करने वाले भगवान् का कभी प्रसन्नता पूर्वक ध्यान नहीं किया। कभी अपना तन-मन और धन उनकी भेंट नहीं किया, अर्थात् यह सब कुछ उन्होंने दिया है, परन्तु हमने उनके अर्पण कभी नहीं किया। इन प्राणों से प्राण पति या प्राण दाता परमेश्वर के कभी गुण नहीं गाये। सारी आयु नश्वर और केवल माया के कारण दिखाई देने वाले यौवन, धन,

सोना और महलों के संचय के पीछे गंवा दी। वे सभी पादार्थ भी खोये। अर्थात् जिनके पीछे यह आयु खोई, वे पदार्थ भी अन्त में नहीं रहे। हमारे गुरु जन, पिता, माता आदि सब झूठे अभिमान में भरे हैं, भगवान् के विरुद्ध रहने वाले सांसारिक मनुष्यों के संग में लीन हैं। सुख सम्पत्ति में अपने आप को भुलाये घूमते हैं, ललित किशोरी कहते हैं कि दृढ़ता से चिन्तामणि रत्न और चिन्तामणि श्री कृष्ण को हृदय से लगाये बिना त्रिविध सन्ताप दूर नहीं हो सकते। चिन्तामणि रत्न कहते हैं, बहुत शीतल होता है। वह दाह शान्त करने के लिये अपूर्व लाभदायक होता है।

विनोक्ति, काव्यलिंग, श्लेष अलंकार हैं।

कोई दिलवर··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···दिखादे रे।

अरे कोई है जो मुझे प्यारे श्री कृष्ण के मिलन का मार्ग बतादे। कुटिल अर्थात् घुंघराले बाल और भौंहों तथा कमल से नेत्रों की कहानी मेरे कानों को सुना दे। ललित किशोरी कहते हैं कि कोई मेरी और उसकी मन की अदला बदली कर दे। अर्थात् मेरा उसके साथ दृढ़ प्यार करवादे और उसे मेरी ओर झुकादे। यह शरीर और हृदय जिसके प्रेम में रंग गये हैं, उसकी एक झलक दिखादे। उसके दर्शन करवादे।

दम्पति··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बलिहारी।

हे दम्पति, हे राधाकृष्ण, हमारी केवल इतनी प्रार्थना है, खिलीं हुई मल्लिका व जुही वाली इन कुञ्जगलियों में कृपा करके धीरे २ चलें। कारण यह है कि इन नवीन निकुंजों और उनके वृक्षों तथा पुष्पों को भी आपके रूप ने मोहित कर लिया है, वे भी आप दोनों के प्रति भक्ति भाव से रंग गये हैं। हे भगवन्! यही अवसर है कि आप उनके हृदय रूपी कमल में अपनी शोभा के द्वारा बस जायें। अर्थात् आप इस समय उनके मन में बस जायें। भाव यह है कि जिस प्रकार कभी कई महान् पुरुष किसी नगर में जाता है तो वहाँ के निवासी दोनों ओर खड़े होकर बीच में उसके चलने के लिये मार्ग छोड़ देते हैं, इस प्रकार उसका

स्वागत करते हैं, वह भी उस जन-मार्ग में धीरे २ उनके स्वागत-नमस्कार को स्वीकर करता चलता है, इसी प्रकार वृन्दाबन की कुञ्ज गलियों में भगवान् से धीरे २ चलकर दर्शन देने की प्रार्थना की गई है। इस पद्य से जड़ वस्तुओं तक भगवत्प्रेम की व्यापकता दिखाने की चेष्टा की गई है।

मोहन··· ··· ··· ··· ··· ··· ·· ···कपट सियो।

योगिनी के ह्रद्य समय के रूप को लक्ष्य कर कहते हैं, हे मोहन! यह वैराग्य क्यों लिया, प्राणायाम करने के लिये नाक बन्द कर, हाथ में माला ले कर अच्छा ध्यान लगाया है, योगी बन कर अच्छी भिक्षा मांगी और अच्छा प्रसाद या वरदान दिया। ललित किशोरी कहते हैं यह कपट की झोली या गूदड़ी क्यों सी है।

स्याम रूप··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···ध्याऊँ।

मैं श्याम सुन्दर के रूप में तेज तत्व को, अधर रस में जलतत्व को वंशी में आकाश तत्व को और प्राणों में अपने प्राण तत्व को मिलादू, हे सखी, गायों के खुरों की धूल से सुशोभित श्री कृष्ण का मुख मैं तनिक भी देख लूँ तो उनके शरीर में पृथ्वी तत्व या पार्थिक तत्व मिला कर इस प्रकार पांचों तत्वों से प्रियतम का ध्यना करूँ।

भाव यह है— जीवों का पार्थिव शरीर पंच भूतों से बना हुआ है। शरीर में त्वचा, हड्डी और मांस पार्थिव या पृथ्वी के अंश हैं। खून, मज्जा आदि तरल पदार्थ जल के अंश हैं, सांसों की ध्वनि, धड़कन आदि का शब्द और जो कुछ बोलने से शब्द ध्वनि होती है, सब आकाश का गुण है। बालों का काला या सफेद रंग शरीर का रंग रूप और जठराग्नि ये तेज के गुण या अंश हैं। शरीर के रिक्त अंशों में भरा पांच प्रकार का वायु, वायु का तत्व है, शरीर के पांच वायुओं के नाम ये हैं:—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, इन में प्राण हृदय में, अपान गुदा में, समान नाभि देश में, उदान मस्तक में और व्यान सम्पूर्ण शरीर में रहता है। इसलिये कवि का कहना है कि मैं अपने पंच तत्वात्मक शरीर को श्रीकृष्ण में लीन कर दूँ, इस प्रकार उनका ध्यान करूँ। आध्यात्मिकता

को पराकाष्ठा है। एकाग्रता के लिये ऐसा करने की आवश्यकता होती है।

मैं तेरे संग··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···सुनाऊँ।

भगवान् के साथ एकमय होने की भावना और भी प्रकट करते हैं। हे श्याम सुन्दर! आप में लीन हो कर आप के साथ ही मैं भी बंशी बजाऊं, जैसे बंशी पर आप अंगुलियां रखते हैं ऐसे ही मैं भी उसके सम्पूर्ण स्वर सम्बन्धी छिद्रों पर अपनी चंचल अंगुली चलाऊँ। आप के साथ ही साथ पंचम स्वर, ऋषभ अर्थात् दूसरा स्वर और निषाद अर्थात् सप्तम स्वरों में टप्पा लगाऊँ। लय मिलाऊँ, ललित किशोरी कामना करते हैं कि आप के साथ २ यमन, काफी और सोरठ आदि राग रागनी गा गा कर सुनाया करूँ।

भारतीय संगीत शास्त्र के अनुसार सात स्वर माने गये हैं १—षड्ज, २—ऋषभ, ३—गान्धार, ४—मध्यम, ५—पंचम, ६—धैवत, ७—निषाद इन्हीं सातों स्वरों का अधुनिक संगीतकारों ने संक्षिप्त नामकरण करलिया है। जैसे स से षड्ज का, र से ऋषभ का का, ग से गान्धर का, म से मध्यम का, प से पंचम का, ध से धैवत का और नि से निषाध स्वर का बोध होता है।

जैसे कहा है 'सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छना सत्वेक विंशतिः। ताला श्चैकोन पचाशात् प्रोक्ताः संगीत वेदिभिः॥'

रे निर्मोही·····मनाया जा।

अरे निर्मोही! (बेवफा एक बारतो अपनी कान्ति दिखाजा, एक बारतो दर्शन देजा। हे घनश्याम, तुम नीले बादल हो तो तुम्हारे विरह में ये कौन चातक बने हुए हैं, इन्हें मधुर वन्शी तो सुना जाओ। इन नेत्र रूपी चकोरों को अपने मुखचन्द्र की कान्ति दिखा जाओ। यह प्राण पथिक होना चाहते हैं, अर्थात् इस शरीर रूपी घर से रूस कर तेरे लिये पागल हो कर बाहिर निकलना चाहते हैं, इन रूसे हुए राही प्राणों को मनादो, निकलने से बचालो, अर्थात् आपके दर्शनों के बिना मेरे प्राण निकले

जाते हैं, यदि मेरे जीवन की रक्षा करनी है, तो शीघ्र आकर दर्शन दे दो।

बलि बलि··· ··· ··· ··· ··· ··· निरवारत तहाँ।

हे सखी, बलिहारी है, चलो वृन्द्रावन में दोनों चन्द्रमाओं के राधाकृष्ण के दर्शन करें। सुन्दर कमल सा मुखड़ा देख कर रूप रूपी रस को आँखों से पान करें। जहाँ पर सुन्दर कोमल माधवीलता पर और लतायें झूम रही हैं, कुंजों में भौंरे गूँज रहे हैं, वहाँ पर शोभा ढेर लुट रहा है।

रूप काति शयोक्ति, उपमा. रूपका हैं।

नवनि··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···अति हानी।

उस बन में अनेक लतायें नव विकसित रंग विरंगी कुसुमावली से सुशोभित हैं, वहाँ के पक्षि वृन्द दोनों दम्पति राधाकृष्ण और श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण कर रहे हैं। वृक्ष और लतायें नव किसलयों और पुष्प गुच्छों से सुशोभित हैं, यमुना का निर्मल जल लहरों से हिलोरें मर रहा है, उसका तट अत्यन्त रमणीय बना हुआ है। धीमा २ पुष्प समूह के सुन्दर गन्ध से सुरभित और शीतल पवन चल रहा है, इस प्रकार निराली ही शोभा छाई हुई है।

घन घोर··· ··· ··· ··· ··· ··· ···अंग पिये।

आकाश में घनी बादलों की घटा घुमड़ी हुई है, चारों दिशाओं में बिजली चमक रही है, वृक्षों के नीचे सोलह शृंगार किये नवयुवतियों के मुख चन्द्र चमक रहे हैं, उन गोपवधुओं के मध्य में राधाकृष्ण की सुन्दर जोड़ी परस्पर गले में बाहें डाले, अंग अंग में मधुरता पिये अथवा एक दूसरी की रूप माधुरी का पान कर उस से अंग २ में रमे हुए, मतवाले हो रहे हैं, उनकी आँखें झूम रही हैं।

नटत··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···झन कारने।

दोनों नव किशोर चतुर राधा और श्री कृष्ण एक दूसरे से आँखें मिलाये नाच रहे हैं, अनेक अंग भंगियां दिखाते हैं, अपने २ नयनों के संकेतों या इशारों से अनेक हाव भाव दिखाते हैं। अपने २ अंगों

को तिरछे मोड़कर अनेक प्रकार की चाल दिखाते हैं। चोटी में से नाचते समय झड़ते हुए फूल ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे युगल जोड़ी पर फूलों की न्योंछावर हो रही हो। नाचने में ताता, थेई थेई की ध्वनि होती है और साथ में मधुर घूंघरुओं व पायलों की झनझनाहट हो रही है।

अधर··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···छाँना लजें।

मीठे अधरों पर सुन्दर वंशी रख कर मोहन मन्द और मधुर स्वर से बजाते हैं, मोहिनी राधा उस के स्वर से तन्मय हो कर मन्द स्वर से मल्हार गा रही हैं, बादलों के अवसर पर मल्हार गाया जाता है। सुन्दरी नव बालायें तालियां बजाकर ताल दे रही हैं, मधुर ध्वनि से बीन बज रहीं है। तगड़ियों की छोटी २ स्वर्ण घाटियों की ध्वनि सुन कर हंसों के बच्चे लजाते हैं।

जोरि कर··· ··· ··· ··· ··· ··· ···नैननि बसै।

सम्पूर्ण सुन्दर नव युवतियों ने हाथ से हाथ मिला कर एक गोल चक्कर या घेरा बना लिया है, वृष भानु की पुत्री राधिका और बृज के चन्द्रमा, श्रीकृष्ण उनके मध्य में नाच रहे हैं, यह रात्रि भी धन्य है। दसों दिशाओं में मुख रूपी चन्द्रमा की चांदनी छाई हुई है, उस चाँदनी में वक्षःस्थल पर लटकते मणि भी चमक रहे हैं, अथवा वक्षः स्थल पर लटकते मणियों की शोभा भी चन्द्रमा की कान्ति सी चमक रही है। ललित किशोरी कहते हैं कि पत्तों और लताओं के अन्दर रूपी झरोखों से देखी गई यह कान्ति मेरे नेत्रों में नित्य प्रति बास करे।

उपमा अलंकार

कदम··· ··· ··· ··· ··· ··· ···तिहि छाँछि।

कामना करते हैं कि क्या मैं कभी वृन्दावन में कदम्ब का कुंज बन सकूँगा जिस की छाया में प्यारे राधाकृष्ण रास विहार करेंगे।

सुमन··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···दुकूल।

ललित किशोरी कहते हैं कि क्या कभी वृन्द्रावन की फूलों वाली बगीची का फूल बन सकूँगा। जोकि दोनों परम प्रिय राधाकृष्ण फूल चुनने के समय मुझे भी चुन कर अपने वस्त्र में रख लें।

कब काली··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···नूतन चीर।

कालीदह नामक घाट की मन्द, सुगन्ध और शीतल पवन कभी बन सकूंगा जोकि दोनों के शरीर से लगेगी और उसके लगने से उनके वस्त्र फर २ उड़ेंगे।

कालीदह यमुना का वह स्थल या घाट था, जिसके पास श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को नथा था, उस घाट का नाम उस नाग के कारण ही ऐसा पड़ गया था।

मिलि हैं कब ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···जीवन मूरि।

यह शरीर किस दिन भस्म होकर वृन्द्राबन की धूलि में मिलेगा, उस पर जीवन के मूल अर्थात् मेरा जीवन सफल करने वाले उन दोनों के चरण कमल पड़ेंगे, अर्थात् उस पर राधाकृष्ण अपने चरण कमल रखेंगे और मैं धन्य २ हो जाऊँगा।

कब गहवर··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· नवल किशोर।

अहा कब वह दिन होगा, मैं वृन्दावन की गलियों में चकोर बन बन कर घूमूँगा, नागरी राधिका और नवल किशोर कृष्ण, इन दोनों का मुख चन्द्र देखूंगा।

कब कालिन्दी ·· ··· ··· ··· ··· ···झूला डारि।

अहा कब मैं यमुना के किनारे के वृक्षों की डाली बनूंगा जिस पर झूला डाल कर ललित किशोरी कहते हैं, दोनों प्यारे आनन्द से झूला करेंगे।

स्यामापद··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बिच स्याम।

हे सखी, श्यामा श्री राधिका के चरणकमलों को दृढ़ता से पकड़ले, ऐसा करने से निश्चय ही प्यारे श्याम सुन्दर मिल जायेंगे, यदि विश्वास न हो तो प्रत्यक्ष देखलो, 'श्यामा' शब्द में ही श्याम

छिपा हुआ है, अर्थात् 'श्यामा' शब्द से आकार हटा दिया जाय तो श्याम शब्द रहेगा। भाव यही है कि श्याम सुन्दर को पाने के लिये राधिका को प्रसन्न करो, श्याम सुन्दर उसके प्रेम के वश में हैं, दर्शन देंगे।

ललित··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···अलि गुंज।

बृन्दावन में सब कुछ ललित या सरस है, तीनों दोहों से यही सूचित करते हैं। बृन्दावन की भूमि हरी भरी, सुन्दर और सुख देने वाली है, देखने और घूमने दोनों के लिये रमणीय है, लताओं के नये २ कुंज भी वहाँ बड़े सुन्दर और कोमल हैं, अर्थात् लतायें सूखी हुई नहीं हैं, नव विकसित और पल्लवित हैं, वृक्षों और लताओं पर बैठे हुए पक्षी भी अत्यन्त मधुर और सरस कलरव करते हैं, भौंरे भी ललित या रसीली और मीठी गुंजार गूंज रहे हैं।

ललित बेलि··· ··· ··· ··· ··· ··· ···विलास।

बृन्दावन की लतायें, उनकी कलियां और खिले कुसुम समूह सभी ललित या सरस हैं, उनकी सुगन्ध भी बहुत सरस और मीठी है, वहाँ पर कोयल, तोते आदि पक्षि बृन्द मधुरस्वर से राधकृष्ण की रास क्रीड़ा के गीत गाते हैं।

ललित··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···समीर।

यमुना के तीर की रेत बहुत ही कोमल है और उस पर खड़े कुंज गृह बड़े ललित और सुखद हैं, सूर्य पुत्री यमुना की सुन्दर लहरों से मन्द, सुगन्ध और शीतल, सुखद वायु चलती है।

इन तीनों दोहों से बृन्दावन की सर्वांगीण मनोहरता दिखलाई है। इनतीनों दोहों में ललित शब्द अनेक बार आया है पर उसका अर्थ एक ही है, केवल तात्पर्य का भेद रहा है, अतः इन तीनों में लाटनुप्रास अलंकार है। व्यञ्जना से यह बोध कराया है कि इस कारण सर्व मनोहर बृन्दावन में अवश्य निवास करके इस जीवन को सफल बनाना चाहिये चाहे किसी भी योनि में जन्म क्यों न हो। इस प्रकार कृष्ण प्रेम की वृन्दावन प्रेम के द्वारा पराकाष्ठा दिखाई गई है। सब पदार्थों

को ललित विशेषण देने के कारण कवि अपने नाम के आदि में ललित शब्द के प्रयोग को भी सहेतुक सिद्ध कर रहा हैं। जहां सभी पदार्थ ललित हों, वह भी ललित होकर ही वहाँ रह सकता हैं॥

देव

पायन ... ... देव सहाई।

जिन के पैरों के सुन्दर पायलों की झनकार है, कमर पर बांधी तगड़ी की छोटी २ सोने की घंटियों की मधुर ध्वनि सुनाई देती है। सांवले शरीर पर पीला वस्त्र सुशोभित है, वक्षः स्थल पर बन माला लहरा रही है, तुलसी और मन्दार के पुष्पों के नीचे तक लटकने वाली माला बन माला कहलाती है। मस्तक पर मुकुट है, बड़े २ चंचल नेत्र हैं, मन्द मन्द मुस्काम मुख रूपी चन्द्रमा की चाँदनी सीं हैं। जुन्हाई शब्द चान्दनी वाचक ज्योत्सना शब्द का अपभ्रंश है। जगत् रूपी मन्दिर के सुन्दर दीपक अर्थात प्रकाशित करने वाले, समस्त शोभा युक्त ब्रज बल्लभ की जय हो, वे देव कवि के सहायक हों। अथवा देवताओं के सहायक ब्रज बल्लभ श्री कृष्ण की जय हो।

इस पद्य में अश्लिष्ट परम्परित रूपक है।

सूनो कै ... ... कुरै परी।

श्री कृष्ण जन्म का वर्णन करते हैं, परम धाम वैकुण्ठ कों खाली छोड़ कर, अनन्त अर्थात् शेषनाग का अभिमान घटाकर, समुद्र और नदियों को दुगनी करती हुई लक्ष्मी समुद्र की कन्या है, पुत्री के पृथ्वी पर आने से पिता को हर्ष होना स्वाभाविक है। श्री कृष्ण जन्म के दिनों वर्षा ऋतु थी, उन दिनों नदियां उमड़ी पड़ती हैं, इस लिये कवि कहता है कि समुद्र और नदियों के जल को दुगना करके लक्ष्मी पृथ्वी पर प्रकट हो गई, बड़े २ मुनीश्वरों कीं महिमा दिक्पालों का वैभव, ऐश्वर्य शाली देवों की सिद्धियां, योगियों की अष्ट सिद्धियों से तात्पर्य है, ब्रज की गलियों में बिखर गई। भाद्र पद मास की कृष्णा पक्ष का आधी रात्री में मथुरा के मार्ग में मन के रथ पर आकर अर्थात् इच्छा रूप में

बसुदेव और देवकी के अन्तर में छिपी हुई समुद्र के सामान सदा पूर्ण ऐश्वर्यवान अखण्ड, अपार अर्थात् अनन्त महिमा वाली पर ब्रह्म की राशि पर ब्रह्म परमेश्वर का शक्ति पुन्ज अचानक ही यशोदा की गोद में डालदी गई। अर्थात् परब्रह्म शक्ति बसुदेव देवकी के घर जन्म लेकर यशोदा की गोद में खेलने पहुँच गई। इस प्रसन्नता में लक्ष्मी वैकुण्ठ को छोड़ कर पृथ्वी पर आगई। सम्पूर्ण लोकों की समृद्धियां और शोभा व्रज मण्डल में छागई। तुल्ययोगिता अलँकार है साथ ही पर्यायोक्ति भी है।

घाये फिरै .... के चीर में।

देव कवि कहते हैं कि हे भगवान ? मैं आप को कहां २ ढूँढूँ ? कभी आप बैकुण्ठ से व्रज में दौड़े फिरे, जिससे नन्द के घर में नित्य ही बधाइयां बजीं अथवा नन्द के घर में यशोदा द्वारा बँधते रहे। कभी गोपियों के वश में होकर ग्वालों की मण्डली में नाचे। भला घहीं रहते तो भी पाये जाते परन्तु ऐसा भी नहीं हुआ। कभी आप नाग को नाथ ने के लिए यमुना के जल प्रविष्ट हुए कभी आप ने भक्त प्रह्लादकी पुकार पर दौड़ कर अंकुश बनाते हुए हिरण्यकशिपु का पेट चीरा अंकुश रोक थाम को भी कहते हैं, हिरण्यकशिपु को मार कर उसे और अत्याचार करने से रोक दिया। हाथी की पुकार सुनते ही आप उसे बचाने के लिये समुद्र के तीर पर पहुंच गये, अपने साथी या सारथी अपने वाहन गरुड़ को भी नहीं पुकारा इतनी शीघ्रता की कि बिना वाहन ही दौड़े पहुँच गये।

विदुर की साग सब्जी खाई, दुर्योधन का आतिथ्य त्याग कर विदुर के घर केवल शाकाहार करके सन्तुष्ट हो गये थे। भीलनी शबरी के बेर खाये, रामावतार में सीता ढूँढते हुए भगवान् लक्ष्मण के साथ इस भिलनी की कुटी पर गये थे, उसके जंगली बेर जो उसने जूठे कर के मीठे २ चाख २ कर दोनों में भर कर उनके आगे भेंट किये, बड़े प्रेम से खाये थे, इस घटना को अछूतोद्धार का रूप दिया जाता है। ब्राह्मण सदामा के भेंट के लिये लाय हुए चावल चबाये और पीछे द्रौपदी के

वस्त्र में छिप गये। जुए में पाण्डवों के अपने आप को द्रौपदी सहित हार जाने के बाद दुर्योधन ने दुःशासन के हाथों बल-पूर्वक द्रौपदी वहीं सभा में मंगाली, वह उस समय रजस्वला होने के कारण एक ही कपड़ा केवल साड़ी पहने थी, दुर्योधन ने दुःशासन को उसे नग्न करने को कहा, द्रौपदी की पुकार पर भगवान् ने वहाँ जाकर अलक्ष्य रूप से उसकी साड़ी को अनन्त कर दिया था। इस घटना का भक्त कवियों ने अनेक रूप से वर्णन किया है जैसे:—

'दस सहस्र गज बल थक्यो घट्यो न इक गज चीर।'

और 'सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही नारी है कि नारी ही की सारी है' आदि। यहां एक पदार्थ के अनेक अनेक स्थानों पर होने के कारण पर्याय अलंकार है।

देव नभ ... ... रहत हौं।

हे राम! मैं आपको आकाश रूपी मन्दिर में प्रतिष्ठित करके पृथ्वी रूपी सिंहासन पर बिठाता हूं, सम्पूर्ण तीर्थों, नदियों, तालाबों और समुद्रों के जल से नहला कर प्रसन्न होता हूं। यह मानसिक पूजन संकल्प है। सम्पूर्ण पृथ्वी के कन्द, फल और सुगन्धित फूल पत्र चढ़ाना चाहता हूं। असंख्य और अनन्त धूप, अखण्ड अर्थात् कभी न बुझने वाली ज्योति या बत्ती वाले दीपक बाल कर और सम्पूर्ण पृथ्वी, जल और अन्न समर्पित करके प्रसन्नता पाता हूं। हवा का चँवर झलता हूं, देव कवि कहते हैं कि हे भगवन्! मैं तो केवल आठों पहर आप को पूजता मात्र हूं, मेरे हृदय में कोई कामना नहीं है। इस पद्य से भगवान् की स्वतः सिद्ध पूजा की कल्पना की है। जैसे आकाश मन्दिर है, पृथ्वी सिंहासन है, नदी आदि स्नान के जल हैं, कन्द मूल, फल, फूल पूजा के द्रव्य है, अग्नि धूप है, सूर्य और चन्द्र का अखण्ड प्रकाश दीपक है। वायु स्वयं चँवर का कार्य करता है, इस प्रकार अठ पहरी पूजा की भावना सिद्ध हो जाती है।

नाकभू ... ... देख राई देत।

परमात्मा की शक्ति अद्भुत है, स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक और पाताल

लोक तीनों सुई के नाके या सुई की नोक में से पार हो सकते हैं, चौदहों लोक भूखे पतंगे के खाने या भोजन बन सकते हैं। चींटी के अण्डे रूपी वर्तन में सारा संसार समा जाता है, पानी की एक बूँद में सातों समुद्र हिलोरें लेते हैं, सम्पूर्ण स्थूल पदार्थ सूक्ष्म तत्वों में लीन होते हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांचों तत्व पर माणुओं में व्याप्त हैं, देव कवि कहते हैं कि आप ही ये सुबुद्धि दिखाई है कि नख के अग्र भाग में या राई के दाने में सुमेरु दिखाई देता है। परमात्मा सूक्ष्म है, एक और यह सिद्धान्त है कि वह सूक्ष्म रूप से सम्पूर्ण स्थूल जगत् में व्याप्त है, दूसरी ओर माना जाता है कि सम्पूर्ण चर, अचर ब्रह्माण्ड सूक्ष्म रूप धारी उस ब्रह्म में व्याप्त है, ऐसे अनन्त शक्तिमान् की शक्ति यह सभी कुछ असम्भव घटनाएँ भी कर सकती है। इस पद्य से अद्भुत रस की अपूर्व व्यजना हुई है। विरोध और विशेष अलंकार हैं।

तुही पंचतत्व ... ... सब में।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पंच तत्वात्मक भूत समुदाय तू ही है, सत्व, रज, तम सृष्टि के मूल तत्व तीनों गुण भी तू ही है, संसार में जितने भी स्थावर और जंगम, जड़ और चेतन उत्पन्न हुए ", सब कुछ तू है, ये सभी पदार्थ तेरे ही खेल हैं, लौट कर सभी तुझ में समा जाते हैं, मैंने जब २ इनका रहस्य जानने की इच्छा की, कुछ न जान पाया। देव कवि कहते हैं, हे भगवन्? अब मैं जब भी इस जगत् की ओर गहराई से देखता हूं तो तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता, जहाँ तहाँ तुम ही दिखाई देते हो। तुम स्वयं सबको अमर करने वाली बूटी हो, संजीवनी बूटी हो, अर्थात् सब के जीवन दाता आप ही हो, आप ही सब को मार कर धूल कर देते हैं, आप सब से दूर रह कर भी सब में भरे हुए हो, इस पद्य से कवि ने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् यह सब दृश्य मान पदार्थ ब्रह्म ही हैं, 'नान्य-परतर तस्मात् किंचिदस्ति धनंजय? अर्थात् हे अर्जुन उस ब्रह्म के अतिरिक्त श्रेष्ठ या मूल तत्व कुछ भी नहीं है, इन सिद्धान्तों की

अभिव्यक्ति कराई है। उल्लेख और विरोधाभास अलंकार जानने चाहियें।

मूढ़ ह्वै रह्यो ... ...उधारि दै।

अरे मूर्ख! तू क्यों मूढ़ अर्थात् माया मुग्ध हो रहा है, इस दिखावे की भूल भुलैयाँ में क्यों भटक रहा है? गुप्तरूप से सम्पूर्ण जगत में व्याप्त गुप्त महिमा वाले उस परमेश्वर को क्यों नहीं खोजता। अपने अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह या ममता और मात्सर्य या ईर्ष्या रूप गुप्त चोरों को और अगूढ़ अर्थात् प्रत्यक्ष इन्द्रिय रूपी चोरों को मार दे। उन को नष्ट कर दे। अपने आन्तरिक और बाहरी अन्धकार को निकाल कर ज्ञान की अग्नि जला कर उस से अपने अज्ञानरूपी बन को जला दे। प्रेमरूपी तैल से पूर्ण हृदय रूपी दीपक में जलदी मन्द सुखद और निर्मल आत्मा की ज्योति प्रज्वलित कर उसका प्रकाश चारों ओर फैलादे। देव कवि कहते हैं कि हे जीवात्मन्! मोह ममता रूपी जो बादल उमड़ घुमड़ कर तेरी आँखों के आगे छाया हुआ है, उसे माया या जादू के परदे की भाँति खोल दे, उतार दे।

अगनग ... ...चढ्यौ फिरे।

ब्रह्म की अद्वतीयता को पुनः अन्य शब्दों में पुकार करते हैं। अग या स्थावर पदार्थ पर्वत वृक्ष आदि, नाग, मनुष्य, किन्नर जाति (इनका कुछ अंग मनुष्य जैसा कुछ घोड़े जैसा होता है, इसी कारण इन्हे तुरंग-वदन अर्थात् घोड़े के से मुख वाला भी कहा जाता है।) दैत्य, देवता, भूत प्रेत पशु पक्षी आदि करोड़ों योनियां वही निकालता फिरता है। या इन करोड़ों योनियों में प्रकट होता है। माया के सत्व रजस्तम इन तीनों गुणों को उत्पन्न करता है, वही इन के विनाशक या विध्वंसक तत्वों की सृष्टि करता है, इस पंच भूतात्मक शरीर में काल का अंश या धर्म मरणात्मक लिये फिरता है, अर्थात् वही काल का प्रभाव दिखाने वाले मरणधर्मा इन चर्ममय शरीरों के रूप में प्रत्यक्ष होता है। वह अपने आप ही भक्षक या खाने वाला है, आप ही भक्ष्य या खाने का पदार्थ है, स्वयं ही वह अलक्ष्य अर्थात् अतीन्द्रिय इन्द्रियों से

प्रत्यक्ष न होने वाला है, आप ही वह मूर्ख बनता है, कहीं वह आप ही पण्डित बना फिरता है, वह स्वयं ही अस्त्र शस्त्र है, वह आपही शस्त्र प्रहार करता है, आप ही मरता भी है, आप ही कहार या पालकी ढोने वाला है तो आपने आपही पालकी में चढा फिरता है।

तेरो घर ... ...कपाट हैं।

देव कवि कहते हैं, हे जीव, तेरे घर को आठों पहर आठों सिद्धियां घेरे रहती हैं, विधाता ने तेरे भाग्य में नवों निधियां लिखी हैं, ये सभी सुख-सामग्री से सजे बड़े २ महा राजों का भी राजा तूही है, ये बुद्धिमान व्यक्ति तेरी ही कीर्ति गाने वाले भाट हैं। भू, स्वर्ग और पाताल तीनों लोकों का अधिकार तेरे ही आधीन है। तू उदास और दुखी होकर जहां तहाँ क्यों फिरता है, तुझ में जो सो ऽ हं, का आत्म संगीत या अनहद नाद् बोलता है, तू प्रयत्न कर के उसे ही क्यों नहीं मिलता। तेरे हृदय पर जो कपट के, छल छद्म के किवाड़ जड़े हुए है, उन्हे खोलता क्यों नहीं ? अर्थात् तू अपने आपको भूला हुआ है, तू उसी ब्रह्म का स्वरूप है, इस लिये तेरी बुद्धि पर माया का पर्दा जो पड़ा हुआ है उसे उतार फेंक, तभी तुझे अपने वास्तविक स्वरूप का भान होगा।

हौं ही ब्रज .... चुरी न की।

रास क्रीड़ा का आध्यात्मिक वर्णन करते हैं, मैं ही ब्रज हूँ, मुझ में ही वृन्दावन सदा बसा रहता है, श्याम रंग से रंगी हुई यमुना की तरंगे मुझ में ही लीन हैं, चारों ओर सुन्दर और घना दिखाई देने वाला वन उस के सुन्दर कुञ्जो और उन में गूँजने वाली भौंरों की गुन्जार भी मुझ में ही है, मेरे ही भीतर वंशीवट है, नट नागर कन्हैया मुझ में ही नाचते ह, रास, क्रीड़ा और वंशी की मधुर ध्वनि मुझ में ही गूंजती हैं, संगीत तालें देना और तानों की भनक अर्थात् शब्द और उन के साथ चूड़ियों की मधुर झनकार मुझ में ही लीन है। अर्थात् ब्रज, वृन्दावन यमुनाकुन्ज कृष्ण गोपी और रास बिहारी सब कुछ आत्मगत हैं। आत्मा में ध्यान करने पर यह सभी नित्य स्थाई रूप से विद्यमान रहता है। अत्यन्त योगिता अलंकार है।

को तपकै ... ... कैं मुलायो।

कौन के त्रिगुणात्मक कर्मजाल की व्यर्थता सिद्ध करते हैं। आज तक वेदोक्त मार्ग द्वारा तपस्या करके कौन इन्द्र बन सका है, किसने यमराज का बन्धन खुलवाया। अर्थात् कर्म करने पर भी कौन ऐसा है जो मृत्यु के बन्धन से छूट सका हो। कौन आज तक सोने के पर्वत के नाम से प्रसिद्ध सुमेरु पर्वत को पृथ्वी पर वर्तमान सिद्ध कर पाया है। अर्थात् अब तक उस सुमेरु को किसी ने देख भी नहीं पाया है। कुबेर को खरब, नील, पद्म, और महाशंख तक के नौ खजानों का स्वामी कहा गया है, परन्तु आज तक किसी ने उसके रत्न-भण्डार को तुलवाया है कि वास्तव में उसका कोष इतना ही है या कम अधिक, न कोई पाप है न कोई पुण्य है, अन्यथा जो मर चुका है उसे स्मरण करके किसी ने आज तक कभी बुलाया है ? अर्थात् वेदों और पुराणों के अनुसार पापकर्म करने वाला नरक में जाता है, अनेक वर्षों तक वहाँ दण्ड भोगता है, पुण्य करने वाला स्वर्ग भोगता है, अनेक वर्षों तक स्वर्ग में रहता है। परन्तु ऐसा कोई नहीं दीखता कि मृतात्मा को किसी ने यहां स्मरण करके बुलाया हो, यदि वह प्रेतात्मायें इन लोकों में रहती हैं तो स्मरण करने या बुलाने पर उन्हें अवश्य आना चाहिये, पर वह कभी आती नहीं देखी गईं। अतः यह भी कोरी गप्प है। ठगों को वेद और पुराण सुना कर व्यर्थ ही संसार को भ्रम में डाल दिया है। भाव यह है कि वेदों और पुराणों के अनुसार मनुष्य के लिये अनेक यज्ञ, जप, तप, तीर्थ यात्रा आदि कर्म बताये गये हैं, उनके परिणामों को सुन कर लोग उन प्रलोभनों में आ जाते हैं, परन्तु जब वह फल नहीं होता तब सब की आँखें खुलती हैं। इस प्रकार कर्म जाल की असारता सिद्ध की है।

मूढ़ कहें ... ... मरे कौ।

लोगों की कैसी उल्टी बुद्धि है कि मूर्ख घर में भरी सम्पत्ति को दान देकर लुटाने को कहते हैं, और आशा करते हैं कि इसका फल मरने के उपरान्त अगले जन्म में मिलेगा, अर्थात् इस जीवन में जो मिल

मिलाया, उसे तो रखते नहीं, अगले जन्म की आशा करते हैं। इसी प्रकार अपने बन्धु को खोकर मूर्ख ठीक ही चिढ़ते फिरते हैं, अथवा मूर्ख अपने बन्धु को खोकर या उसके मर जाने पर रोते चिल्लाते हैं। उसके पुनः जन्म लेने को रोते हैं, परन्तु जो एक बार राख में पड़ गया या भस्म हो चुका, मर गया, भला उसका कभी दुबारा जन्म हो सकता है, स्वर्ग लोक के हरे कल्पवृक्ष की आशा में जीते जी व्रत रख कर हवा खाके भूख से अपने आपको सुखाते हैं। मूर्खों की बुद्धि ऐसी देखो कि ये लोग स्वर्ग का साधन मृत व्यक्ति का श्राद्ध बताते हैं। अर्थात् मरा व्यक्ति कुछ पा तो सकता नहीं, उसका श्राद्ध करने से क्या लाभ। इस प्रकार कोरे दान, व्रत आदि कर्मों की असारता सिद्ध की है।

हैं उपजे··· ··· ··· ··· ··· ··· ···पावन पांड़े।

जाति गत भेद भाव की निन्दा करते हैं, ब्राह्मण और अन्य वर्णों के मनुष्य सभी उसी प्रकार रज और वीर्य के संयोग से उत्पन्न होते हैं, स्त्री और पुरुष का संयोग होने पर पुरुष जो वीर्य छोड़ता है और स्त्री रज छोड़ती है, दोनों का सम्मिलन होने से जीव का जन्म होता है। मृत्यु के बाद भी सभी ऊँची और छोटी जाति वाले पृथ्वी पर राख ही छोड़ कर जाते हैं, दोनों का जन्म रज और वीर्य इन पदार्थों से ही होता है और मरने पर भी दोनों का शरीर राख ही होता है, दोनों का शरीर भी अंग प्रत्यंग के रूप में एक सा ही होता है, दोनों की आकृति एक ही प्रकार की होती है जैसे एक ही कुम्हार के बनाये बर्तन एक से ही होते हैं, अर्थात् यह नहीं कि छोटी जाति के मनुष्यों के अंग पशुओं के समान होते हों और ऊँचे वर्णवालों के देवताओं से होते हों। इस प्रकार कोई भी विशेषता नहीं होती, इस प्रकार जन्म मरण की और शरीर की एकता होने से दोनों में समान भाव होना चाहिये। परन्तु यह बात नहीं है, ब्राह्मण अपने आप को तो ऊँचे या श्रेष्ठ बन कर और अन्य जाति के व्यक्तियों को नीच करके या नीच

बताकर उनसे बल पूर्वक अपने पैर पुजवाते हैं, ब्राह्मण वेदों को मूंद कर अर्थात् उनका कुछ का कुछ अर्थ कल्पित करके द्वन्द्व मचाते हैं, उन्होंने झगड़ा फैला दिया है। शूद्रों को अपवित्र कर दिया है और अपने आप को पवित्र बताते हैं।

साहेब अन्ध ·· ··· ··· ··· ··· ··· ···निसि नाच्यो।

जहाँ स्वामी या राजा तो अन्धा हो अर्थात् अविवेकी हो, गुण अवगुण को न पहचानता हो, कौन योग्य है कौन अयोग्य, कर्तव्य, अकर्तव्य को न पहचानता हो, उसका मंत्री गूंगा अर्थात् उसे उचित परामर्श न देता हो, केवल ठकुर सुहाती करनी जानता हो, वास्तविक भलाई की बात न कहे, सभी बहरी हो, अर्थात् यदि कोई उचित् बात कहे भी तो वह न सुने, ऐसी बातों पर ध्यान ही न दे, केवल रीझ का, चापलूसी का रंग जमा रहता है, अर्थात् सब केवल राजा की चापलूसी की बात करते हों, वहाँ कोई कठिन से कठिन योद्धा भी पहुंच जाय, अर्थात् कोई बड़ा ज्ञानी और विद्वान् भी पहुँच जाय तो वह भटकता फिरेगा, उसकी कोई भी पूछ न होगी, वहाँ तो वे कर्म होंगे कि नरक में डूबने के लिये कोई कमी न रहे। उसका किसी को न तो वेष ही सूझा, न किसी ने उसके उपदेश को समझा, बताने पर भी किसी ने नहीं सुना कि उसकी बातें किस रुचि में रंगी हुई हैं, अर्थात् किस प्रकार की रुचि उत्पन्न करने वाली हैं, अर्थात् किसी ने इतना कष्ट भी नहीं किया कि उसकी बातों का विषय ही समझ ले, देव कवि कहते हैं कि ऐसे स्थान पर उस नर की, मदारी की अर्थात् उस सदुपदेशक की सारी बुद्धि और सारी शक्ति लगादी, वह मन्द बुद्धि सारी रात नाचता रहा पर कोई लाभ न हुआ। मन्दबुद्धियों कहा कि उसने पात्र कुपात्र का भी विचार नहीं किया, भाव यह है कि किसी महत्व पूर्ण रचना या विद्वान् की बात को रसज्ञ और बुद्धिमान् व्यक्ति ही समझपाते हैं, इससे कवि का अपना अनुभव भी व्यक्त होता है, इनको अपने जीवन में विशेष सम्मान नहीं मिला, इस कारण ये किसी भी एक स्थान पर विशेष नहीं टिक सके। इसलिये इनका आशय प्रकट होता है कि मैंने अपनी

कविता आसिकों को सुनाई अपनी बुद्धि का व्यर्थ ही व्यय किया, परन्तु मेरी कविता का मूल्य वस्तुतः कोई नहीं जान सका। इस प्रकार विशेष निबन्धता अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार स्फुट होता है।

हाय दई··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···ही बिलाने।

संसार की असारता पर अपना करुणाभाव प्रकट करते हैं। हाय विधाता, इस काल के खेल देखो, सारे के सारे जीव फूल की भांति खिल कर कुम्हला गये, फूल जिस प्रकार प्रातः काल खिल कर सायं काल को मुरझा जाता है, इसी प्रकार सभी जीव उत्पन्न होकर मर मिटते हैं। इस संसार में उत्पन्न हो कर मौत से कोई भी न बच सका। इस पृथ्वी पर उत्पन्न होकर पृथ्वी में ही मिल गये। देवता या राक्षस अर्थात् देवताओं के समान शुभ गुणों वाले या दैत्यों के समान दुष्ट स्वभाव वाले माया ममता की हवस में हों क्या बलवान्, क्या निर्बल सब चले गये, सुन्दर रूपवान् या कुरूप, गुणवान् या निर्गुण सभी लोग जो जहां उत्पन्न हुए वहीं लीन हो गये।

देव जिये··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···आवत नाहीं।

हृदय की वेदना की अनिर्वचनीयता प्रकट करते हैं। कि जब हृदय की पीड़ा पूछो तो सच्चबात यह है कि पीड़ा का पार या अन्त नहीं मिलता। चाहे किसी के विचार या मत हो अर्थात् कुछ यदि कोई सलाह दे या अपने २ अनुभवों का वर्णन करें तो झूठे हैं, अर्थात् वास्ताविक अनुभूति का वर्णन नहीं हो सकता, इस पर यदि कोई कहे कि वर्णन नहीं कर सकते तो चुप रहो, उसका उत्तर देते हैं कि चुपचाप रहने से वह वेदना सही नहीं जाती, मन नदी के साथ लहरों में मिलकर झाग बन गया है, पकड़ने में आता ही नहीं। प्रेम नदी में घुल मिलकर केवल झाग रूप में इसका बोध होता है कि मन भी है, कहने को तो बहुत कुछ इच्छा होती है कि मैं अपनी वेदना का वर्णन करूँ, परन्तु क्या कहे कुछ कहा ही नहीं जाता। भाव यह है कि जो बात केवल अनुभूति बेद्य होती है, उसका वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता, अनेक प्रकार के ढंग बनाये जाते हैं, लोग अपनी २ अनुभूति कहते हैं,

परन्तु वह केवल वक्र ही होती है, क्योंकि वेदना का यथार्थ वर्णन हो ही नहीं सकता, जो उसका रण ज.नना चाहे, प्रथम उसक लक्ष्य बने। इसमें विशेषोक्ति और विरोध अलंकार हैं।

रूपकाति शयोक्ति अलंकार भी है।

देव सबै ... ... किशोरी।

देव कवि कहते हैं कि संसार में धन सम्पत्ति सब प्रकार का सुख देनेवाली है, सम्पत्ति का सुख है पतिपत्नी की जोड़ी हो, अर्थात धन होने पर भी बिना दाम्पत्यभाव के एकाकी पन में सुख का पूर्ण उपभोग नहीं होता। परन्तु दम्पति में भी प्रेम और पारस्परिक विश्वासभाव की कांति होनी चाहिये, विश्वास की रीति वही है जो स्नेह से निचोड़ी हुई हो अर्थात् प्रेमभाव से परिपूर्ण हो, प्रेम में भी गुणगान का विचार हो अर्थात् दोनों एक दूसरे के गुण गायें गुण गान की वाणी अमृत में सनी हो तो उत्तम है, वाणी का निचोड़ या शोभा शृङ्गार है, शृङ्गार के सार या निचोड़ राधा कृष्ण की जोड़ी है, शृङ्गार भी उनमें ही फबता है। इस पद्य में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता बताने के कारण सार अलंकार है।

फटिक ... ... लगत चन्द।

ग्रीष्मऋतु की चान्दनी रात्रि का वर्णन है, स्फटिक मणि या बिल्लौरी पत्थर की शिलाओं से बना हुआ सुधा का मन्दिर अमृत सा धवल महल, वास्तव में यहाँ सुधा का अर्थ चूना या कली है, उससे लिप्त मन्दिर है, भाव सौध से है, कली पुते महल को सौध कहा जाता है, इस लिये अर्थ वही करना चाहिये कि स्फटिक पत्थर की शिलाओं से जड़ा हुआ, नीचे दीवालों में और फर्श पर जिसमें स्फटिक जड़ा हुआ है, सारा भवन कली से पुता हुआ है, उसकी उज्ज्वलता दही के समुद्र के समान बहुत ही अधिकता से चमक रही है, बाहर से भीतर तक कहीं भी भींत का मान नहीं होता, सम्पूर्ण आंगन और भूमि या फर्श बंधा हुआ अर्थात् पक्का है, सब दूध के झाग के समान प्रतीत होते हैं। उसमें तारा के समान नव-युवती बड़ी झिल मिलाती हैं, जगमगाती हैं, मोतियों की

कान्ति मिलकर मल्लिका या चमेली के फूल का रस या पराग सी लगती है। तारा शब्द व्यवहार में पुँलिंग आता है परन्तु वास्तव में स्त्री लिंग है। इसी कारण पन्त जी ने भीः—

हृदय नभ तारा बन छवि धाम,
प्रिये अब सार्थक करो स्वनाम।

लिखा है, स्त्री से स्त्री लिंग वाचक वस्तु से ही उपमा दी जाती है। दर्पण से आकाश में, निरभ्र गगन को दर्पण सा कहा गया है, चान्दनी राधा की कान्ति सी झलकती है, चन्द्रमा प्यारी राधिका की परछाईं सा प्रतीत होता है।

भाव यह है कि ग्रीष्म ऋतु की रात्रि है, चारों ओर चान्दनी छिट की हुई है, कली से पुता हुआ सफेद महल है, उसके आंगन और फर्श पर स्फटिक की शिलाये जड़ी हुई हैं, दीवलें भी स्फटिक जटित हैं, बीच २ चम्पकगौरी राधिका खड़ी है, उस दुग्ध धवल श्वेतिमा में राधा के आभरणों के मुक्ता भी चान्दनी से और अधिक झिलमिला उठे हैं, इस कारण आकाश दर्पण सा, चान्दनी राधा की शरीर कान्ति सी और चान्द्रमा उसके मुख का प्रतिविम्ब सा प्रतीत होता है। इस पद्य में प्रथम चरण में 'उदधिदधि कौ सो' इस भाग में उत्प्रेक्षा है, दूसरे चरण में 'बाहेर तें भीतर लौं भीतिन दिखैये देव' तक इतने भाग में दीवाल के चान्दनी में घुल मिल जाने के कारण सामान्यालंकार है।

तृतीय चरण में उपमा, तद्गुण हैं, चतुर्थ चरण में प्रथम प्रतीप है। चन्द्रमा को राधिका मुख का प्रतिविम्ब सा बताया है, इससे कवि चन्द्रमा की राधा के साक्षात् मुख से उपमा के लिये अयोग्यता मानता है, इस कारण मुख की और अधिक उत्कृष्टता अभिव्यक्त होती है, उस ध्वनि से व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि है।

इसी चरण में उत्प्रेक्षा और प्रतीप का संकर है। साथ ही उदात्त अलंकार है।

पामरनि ... ... सुनियतु है।

नगर से लेकर भवन द्वार तक पांवड़ों पर पांवड़े बिछे हुए हैं,

श्री ब्रजचन्द्र के स्वागत के लिये बरसाने में नगर के द्वार से लेकर वृषभानु के भवन के द्वार तक पाँवड़े बिछते चले गये हैं। घर घर में धूप का धुआँ छाया हुआ है। अनेक प्रकार के इत्र, कृष्णागुरु, सुन्दर चोवा रस, चोवा एक सुगन्धित लकड़ी होती है, इनके रस का छिड़काव मार्ग में व घर २ में हो रहा है। कपूर के हजारों दीपकों से अन्धकार नष्ट हो रहा है, सुन्दर मृदंग बज रहे हैं, गोपियों के अंग प्रत्यंग के गुण अर्थात् उनके प्रत्येक अंग की सुघरता राग रागनियों के रंग या प्रभाव की लहर में और कई गुना अधिक हो रही है, अर्थात् गोपियाँ बड़ी प्रसन्नता से मृदंग के साथ गीत गा रही हैं, गाने की चेष्टा में उनकी अंग भंगियां उनके सौन्दर्य को चार चांद लगा देती हैं। इतनी सजावट का कारण बताते हैं कि सुख सामग्री से सजीले महाराज ब्रजराज श्री कृष्ण आज श्री राधा जी के घर पधार रहे हैं, ऐसा लोगों से सुना है। हर्ष की इतनी अधिकता है कि किसी से पूछ कर जानने या किसी को समझा कर कहने का भी अवकाश नहीं है, इस कारण केवल कर्ण परम्परा से ऐसा सुना गया है। इस पद्य के चतुर्थ चरण में 'सुख साज, महाराज, ब्रजराज, आज,' इतने भाग में शब्द नाद कितना सुन्दर है। सजावट का वर्णन अतिशय मात्रा में करने से उदात्त अलंकार है।

वाचकई ... ... पिसाचिनि प्राची।

प्रातः काल में अरुणोदय के समय पूर्व दिशा में छाई लाली का वर्णन करते हैं ... ... उस चकवी का ता मन चाहा हो गया, वह सारी रात प्रातः काल की प्रतीक्षा में रही, चकवे के मिलन की उत्कण्ठा में उस रात्रि को कोस रही थी, उसका आयुक्षय मना रही थी कि सचमुच ही उसके मनोरथ पूर्ण हो गये, चारों दिशाओं की ओर देखती हुई दिनारम्भ देख कर वह बड़ी प्रसन्नता से नाच उठी। रात्रि जाने पर स्वयं चन्द्रमा की कान्ति भी क्षीण हो गई, चाँदनी रात तो ऐसी लुप्त हुई मानों यमराज ने मांगली हो, अर्थात् चान्दनी रात सर्वथा नष्ट हो गई। प्रातः काल होने के कारण शत्रु पक्षी भी बोल रहे हैं, वियोगिनी

को रात्रि की समाप्ति जताने के लिये पक्षी कोलाहल कर रहे हैं, रात्रि सारी समाप्त हो गई है, प्रियतम अभी भी नहीं आया, इस कारण नायिका का धैर्य लुप्त होने लगा है, पक्षी कोलाहल करके उस आतुरता को और भी तीव्र करने लगे हैं, इसलिये पक्षियों को वैरी कहा है। देव कवि कहते हैं, आज तो वास्तव में बैरिन अर्थात् सौतिन के घर सचमुच ही सम्पत्ति चली गई. आज सौतिन के गहरे हो गये पति सारी रात्रि उसी के यहां रह गया। पूर्व दिशा की लाली की ओर ईर्ष्या या असूया से कहता है कि इस पूर्व दिशा ने सारी रात्रि चन्द्रोदय के द्वारा तरसा २ कर जो वियोगिनी का खून पिया है सो उसी कारण इस पिशाचिनी ने इस राक्षसी ने अपना मुँह लाल कर लिया है।

वास्तव में यह पद्य खण्डिता नायिका की उक्ति के रूप में प्रतीत होता है। खण्डिता नायिका वह होती है जो अपने प्रिय की प्रतीक्षा में शृंगार किये बैठी रहती है और नायक सारी रात किसी और स्त्री के घर बिता डाले, प्रातः काल होने पर वह घर आये। वह प्रतीक्षा में बैठी है, उधर रात्रि बीत चली है, चकवी रात्रि बीतती देख नाचने लगी है, चन्द्रमा फीका पड़ गया है, चान्दनी मिट गई है, पक्षी बोलने लग गये हैं, परन्तु अभी तक नायक घर नहीं आया है. ये सभी बातें उस नायिका के लिये दुःखद हो रही हैं, अतः उसे चकवी का नाचना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता प्यारे के बिना चन्द्रमा और उसकी चाँदन केवल वेदना और उत्कण्ठा को तीव्र करते थे, अतः वे भी यम के घर चले गये, परन्तु पक्षियों ने चहचहा कर रात्रि बीतने की सूचना दे दी है, अब तो नायिका को निश्चित हो गया है कि आज सौतिन के घर सम्पत्ति चली गई है, प्यारा आज उसीके घर चला गया है यही कारण है कि वह अभी तक नहीं पहुंचा, उसी समय पूर्व दिशा में जो अरुणोदय की लाली फूट पड़ती है, उस वियुक्ता को पूर्वदिशा चिढ़ाती सी प्रतीत होती है, अतः नायिका उसे रक्त पीने वाली पिशाचनी बताती है कि रातभर विरहिणी स्त्रियों का खून पी कर अब अपना लाल २ मुँह दिखाने आई है। इस पद्य में उत्प्रेक्षा,

पर्यायोक्त, रूपक और अनुमान अलंकार हैं। साथ ही असूया नामक संचारी भाव व्यंग्य है।

गुरुजन ... ... उफनायगो।

शुभ कर्म किये बिना सम्पूर्ण मनुष्य जन्म व्यर्थ चला गया. इस पर विरक्ति और खेद प्रकट करते हैं कि यह जन्म तो दूध की भांति अनजाने ही उफन गया, बीत गया. इसको जमाने के लिये गुरुजन रूपी जावन या जामन नहीं मिला, दूध को दही बनाना हो तो जमाने वाली दही की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु वह भी प्राप्य नहीं हुआ, जन्म को सफल करने, किसी उचित और न्याय मार्ग पर दृढ़ करने वाला गुरु का उपदेश रूपी जामन नहीं मिला, इस कारण दही दृढ़ अर्थात् कड़ा, ठीक जमा हुआ न हो सका. पक्ष में जीवन उचित पथ पर दृढ़ता से न बदल सका। पुन उसे भी कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान-रूप विवेक की मथानी से मथा नहीं जो कि मक्खन बनता, पक्ष में यह जानना कि कृत्याकृत्य के ज्ञान से भली प्रकार विचार भी न किया जोकि जीवन उचित पथ की ओर बढ़ता, मुक्ति खोजता, जब तक भोग-विलास रूपी मुक्ति अर्थात् खाना न छोड़ा, तब तक मुक्ति रूपी मक्खन कैसे निकल सकता है, जब तक जीवन को भोगों की ओर से विरक्त न कर लिया जाय तब तक मुक्ति या जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा नहीं हो सकता. उधर दही को भी यदि खाने से रोका जायगा, न खाकर पृथक सुरक्षित रक्खी जाय, तभी उससे मक्खन ठीक निकलाता है, दही खालेने पर किसे विलोया जायगा और मक्खन किसका बनेगा, प्रेम रूपी नेह अर्थात् चिकनाई के बिना सारा स्वाद धूल में मिल जायगा, भगवान् के प्रति प्रेम भाव रखे बिना जीवन का कुछ भी आनन्द प्राप्त न हो सकेगा, इस प्रकार वह जीवन रूपी दूध अनुपयोगी ही रह गया, वह बिलखते २ रोते पीटते किसी प्रकार बच गया कुमार्ग से बचा, अर्थात् रो पीट कर, बड़ी कष्ट साध्य अवस्था से कुमार्ग से बचकर विरक्ति की ओर बढ़ा, दूध भी तीव्राग्नि पर रखने से सहसा उफन जाता है तो शीघ्रता से उसे बचाते हैं, परन्तु ऐसी

हठात्मक विरक्ति से जड़ में कच्चा ही रह जाता है, अर्थात् मन वास्तव में सच्चे वैराग्य से तो रंगा जाता नहीं, हठात्मक प्रवृत्तियां उसे साधने में कच्चा ही रह जाता है, इस कारण वह सहसा विकृत हो जाता है, दूध भी सहसा तीक्ष्ण अग्नि से उफन तो जाता है, परन्तु पूर्व रूप से पकने न पाता, अब विकार दिखाते हैं, कुछ वह लोभ रूपी बर्तन में लग गया, कुछ क्रोध की आग में गर्म किया, काम की अग्नियें जल कर नः शान्त हो गया, बाद गया, दूध भी उफन कर या जल कर बाद में शीतल हो जाता है। उस उफनते, व्यर्थ नष्ट होते जीवन दुग्ध को क्रोध के कारण उग्र होते समय सहसा सहन शीलता गुण, क्षमा रूपी पानी के छींटों से उसे शान्त न किया, इस प्रकार यह जीवन दूध के समान व्यर्थ हो चला गया, व्यर्थ नष्ट हो गया। भाव यह है कि जैसे दूध को दही का जामन डालकर न जमाया जाय तो वह जमकर भी पतला सा ही रहता है। उस दशा में भली प्रकार मक्खन भी नहीं निकलता और थोड़ा बहुत निकल जाय तो उसमें स्वाद नहीं आता, वह प्रायः असावधानी में योंही नष्ट हो जाता है, तेज आँच में रखा जाय तो या तो सहसा उफन कर खिंड जाता है, कुछ बर्तन में लग जाता है, कुछ जल जाता है, यों सारा दूध ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार देव कवि कहते हैं मनुष्य जीवन की दशा है, किसी सद्गुरु के उपदेश बिना वह शुभ मार्ग की ओर अग्रसर नहीं होता, इस कारण भोग विलास में लीन रहनेसे मोक्ष प्राप्तिका अधिकारी नहीं होने पाता, वह काम क्रोध आदि में आसक्त रह कर व्यर्थ ही बीत जाता है।

विशेष—कविने इस पद्य में सांग रूपक बांधने का प्रयत्न किया है, परन्तु अधूरा छूट गया है। क्योंकि आगे 'दूध सो जनम' कह कर उपमा वाचक शब्द दे दिया है। उपमेय और उपमान के मध्य 'सो' वाचक शब्द उपमा को बताता है, परन्तु साधारण धर्म 'उफनायगो' दूध में संगत होने से रूपक का साधक है, प्रथम चरण में भी गुरुजन को जामन बनाया, दूध के पक्ष में तो दही का ठीक न जमना संगत

होता है परन्तु जीवन पक्ष में क्या अर्थ लिया जाय, इसका कोई संकेत नहीं किया गया है, इन्हीं त्रुटियों से इस में रूपक या उपमा कोई भी अलंकार सफल नहीं हो पाया है। इसे दोनों का सन्देह भी नहीं कहा जा सकता। दोनों अपुष्ट ही हैं।

एकै अभि..... प्रेम घर में।

प्रेम मार्ग की कठिनता पर प्रकाश डालते हैं। देव कवि कहते हैं कि मन की एक इच्छा ही सम्पूर्ण जड़ चेतनात्मक जगत् में लाखों प्रकार से दिखाई देती है। मन चाहा वस्तु के लिये सभी अनेक प्रकार के मनारथ कहते हैं, लम्बे २ संकल्प बाँधते हैं। सारा उसी इच्छा या प्रेम के व्यापार का खेल दिखाई देता है। जिससे मन रंग जाता है, अर्थात् जिससे मन मिल जाय, जिससे प्रेम हो जाय, उससे शरीर और मन भी रंग जाय, शरीर और मन दोनों की उसी प्रेम के आलम्बन से तन्मयता हो जानी चाहिये। हाथ में सचाई लेकर अर्थात् सत्य का आश्रय लेकर सच्ची रुचि भर कर सच्ची लगन से प्रकट होकर मन खोल कर उसकी याचना करें, उसकी प्राप्ति का उपाय करें, या सचाई के बल पर उस प्रेम भाव की खुल कर परीक्षा कर लें। प्रियतम के प्रति सत्य प्रेम का आश्रय लेकर पंचों या पंचायत के आगे चिंता में बैठ कर आग लगने पर भी न टलने वाली न घबड़ाने वाली पतिव्रता सती स्त्री की भांति पंचतत्वों या पंचतत्वात्मक शरीर को आँच लगने पर भी, अधिक से अधिक कष्ट पड़ने पर भी उस प्रेम मार्ग से न लौट जाय, प्रेम मार्ग से न टल जाय। अर्थात् संकट देख कर भी प्रेम मार्ग से न हटे। मैं प्रेम से कह रहा हूँ, कोई स्वामी इस बात को सुन कर ऐंठे नहीं, बुरा न माने यदि गहराई में घुस कर बैठो, यदि बड़े से बड़े कष्ट सहने को उद्यत हो तो प्रेम के घर में घुसो, अर्थात् आ पड़ने वाली आपत्तियों को झेलने को तैय्यार हो तभी प्रेम मार्ग की ओर बढ़ो। भाव यही है कि जब किसी से प्रेम हो जाय तो प्रेमी को चारों ओर प्रिय वस्तु ही दिखाई देने लगे, इस प्रकार की लगन हो जाय। उसके प्रेम में सचाई हो, उसका आश्रय लेकर वह प्रसन्नता से

प्रेम परीक्षा में डट जाय। उसके प्राणों पर भी संकट आ पड़े तो भी प्रेम से उसी प्रकार विमुख नहो जैसे पतिव्रता स्त्री पति के प्रति सत्य-प्रेम के बल पर भरी पंचायत में चिता पर बैठ कर आग लगने से घबड़ा कर भागती नहीं। इस प्रकार कठिन से कठिन संकट झेलने को प्रस्तुत होकर ही प्रेम मार्ग रखना चाहिये।

विशेष—प्राचीन काल में किसी स्त्री के सतीत्व के विषय में शंका होने पर पंचायत के संमुख इसकी परीक्षा होती थी, स्त्री उनके समक्ष जलती चिता पर बैटती थी, यदि वह पतिव्रता होती थी तो अपने पतिव्रत धर्म के बल पर जलती नहीं थी, यदि यह वास्तव में व्यभिचारिणी होती तो आग को न सह कर इधर उधर भागने लगती थी।

जिन जाको ... ... करि मरो।

अपने कृष्ण प्रेम की सर्वोपरिता प्रकट करते हैं। जिन्होंने वेद पढ़ लिये हैं, वे व्यर्थ ही विद्वान् बन जायें, कोई लाभ नहीं जिन्होंने लोक या लोकाचार को जान लिया, जिनका लोक और उसके आचार विचार पर ही विश्वास है, वे कोरी लकीर पीटते मर जांय, अर्थात् वे केवल लोक रीति ही निभाते रह जांयगे, उसे उन्हें कोई सफलता न मिलेगी, जिन्होंने तपस्या करनी ही जानी है जो कोरा तप करना जानते हैं, वे तीनों तपों से आधि दैविक, आध्यात्मिक, अधि भौतिक, तीनों कष्टोंसे जल २ कर खिन्न होकर मरें अर्थात् थक जांय। पंचाग्नि साध २ कर समाधि लागाते रहें, अर्थात् पहिले तीनों प्रकार के सन्तापों से सताये हों ही पुनः पंचाग्नि तप करके और कष्ट भुगतें तथा प्राणायाम लगा कर मनको एकाग्र ही करते रहें। जिन्होंने योग विद्या जान ली होवे योगी भी युग युग तक बने रहे वे भी अपना योग साधते रहें, उसे भी काई फल न होगा, जिन्होंने आत्म ज्योति जान ली, वे उस प्रकाश से हो जल मरें, उसी में ध्यान लगाये रहें। योगियों और प्राणा याम साध कर समाधि लगाने वालों को एकाग्रता से एक अखण्ड प्रकाश के दर्शन करने होते हैं जिसे वे ब्रह्म साक्षात्कार के नाम से सम्बोधित

करते हैं। देव कवि कहते हैं कि हे नन्दकुमार! मैं तो अब तेरी दासी होगई हूँ। कोई मेरी करोड़ों बार हंसी क्यों न करते फिरें, अथवा करोड़ों भी मेरी हंसी क्यों न करलें, आपकी दासी बनी ही रहूँगी।

विशेष — तप करने वाले व्यक्ति जेष्ठ के मास में अपने चारों ओर अग्नि जला कर खुली धूप में बैठ जाते हैं, पांचवां अग्नि ऊपर सूर्य रहता है। इन पाँचो की तपन शरीर पर सहनी पड़ती है, इसी कारण इस को पंचाग्नि तप कहते हैं।

गांठिहुँ त ... ... न खोवे।

प्रेम बहुत सोच विचार कर करना चाहिये, इस मन रूपी माणिक को योंही किसी को न सौंप देना चाहिये, इस अभिप्राय को लेकर कहते हैं। प्रायः रत्न आदि धन सँभाल कर रखे गये तो भी गांठ से गिर कर चले जाते हैं परन्तु उनके मिलने की आशा रहती है, वे गिर कर पुनः मिल जाते हैं। पर यह मन रूपी रत्न एक बार खोकर पुनः हाथ नहीं आता चाहे सारा जगत् क्यों न खोजता फिरे। इस कारण यह है कि स्थान २ पर ठग खड़े हैं जो अवसर पाते ही लूट लेते हैं, मन को लुभाने वाले सांसारिक प्रलोभनों को ही ठग कहा हैं. नगरवासी अर्थात् चतुर व्यक्ति जिन के वास्ते न हँसना न रोना। अर्थात् चतुर व्यक्ति भी उन के विषय में निश्चित धारणा नहीं बना सकता। इस लिये ये सबतो मन माणिक्य पाने के पात्र नहीं हैं। अपनी सम्पत्ति में पात्र बताते हैं कि मन माणिक्य उसी को सौंपा जा सकता है जोकि अपने मन का करे, जो अपना चाहा करे, हाथ ही सम्पूर्ण कलंक रूपी कीचड़ को धुला दे, बुद्धि रूपी बधू कर या बुद्धि को बधू या अनुकूल बना कर अपना मनरूपी माणिक्य उसको सौंप दो। योंही धोखे में किसी सांसारिक विषय में इसे लुटा न दो।

भाव यह है कि लोग सांसारिक जीवों में अपना मन आसक्त किये रहते हैं, अनेक प्रलोभन उन्हे आकृष्ट करने को उद्यत रहते हैं, इस लिये बड़ी बुद्धिमत्ता से कार्य करना चाहिये। प्रेम लगाये तो ऐसे व्यक्ति से जो किसी प्रकार के बन्धनों में न हो, सब प्रकार के दोषों को

अपनी संगति से दूर करने में समर्थ हो। ऐसे सज्जन की परीक्षा बुद्धि की सहायता से करनी चाहिये। मन को माणिक्य इस लिए कहा है कि वह मूल्यवान् पदार्थ है, मन भी मनुष्य के कल्याण और विनाश या पतन का मूल कारण है जैसे कहा है 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो' मन यदि सुमार्ग में और सुजनो के गुणों के प्रति लान किया जाय तो कल्याण कर देता है, यदि कुमार्ग और कुसंग की ओर ही उसकी आसक्ति रहे तो निश्चिय दुर्गति का मूल हो जाता है। इस लिये उसे माणिक्य की भांति सम्भालना चाहिये। माणिक्य को गांठ में रखो तो गिरजाने का डर रहता है। पर कभी २ उस के पुनः मिलने की सम्भावना भी रहती है, किन्तु मन ऐसा है कि कभी यदि गिर गया या पतन की ओर झुक गया तो उसे पुनः सम्भालना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होता हैं, माणिक्य को हर एक के पास बनती भी नहीं रखा जा सकता क्यों कि बहुत से लोग ठग होते हैं। वे लेकर उसे हजम कर जांये तो कुछ कहा भी नहीं जा सकता। लोग यही कहेंगे कि ऐसे लोगों के पास दिया क्यों था? इसी प्रकार प्रलोभन मन को ठगते हैं जैसे अपनी पत्नी के पास उसे सौंप कर सुरक्षित रखा जा सकता है इसी प्रकार मन को भी बुद्धि के अनुकूल रखना आवश्यक है।

इस पद्य में रूपक, अथ श्लेष, व्यतिरेक अलंकार है।

देवघन ... ... ढहि परयो।

देव कवि कहते हैं कि बादल के समान श्याम श्रीकृष्ण रूपी श्याम घन अर्थात् नीले बादल ने अखण्ड प्रवाह से, लगातार वृष्टि से इस प्रकार रस की वृष्टि की कि उसका पूर्ण और अपार प्रेमरूप जल का प्रवाह सहा न जा सका, प्रवाह का वेग न झिला! परिणाम यह हुआ कि नेहनदी में बाढ़ आ गई, उसमें विषयरूपी परिवार या भाई बन्धु तो डूब गये, मद या मान और मोह या ममता रूपी पुत्र दब गये और उनकी यह दशा देख कर अहंकार रूपी मित्र भी मर कर मुरझा गया और भूमि पर गिर पड़ा। माया रूपी दासी देहली पर भी न रह

सकी, वह आशा और तृष्णा रूपी बहू-बेटियों को लेकर भाग चलीं, इस प्रकार जब स्नेह रूपी नदी के किनारे मन रूपी मन्दिर ढह गया तो सब कुछ उसकी बाढ़ में बह कर या दब कर नष्ट हो गया, पर उस सर्वनाश को देखा भी नहीं गया। साधे जाकर बन में निवास कर लिया।

भाव यह है कि जिस प्रकार अति वृष्टि से नदी में बाढ़ आजाती है, उस के किनारे के मकान गिर पड़ते हैं, परिवार के कुछ व्यक्ति बह जाते हैं, कुछ डूब जाते हैं, और कुछ मकान के मलवे में दब जाते हैं, अगर प्रयत्न करके कुछ स्त्रियां बच भी जांय तो वह बन में जाकर आश्रय लेती हैं। इसी प्रकार हृदय में श्री कृष्ण के प्रति प्रेम भाव उमड़ते ही उसकी विषय वासना, कामादि विकार सब नष्ट हो जाते हैं। इसी पद्य में अति वृष्टि से नदी में आने वाली बाढ़ और उस से होने वाले परिवार व भवन के विध्वन्स का अच्छा आकर्षक वर्णन है। इस में एकदेशविवर्ती सांग रूपक है। 'घन स्याम रस' शब्दों में श्लेष और रूपक का एक वाचकानु प्रवेश संकर हैं।

औचक ... ... स्याम रंग में।

देव कवि कृष्ण प्रेम की तन्मयता का सुन्दर रूप दिखाते हैं। अचानक ही कालिमा के अथाह समुद्र का ऐसा प्रवाह उमड़ा कि उसमें सहसा तीनों लोक डूब गये। जिस प्रकार काले कागज में काली स्याही से अक्षर लिखे जांय तो उन्हें पृथक २ कौन पढ़ सकता है, इसी प्रकार उसे कालिमा के प्रवाह में तात्पर्य कृष्ण प्रेम से है, नित्य भंग में या भांग के नशे में अर्थात नशे की सी मस्ती में मन नाचा करता है। पुनः उपमा देते हैं कि आँखों के आगे तो अँधेरा छाया हुआ हो, अमावस्या की रात्रि हो उसमें जामुन के रस की बूंदे यमुना जल की लहरों में पड़े तो कोई भी लक्षित नहीं कर सकता। देव कवि कहते हैं कि इसी प्रकार मेरा मन भी श्याम सुन्दर के रंग अर्थात् श्री कृष्ण के प्रेम में रंग कर श्याम रंग या काला ही हो गया (श्याममय हो गया) वह किसी भी पुकार से मेरे काम का न रहा। भाव यह है कि जैसे काले कागज पर

कुछ अक्षर काली स्याही से लिखे जांय तो पढ़े नहीं जा सकते, कोरा काला कागज ही प्रतीत होगा। इसी प्रकार श्री कृष्ण के प्रेम रस के प्रवाह में डूबा हुआ त्रैलोक्य प्रतीत ही नहीं होता कि कहां स्वर्ग है, कहाँ मृत्यु लोक है और कहां पताल है, सभी श्याममय दीखते हैं। तथा जैसे आमावस्या की अँधेरी रात में यमुना जल में जामुन के फलों का रस मिलता लक्षित नहीं हो सकता, क्यों कि यमुना का जल भी नीला जामुन रस भी नीला और आमावस्या की रात्रि में अँधेरा छाया ही रहता है। इसी प्रकार मन भी श्री कृष्ण के प्रेम में रंग कर कृष्णमय ही होगया है, वह सांसारिक कार्यों के योग्य नहीं रहा है। इस पद्य के प्रथम चरण में रूपकातिशयोक्ति है, दूसरे चरण में सामान्य अलंकार है, प्रथम द्वितीय में जैसे तैसे का विम्ब प्रतिविम्ब होने से वाक्यान्थोपमा भी है। प्रथम में इसी प्रकार काले रंग में तीनों लोक डूब जाने से मीलित अलंकार भी है। दूसरे में साथ ही काकुवक्रोक्ति, काव्य लिंग है। तृतीय में पुनः सामान्य तुल्य योगिता है और चतुर्थ के साथ मिलाकर वाक्यार्थोपमा भी है। चतुर्थ में श्याम रंग शब्द श्लिष्ट है। श्याम अर्थात कृष्ण का रंग अर्थात् प्रेम और श्याम रंग अर्थात् काला रंग ये दो अर्थ लिये जाते हैं। मन के श्याम रंग में डूबकर काला हो जाने से तद्गुण अलंकार हो गया हैं, काव्य कारण भाव होने से काव्यलिंग भी हैं। भिन्न २ अर्थों में श्याम रंग शब्द की आवृत्ति होने से यमक है। कृष्ण प्रेम जन्य तन्मयता से सम्पूर्ण जगत् का श्याम रूप दीखना और मन का सर्वथा श्याम रूप होना रूप व्यंग अर्थ इसमें विशेष चमत्कार का आधान कर देता है इस पद्य का चमत्कार बिहारी के

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहि कोय।
ज्यों ज्यो डूबै स्याम रंग त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥

के समक्ष ही है, एक अंश में तो बढ़ गया प्रतीत होता है, क्यों कि बिहारी का मन श्याम रंग में डूब कर अपनी कालिमा के प्रक्षालन का ही प्रयत्न करता रह गया उस में उस प्रकार भेदबुद्धि बनी ही रही, पर देव का मन श्याम रंग में डूब कर तन्मय ही हो गया। वास्तव में

बिहारी के दोहे का चमत्कार उसके विरोध पक्ष को लेकर बढ़ा है, देव के पद्य का चमत्कार तन्मयता को लेकर विशेषता रखता है। वैसे दोनों ही महाकवि हैं, किसे किससे घट बढ़ कहा जाय।

प्रेम पयोधि ... ... रे मन।

अरे मन गहरे प्रेम रूपी समुद्र में पड़ा हुआ तू अभिमान के झाग पकड़ रहा है, समुद्र में डूबता हुआ यदि बचाव के लिए झागों का सहारा लेतो क्या लाभ होगा। अरे बहरे, जो कि बार २ समझाने पर भी उपदेश को न सुने या न माने वह बहरा ही है, क्रोध की लहरों में बहता हुआ अब पछता २ कर सहायता के लिये क्यों पुकारता है? अरे मन तू लज्जा रूपी जहाज से कूद पड़, तू तो मुख बन्द किये पड़ा है, अभी भी रुक जा, प्रेम भी तू ही जोड़ता है तोड़ता भी तू ही है, इस लिये अपने अन्याय या अनुचित करनी को तू ही सह। प्रेम के मार्ग में पड़े तो अभिमान, क्रोध और लज्जा का त्याग भी करना पड़ता है, इसलिये प्रेम मार्ग पर चलना है तो उसकी मर्यादा का पालन कर। अथवा मन को कहते हैं कि हे मन तू कभी तो प्रेम करता है पुनः उस में अभिमान करता है, प्रेम में अभिमान का क्या काम, वहां तो आत्म-समर्पण और एक आत्मता की आवश्यकता रहती है। पुनः क्रोध करता है, समुद्र के भीतर घुसकर लहरों से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

वास्तव में यह उक्ति किसी कलहान्तरिता नायिका की प्रतीत होती है, नायिका प्रेम से आकुल तो है परन्तु रूप गर्विता होने से वह नायक का किसी और के साथ प्रेम नहीं देख सकती। जब वह आकर मनाता है, तो नायिका क्रोध में भरी हुई उसे फटकार देती है, वह विवश होकर लौट जाता है, उसके जाने पर नायिका भी उसके वियोग को नहीं सह पाती और पछताती है। तब मन को कोसती है कि क्यों तू प्रेम के मार्ग में कूदा और अब अभिमान भी करता है, प्रेम रूपी समुद्र में पहले तो बिना विचारे कूद पड़ा, अब अभिमान रूपी झाग का सहारा लेकर क्या बचने की आशा करता है? अर्थात् तू अपने आपे में तो है ही नहीं जो अभिमान करे, इस लिये उसके आधार पर

तू बच ही नहीं सकता। कारण यह है कि नायिका उसके सम्मुख अपने मान को बनाये रखने में असमर्थ हो जाती है। अब उस मन को कोसती है कि क्रोध की लहरों में बहकर अब पछता कर क्यों पुकारता है, उस समय प्रियतम ने जो अनुनय-विनय की, वह तूने एक न सुनी, अब वह भी चला गया है, तो तू अब पछताकर सहायता के लिये क्यों पुकारता है, अर्थात् तेरा ही अपराध है। तभी नायिका विचार करती है कि जब उसे रुष्ट कर दिया है तो वह तो आयेगा नहीं, इस लिये चलो स्वयं ही मान छोड़ कर उसके पास चलूँ परन्तु सहसा मन पर लज्जा का प्रभाव आ चढ़ता है कि अभिसारिका बन कर स्वयं कैसे जायँ। परन्तु इस प्रकार लज्जा करने से भी कार्य नहीं चलता। इसी लिये कहा कि यदि प्रेम निभाना है तो इस लज्जा के जहाज से कूद पड़, क्योंकि प्रेम समुद्र में डूबने से बचने के लिये लज्जा रूपी जहाज का आश्रय लिया है किन्तु इस प्रकार मुख बन्द करके बैठे रहने से भी तो निर्वाह नहीं होगा, यदि लज्जा ही करनी थी तो प्रेम की ओर क्यों बढ़ा था, अब प्रेम निभाना है और यदि इस आतुरता से छुटकारा पाना है तो इस लज्जा को छोड़ दे और चल उसके द्वार पर, यह सब तेरी ही करतूत है तूने ही तो प्रथम प्रेम जोड़ा, यदि जोड़ लिया था तो निभाना चाहिये था, परन्तु अभिमान और क्रोध करके तैंने उसे भी रुसा दिया। इस लिये अब जो कुछ तैंने किया है, तू ही भुगत। और कोई रक्षक नहीं है न कोई उपाय है।

सांग रूपक और और 'बहिरे, बहिरे' इतने पदों में यमक अलंकार है।

तेरो कह्यो ... ... एकै बार।

देव कवि कहते हैं कि अरे मन, तेरा कहना कर करके जीव जलता रह गया है, मैं पैरों में पड़ २ कर हार गई, फिर भी तैंने मुझे नहीं सँभाला। जिस समय प्यारे को देखो, तब तो तूने पलक तक न लगाई, उधर देखता ही रह गया। चटपट चंचल होने वाले, तू ने तनिक भी मुझे चैन न पड़ने दी। भला ऐसे बे प्रीत से प्रेम कर के मैं बंधवा दी

मेरा भाग्य भी निराश्रय होकर विपत्ति या विघ्न रूपी समुद्र में डूब गया है अर्थात् भाग्य भी अनुकूल नहीं है कि उसे मेरी ओर आकृष्ट कर दे। यह सब विपति तैने ही बुलाई है, तैने मुझे बड़े दुखः दिये हैं, यही चाहती हूँ कि इन पलकों के किवाड़ों में तुझे एक बार ही मूंद के डाल दूं। जो अधिक चंचल होता है उसे यही दण्ड दिया जाता है कि बाँध कर गेर दिया जाय, मन की केद यही हो सकती है कि एक बार आँख बन्द करके पुनः न खोली जाय।

भाव यही है कि मन के कारण आत्मा को आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तपों से जलना पड़ता है, जो मन के पीछे २ दौड़ता है, उसे शक्ति नहीं मिलती। उसे कृष्ण प्रेम में लगा कर सदा के लिए आंखे मूँद ली जांय तो मन फिर दौड़ ही न पाये।

ऐसो जो हौं ... ... वोरतो।

हे मन! यदि मैं ऐसा जानता कि तू विषयों के साथ जायेगा तो मैं तेरे हाथ पांव तोड़ डालता। भला मैं आज तक राजाओं की नहीं सुन २ कर भी आशा और प्रेम से उन के मुखों को और क्यों ताकता फिरता। अरे चंचल! मैं तुझे चलने भी नहीं देता, अचल करके चेतावनी रूपी चाबुकों या कोड़ों से मार २ कर तेरा मुंह मोड़ देता, विषयों की ओर से फेर देता। तेरे गले में प्रेम का भारी पत्थर बाँध कर तुझे राधा बल्लभ श्रीकृष्ण के यशोगान रूपी समुद्र में डुबा देता। भाव यह है कि सांसारिक विषयों की ओर दौड़ने से मनको रोकने के लिए श्री-कृष्ण प्रेम की ओर उसे लगा देना ही सर्वोत्तम उपाय है, इसी के कारण मनुष्य को धन की आशा लेकर धनिकों के पास भटकना पड़ता है, उनकी फटकारें सुननी पड़ती हैं। रूपक अलंकार है।

घर में धाय ... ... भई मेरी

ये आंखे प्रेम की धारा में दौड़ कर निराश्रय ही घुस पड़ी परन्तु उस में जाकर फस गई, आंधी में निकल भी न सकीं। हाय सखी, वह मतवाली होकर सहसा गहराई में गिर गई, गहरेतल में डूब गई, अर्थात् उनपर प्रेम का रंग बहुत ही गहरा चढ़ गया कि पकड़ कर उस ओर से

लौटाने से भी ये पुनः नहीं लौट सकी। देव कवि कहते हैं कि अपना इस में कोई वश नहीं है, आनन्द के लोभ में प्यारे को देख कर उसकी ही दासी हो गई, उनकी पलकें या पंख शीघ्र ही प्यारे के रूप में डूब गई, मेरीं आंखें इस प्रकार शहद की मक्खियाँ बन गई भाव यही है कि श्री कृष्ण का रूप देखकर आंखें उधर लगी हीं रह गई हट नहीं सकी। इस पद्य में पानी के लिए नदीपर गये परन्तु धार मे बहते किसी व्यक्ति का बोध होने से समासोक्ति अलंकार है, धार और निरधार में विरोधा भास और यमक का एक वाचकानु प्रवेश शक है, 'रसलालच' में रस शब्द आनन्द और जल का वाचक होने से श्लेष है, 'धार' शब्द रूप का अप्रस्तुत होने से रूपकाति शयोक्ति है। चतुर्थ चरण में रूपक और तृतीय चरण मे काव्यलिंग अलंकार हैं।

कालिय काल··· ··· ··· ··· ··· ··· ···तुम्हें विनु।

श्रीकृष्ण के कालीदह में कूद जाने पर गोपियां विकल होकर विलाप कर रही हैं। कालिय नाग साक्षात् कालरूप है, उसकी विष की ज्वाला बड़ी भयानक है, उसकी जलन से कालीदह का जलसमूह रात दिन जलता रहता है। उस जल के ऊपर उड़ने वाले और नीचे रहने वाले पक्षी व जलचर जीव जल जाते हैं, तीर के वृक्ष भी जहरीली लपटों से जलकर पत्र विहीन हो जाते हैं। प्यारे श्याम सुन्दर उस महाभयानक नाग के फण रूपी फन्दों में जा फंसे हैं परन्तु अभी तक नही छूट सके हैं, हे ब्रज के स्वामी, हमें आकर सनाथ अर्थात् रक्षक वाली या स्वामी वाली कीजिये। हे स्वामी, आपके बिना हम अनाथ अर्थात् असहाय या अरक्षित हुई जा रही हैं। इस पद्य में 'ब्रजनाथ' शब्द और 'नाथ' शब्द विशेष महत्व पूर्ण हैं। कृष्ण क्योंकि ब्रज के नाथ हैं, इसलिये गोपियाँ उन्हीं के सहारे सनाथ हो सकती हैं, पुनः नाथ के रहते अनाथ होना बड़े दुःख का विषय होगा। इसलिये श्री कृष्ण का कालीदह से बाहर निकलना शीघ्र ही होना आवश्यक है, 'ब्रजनाथ' और 'नाथ' शब्दों में परिकर अलंकार है, 'फन फांसिन' में रूपक है, नाथ २ शब्दों में लाटानु प्रास है।

देव में सोस ....करि राख्यो।

मैंने अपने प्यारे श्याम सुन्दर का श्याम रंग अपने शृंगार की सामग्री के रूप में नख शिख से धारण किया है। शिर पर बड़े स्नेह से स्नेह अर्थात् तेल के रूप में बरता, मस्तक में कस्तूरी के तिलक के रूप में धारण किया, अपनी चोली में चोवा या अंगराग के रूप में अपनाया, कुंचुकी से तात्पर्य लक्षणा से स्तनों से तात्पर्य है, उबटने के रूप में तुपड़ा है, मखतूल के रूप में उसे गहनों में गूँथा, मूर्तिमान शृंगार रस के रूप में शृंगार करके उसका उपभोग किया, इसी प्रकार उस सांवलिया के सांवरे रूपका मैंने नेत्रोंमें कज्जलके रूप में रखा। इस पद्य में विशेष और अपन्हुति अलंकार हैं। अपह्नव अर्थ है।

रैन लाई ....सरदागम माई।

जिसे वे रात कहते हैं, वहां दिन लगता है, चन्द्रमा, सूर्य लगता है, चाँदनी अत्यन्त जहरीली सी तीक्ष्ण धूप हो रही है, फूलों की शैय्या और सुगन्धित वस्त्रों से काँटे से चुभते हैं और शरीर रुई सा जल रहा है। जैसे रुई में आग लगती है, ऐसे ही सुगन्धित वस्त्रों से आग सी उठती है। बाहर भीतर की हरी भूमि पर भी नहीं रहा जाता, वह भी तप रही है, इसलिये मैं ही भ्रममें हूँ या सभी जोकि ग्रीष्म ऋतु को कहते हैं कि शरद् ऋतु आई है। यह पूछने आई हूँ। भाव यह है कि कोई विरहिणी पूछ रही है कि लोग कहते हैं शरद् ऋतु का आरम्भ हो गया है, पर मुझे तो ग्रीष्म ऋतु आई दिखाई देती है। क्योंकि रात दिन लगती है, चन्द्रमा सूर्य हो गया है, वह भी सन्ताप-कर है, चान्दनी दोपहर की जहरीली धूप बनी है, फूलों के बिछौनों में कांटे चुभते हैं, सुगन्धित रेशमी वस्त्रों से शरीर जल रहा है घर के भीतर की हो या बाहर की, पर इस पर तो रहना भी दुष्कर हो गया है। इसलिये भला मैं ही धोखे में ही पड़ी हूँ या ये सब लोग ही चक्कर में पड़े भांग खा रहे हैं। इस पद्य में विरोधाभास, भ्रम, सन्देह, उपमा और क्रम अलंकार है।

बरुनी बध ....आंखियां।

वियोगिनी की आंखों को जोगन के रूप में वर्णित करते हैं, ये

वियोगिनी की आँखें जोगन हो बैठे हैं, वरुणी अर्थात् आंखों का आच्छादन रूपी बाघम्बर लिये, ऊपर नीचे की दोनों पलकें गूदड़ी या झोली हैं। आँखों के दोनों कोने लाल वस्त्र हैं, समझिये कि वही उन्होंने भगवाँ वस्त्र पहन लिये हैं। वे सदा आँसू रूपी पानी में डूबी रहती हैं, योगीलोग भी गले तक पानी में बैठे उसमें समाधि लगाते हैं, आँखें आँसुओं में डूबी रहती हैं। रात दिन जागरण करती हैं, योगी लोग सोते नहीं, सोने के समय वे समाधि लगा कर बैठे रहते हैं, आँखें भी रात दिन खुली रहतीं हैं, उनमें निद्रा का स्पर्श ही नहीं होता, वे विरहाग्नि से जलती रहती हैं, जोगनें धूनीं लगाकर अग्नि के समीप बैठती हैं, उस अग्नि का, विरहानल का धुआँ भौंहों को समझना चाहिये, आँसुवों की बनी स्फटिकमणि की माला है, आँखों में छाई लाल रेखा योगनों की पाग है, ये अकेली होगई हैं, इन्होंने साथ की सहेलियां त्याग दी हैं, योगनें जगत् का संग त्याग देती हैं, आँखें भी अन्य वस्तुओं से सर्वथा विरक्त हो गई हैं। देव कवि कहते हैं हे भगवान् ! अपने दर्शन देकर इन वियोगिनी की आँखों को संयोगिनी कीजिये। इस पद्य में समस्तवस्तुविषयक रूपक और श्लेष हैं।

कंत बिन ... ... दहकन।

विरह के कारण सुख दायक पदार्थ भी दुःख दायक हो गये हैं। क्या कहें, प्यारे पति के बिना बसन्त के दिन काल या मृत्यु के दिन से लगते हैं, बसन्त ऋतु में चलने वाली मन्द, सुगन्ध और शीतल मलय पर्वत की दक्षिण पवन जोर से चलती हुई तीर सी चुभती है, चन्दन और कपूर अर्थात् कपूर मिश्रित चन्दन का लेप सारण पर तीखे किये लोहे के समान तीक्ष्ण और दाहक लगता है, भाले का फल सान पर चढ़ा देने पर बहुत तीखा हो जाता है। कस्तूरी की सुगन्ध अत्यन्त खेद जताती हुई चारों ओर फैल रही है। इत्र फुलैल फांसी जैसे खटकते हैं और गुलाब का फूल कांटे के समान चुभता है, अगर का लेप बिजली के समान दाहक है, इसी प्रकार चोवा रस भी दुःख दायक

हो रहा है, केसर के रस के स्पर्श से अंग २ में आग सी उठती है, रेशम के वस्त्र जलते से प्रतीत होते हैं और गुलाल धधक रहे हैं। विरुद्ध कार्य करने के कारण विभावना और विरुद्ध पदार्थ होने से विरोधाभास अलंकार हैं। 'से' के प्रयोग से भ्रम और उत्प्रेक्षा भी हैं।

सुनि कैं धुनि··· ··· ··· ·· ··· ··· ··· ···भूकनि सों।

उद्दीपन विभाव का वर्णन है। हे सखी, चातक और मोर की ध्वनि तथा चारों ओर होती कोयलों की कूक सुन २ श्रीकृष्ण बाग में अचूक प्रभाव वाले रागनियां सुन कर अत्यन्त प्रेम में भरे हुए हैं, आज इन उद्दीपनों के कारण श्रीकृष्ण बाग में उत्कण्ठित हुए बैठे हैं, इस समय उनका हृदय प्रेम के प्रभाव से बहुत ही उत्कण्ठा-पूर्ण है। आकाश में नवीन नीले २ मेघों की उमड़ी हुई घटा चारों ओर से घिर आई है बन की भूमि पत्तों और घास से छा गई है, वह कण्टकित सी हो रही है, हरी २ लतायें प्रफुल्लित होकर हिल रही हैं, वायु के झोंके खा २ कर नीचे की ओर झुकी जा रही हैं। श्रीकृष्ण का बाग में अनुरक्त होकर बैठना, सखी का अपनी सहेली या नायिका को इस बात की सूचना देना नायिका को संकेत स्थान की ओर आने के लिये आमन्त्रण की व्यञ्जना करता है बाग में मोर, चातक आदि की ध्वनि और स्वयं उपवन का स्थान ये हेतु उस भूमि को विहार के योग्य ध्वनित करते हैं, आकाश में नीले २ बादलों की घटा का उमड़ना तथा वनभूमि का पत्तों और घास से छाया होना, वहाँ की रमणीयता द्वारा नायिका को भी संकेत स्थल की ओर चलने के लिये उत्सुक करता है, उसके लिये उद्दीपन का कार्य कर रहा है, इसी के साथ २ आकाश में बादलों की नीली घटा का उमड़ना सूचित करता कि इस समय सब लोग घर की ओर चले गये होंगे, इस वृष्टि की संभावना से बाग में किसी और के आने की सम्भावना भी नहीं है, अतः एकान्त का स्थल होने से विहार में किसी प्रकार का विघ्न पड़ने की संभावना नहीं है। पत्तों और घास की बहुलता छिपने लायक स्थान

की अभिव्यक्ति करती है, लताओं का रंग राते हुए कांपना काम जन्य वेपथु या कम्प नामक सात्विक भाव की ओर समीर के झोकों से उनका झुक जाना लिंग बल से अपना मान छोड़ कर प्रिय से लिपटना रूप अर्थ की व्यञ्जना करता है, इससे भी ध्वनि निकलती है कि इस समय लतायें भी अनुराग में भरी हुईं अपना मान छोड़ कर उत्कण्ठा युक्त हो रही हैं, पुनः तुझे तो प्रियतम का संकेत निमन्त्रण मिल चुका है, नायक संकेत स्थल पर स्वयं उत्सुक होकर प्रतीक्षा कर रहा है, पुनः वंचना का कोई भय नहीं है, तू भी अपने आपको संभाल नहीं पा रही है, सम्पूर्ण प्रकृति इस समय अवसर के अनुकूल है, लता तक अनुराग में भरी हुई हैं, ऐसे समय में तुझे अवश्य नायक के समीप चलना चाहिये। इस प्रकार अभिधामूला आर्थी व्यंजना का यहां पर पूर्ण चमत्कार है।

कोऊ कहौ ... ... पै वारी हौं।

कोई मुझे कुलटा या व्यभिचारिणी कहे, 'कुलं कुलं प्रत्यटति' अर्थात् घर २ में जो स्त्री घूमती हो, उसे कुलटा कहा जाता है। कोई मुझे अच्छे कुल की कह कर लज्जित करना चाहे, अर्थात् कोई कहता है 'अरे वह तो व्यभिचारिणी है ही, उसका क्या ठिकाना' कोई कहता है 'वह तो अच्छे कुल की लड़की है, फिर कैसे इतनी गिर गई,' अथवा कोई मुझे कहता है 'उँह, अरे है तो वह उसी नीचे कुल की, ऐसा भला क्यों न करती, तो इस प्रकार कहा करें, कोई भिखारिन कहे या खोटी नारी कहे तो मैं सब कुछ मान लेती हूँ! अरे मनुष्य लोक तो कैसा, वह तो रहा, मैंने तो परलोक और दूसरे वैकुण्ठ आदि लोकों की भी मर्यादा छोड़ दी है, सम्पूर्ण संसार की मर्यादा, सामाजिक नियम रेखा से मैं बाहर हूँ, संसार अपनी लकीर पीटता रहे, मुझे उससे कुछ नहीं लेना है, न मुझे उसके सामाजिक आचार विचार की चिन्ता, नाही उसके द्वारा किये गये अपवाद या निन्दा का डर कोई कुछ कहता फिरे, मैं अपने निश्चय पर अटल हूँ। रही आगे सामाजिक या परिवारिक बहिष्कार की चिन्ता, उसका भी मुझे कोई भय नहीं, चाहे मेरा शरीर छूट जाय, लोग क्रोध में मेरी हत्या कर डालें, मेरा मन मेरा साथ छोड़ दे, चाहे

मेरे पिता, माता आदि गुरुजन भी मुझे त्याग दें, इनसे भी बढ़ कर मेरे प्राण भी क्यों न चले जायं, पर मैं अपनी टेक या अपने प्रण या निश्चय से नहीं टल सकती। मैं तो केवल वृन्दावन में झलक दिखाने वाली, बनवारी वनमाली की पीताम्बर धारिणी उसी सुन्दर मूर्ति पर न्योछावर हूँ। दृढ़ता का अद्भुत उदाहरण है। प्रेम भाव की शुद्धता, अचलता और अपरिहार्यता की सूचना ध्वनित होती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भरित नेह ... ... मन मोर।

जो नित्य ही प्रेम रूप स्वच्छ जल से पूर्ण रहता है, बड़ी मात्रा में सुन्दर रस या जल बरसाता है, जिसे देख मेरा मन रूपी मोर नाच उठता है वह कोई अद्भुत मेघ सब प्रकार से उत्कृष्ट है, सर्व श्रेष्ठ ऐसा कहने से उसके प्रति आदर भाव प्रकट होता है, उस से नमस्कार का अनुमान होता है और अन्त में बोध होता है कि उसको प्रणाम करता है। इस दोहे में श्री कृष्ण को नमस्कार किया गया है। उपमान 'घन, का उन में अध्यवसान किया है, 'कोऊ, कहने से उनका बोध व्यंग्य न रह सकते हैं परन्तु चमत्कार अवश्य हो आया है। इसी लिए प्रथन चरण में स्नेह रूप नव जल से भरा ऐसा विशेषण दिया है। द्वितीय चरण में 'सुरस, शब्द श्लिष्ट है, इस लिये जल के साथ रस का अर्थ आनन्द लिया जायगा जो कि श्री कृष्ण के पक्ष में संगत होगा इसी प्रकार अध्यवसान से प्रस्तुत अर्थ बना कि सदा उज्वल प्रेम से पूर्ण रहने वाले और आनन्दघन श्री कृष्ण की जय हो, जिन्हे देख कर मन प्रसन्न हो जाता है, रूपकांति शयोक्ति से इसी अर्थ को चमत्कारपूर्ण कर दिया गया है। अतिशयोक्ति की पूर्णता के लिए नेह नवनीर और 'सुरस के साथ 'मनमोर, ये रूपक दिये गये हैं, इन्हीं की सहायता से श्री कृष्ण रूप अर्थ प्रकट होता है। प्रथम चरण से श्याम सुन्दर, दूसरे चरण से आनन्द घन और तृतीय से श्री कृष्ण का बोध होता है।

जेहि लहि ... ... यह दोय।

जिसे पाकर मन में और कुछ पाने की आशा और अभिलासा नहीं

रहती, जगत् को पवित्र करने वाले प्रेम शब्द के 'प्र' और 'म' ये दो वर्ण सर्व श्रेष्ठ हैं।

हृदय में जब किसी के प्रति प्रेम भाव हो जाता है तो प्रेमी की आशा और अभिलाषा सब उस आलम्बन में केन्द्रित हो जाती हैं, उसे किसी और वस्तु की इच्छा नहीं रहती। इस लिये सब ओर से निःस्पृह कर देने वाले प्रेम को सर्व श्रेष्ठ बताया है।

चन्द मिटे ... ... अविचल प्रेम।

चाहें चन्द्रमा मिट जाय, चाहे सूर्य मिट जाय, सम्पूर्ण संसार के नियम, प्रकृति नियमित व्यवहार समाप्त हो जांय परन्तु श्री हरिश्चन्द्र का यह अटल प्रेम नहीं मिट सकता भाव यह है कि चन्द्र और सूर्य सृष्टि के सनातन तत्व हैं, प्रकृति की शक्ति जागृत रूप हैं, सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य व्यापार प्रकृति के बल से चलते हैं, वे कभी नहीं रुक सकते, इसलिये इन असम्भव बातों का उल्लेख कर के भी कवि ने प्रेम की उनकी नित्यता और यथार्थता से अधिकता प्रकट की है, जिसका परिणाम यही निकलता है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र नित्य हैं, जगत् का प्राकृतिक कार्य व्यापार नित्य है इसी प्रकार मेरा प्रेम भी अटल और नित्य है. इस प्रकार निदर्शना अलंकार सिद्ध होता है।

मो रौ मुख ... ... नँदलाल।

हे मानवो! कल्याण चाहते हो तो अपने मन को घरबार की ओर से मोड़ लो, जगत् के नाते सम्बन्धों से होने वाले माया जाल को तोड़ गेरो, सब से ममता हटालो जितने भी यज्ञ, जप आदि साधन हैं, उनका भी आश्रय देखना छोड़दो, एकमात्र नन्दकुमार श्रीकृष्ण को भजो।

श्री वल्लभ ... ... की टेक।

कल्याण के लिये यज्ञ, जप, तप आदि अन्य उपायों को छोड़ कर श्री वल्लभ २ शब्द का जाप करो। प्रथम बल्लभ शब्द से बल्लभाचार्य जी और द्वितीय बल्लभ शब्द से प्यारे अर्थात् बल्लभाचार्य जी के इष्ट-देव श्री कृष्ण का अर्थ लेना चाहिये, भगवान् अपना सेवक जानकर दीनबन्धु नाम की लज्जा रखेंगे। भगवान् का नाम है दीनबंधु अर्थात्

जिनका कोई आश्रय और रक्षक नहीं है, अनन्य भाव से जो भगवान् पर ही आश्रित हैं, उनके सहायक, इसलिए जब वे देखेंगे कि यह सर्वथा हम पर ही आश्रित हैं तो वे सहायता कर, शरण में लेकर अवश्य अपने व्रत का पालन करेंगे।

श्री जमुना ... ... बल्लभ नाम।

कल्याण पाना चाहते होतो श्री यमुना जी का जल पीओ जिनके तीर पर श्री कृष्ण ने लीलायें की थीं, वृन्दावन तीर्थ में निवाश करो श्री बल्लभाचार्य का अथवा श्री अर्थात् लक्ष्मी के वल्लभ श्रीकृष्ण का नाम जपो और उनका अत्यन्त पवित्र प्रसाद मुख में रखो। यहां पर परिसंख्या ध्वनित होती है कि पीना हो तो यमुना का ही जल पीवो, निवास करो तो वृन्दावन धाम में, चाखो तो भगवान् की समर्पित नैवेद्य, बोलो तो केवल वल्लभ का नाम उच्चारण करो।

तन पुलकित ... ... राधा गाव।

शरीर के आनन्द के कारण रोमाञ्च युक्त करके, आंखों से आनन्द के अश्रु जल बहाओ, प्रेम में डूबकर उन्मत्त हो जाओ, अपने आपको भुलाकर केवल राधा राधा नाम का उच्चारण करो। रोमांच अश्रु सत्विक भाव हैं, उन्माद संचारी भाव हैं इन्ही से प्रेम की यथार्थता का भान होगा।

सब दीननि ... ... समझहु आप।

हे भगववन! आप मेरी उपेक्षा न करें, आप यह समझ लें कि सम्पूर्ण दीन अनाथों की दीनता और पापियों के पाप इकट्ठे होकर मुझ में आ भरे हैं अतः मुझ अकेले का उद्धार करने से ही अन्य पापियों और दीनों का भी उद्धार स्वतः हो जायगा। निदर्शना अलंकार है

प्राननाथ ... ... हरिचन्द।

हे प्राणनाथ, हे जीवनदाता, हे व्रज के स्वामी, हे दुःख नाशक-नन्द के दुलारे, यह हरिश्चन्द्र इस संसार रूपी समुद्र में डूब रहा है, कृपा कीजिये, दौड़ कर अपनी भुजाओं में भर लीजिये, आलिंगन कर लीजिये, इस प्रकार अपनाने से ही संसार समुद्र से रक्षा हो सकेगी।

इसमें रूपक और परिकर अलंकार हैं। भव में समुद्र का आरोप अनुमान से लगाना होगा अन्यथा 'डूबना' असंगत हो जायगा।

साधुन कौ ... ... विहाइ।

सन्त महात्माओं की संगति पाकर उनके साथ श्रीभगवान् का गुण-गान करके श्रीहरि के प्रेम से विभोर हो नृत्य कीर्तन करते २ इस जन्म को त्याग दें।

जय जय ... ... गोवर्धन धरन।

हे नन्दराज के हृदय को उनके लाड़ले पुत्र होने के नाते आनन्द देने वाले, बृषभानु के लिये अत्यन्त मान्य होने वाले भगवन् आपकी जय हो। पुत्री राधा के प्रियतम होने के कारण श्रीकृष्ण वृषभानु के पूज्य हो गये। जामाता सदा मान्य माना जाता है। यशोदा के पुत्र और कीर्त्तिदा को कीर्त्ति का या यश का दान करने वाले कीर्तिदा राधा की माता का नाम था, हे भगवन् आपकी जय हो, हे श्री राधा के प्राणपति, हे शरणागत के कष्ट हरने वाले भगवन् आपकी जय हो, हे वृन्दावन के चन्द्रमा अर्थात् अपनी रूप ज्योति से वृन्दावन को प्रकाशित करने वाले, चन्द्र समान सुन्दर मुख वाली गोपिकाओं के मन को प्रसन्न करने वाले भगवन्, आपकी जय [illegible] आचार्य गौश्री के स्वामी, हे इन्द्रियों के स्वामी या प्रेरक, शक्ति दाता, हे गौवों के स्वामी या रक्षक, हे गोपी वल्लभ, हे गोकुल के रक्षक, आपकी जय हो, हे सर्व कष्टहर्ता, हे करुणा के आभरण रूप अपनाने वाले, अर्थात् दयालो, आपकी जय हो, हे गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले भगवन्, आपकी जय जयकार हो।

अहो हरि ... ... उबारी।

हे भगवन्! बस कीजिये, अपने कठोर व्यवहार को समाप्त कीजिये, अब तो बहुत कुछ उपेक्षा हो चुकी, हे करुणा के निधान, थोड़ा अपनी ओर देखिये, अर्थात् आप इतने दयालु कहलाते हैं, तथापि ऐसा कठोर व्यवहार करते हैं जो कि अनुचित है, करुणानिधि कहलाते हुए ऐसी निर्दयता आपको शोभा नहीं देती। आज आप नई

बात न कीजिये, पहले तो आपने ऐसी उपेक्षा किसी के साथ नहीं बरती, जो भी शरण में आया उसे ही अपनी भक्ति देकर अपनालिया, अब मेरे अवसर पर ऐसा विलम्ब क्यों करते हो ? यदि आप हमारे दोषों को देखते हों कि यह तो बड़ा पापी है, शरण में लेने योग्य नहीं है, तब तो हमारा निर्वाह नहीं हो सकता, अर्थात् दोषों से तो छुटकारा होना संभव नहीं और दुर्गुणों के रहते आपने दया नहीं करनी, तब हमें उद्धार की आशा कैसी ? परन्तु आप पिछला इतिहास देखिये, अपनी पिछली कृपा के रिकार्ड देखिये, अजामिल और हाथी को स्मरण करके हमारे कर्मों को भुला दीजिये। अर्थात् आपने जब उनके अच्छे बुरे कर्मों पर विचार किये बिना ही उन्हें सद्गति प्रदान करदी तो हमारे ही पाप पुण्य के कर्मों का लेखा क्यों देखते हैं, उन्हें भी भुला दीजिये। आज तक तो हमने आपका उपेक्षा भाव सह लिया, परन्तु अब तो पश्चात्ताप और खेद बढ़ता जा रहा है, वह किसी भी प्रकार से नहीं सहा जाता, न और धैर्य ही धरा जा सकता है कि कुछ प्रतीक्षा करलें। हे भगवन् ! शीघ्र ही दौड़ कर इस हरिश्चन्द्र को भुजाओं में भर कर अर्थात् हृदय से लगा कर बचा लीजिये।

पियारे ... ... धन को स्वामी।

हे प्यारे ! भला इसी का नाम न्याय है। क्या यही इन्साफ है। कि जो आपकी मन और तन से सेवा करे, उसे नहीं अपनाना, यह तो आपने अच्छा नियम बनाया है। अपने सेवक को कुछ अच्छे कर्म किये बिना जानकर अथवा जिसने कोई पुण्य कर्म नहीं किया, उसे भी यदि अपना सेवक जान लिया तो उसे दुगुना दुःख देते हैं, आप उलटे उसकी बुराइयों पर दृष्टि डालते हैं, यह तो आप ने अच्छी रीति चलाई है। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि हे भगवान्, आप तो अन्तर्यामी हैं, घट २ की भावना जानते हैं, ऐसे होकर भी आपने यह अच्छा निर्णय किया चारों को तो छोड़ दिया जाय, उन्हें कोई दण्ड न मिले, और उलटे धन के स्वामी को दण्ड दिया जाय। अर्थात् आप तो अन्तर्यामी हैं, यह जानते हैं कि चोर कौन है, दोष जान कर भी उसे छोड़ देना

और जिसकी चोरी हुई हो, उसी धनी को दण्ड दे दिया जाय, ऐसा एक न्यायप्रिय और ज्ञानकार न्यायाधीश को नहीं करना चाहिये। यहाँ भाव यह है कि अपराध तो कामादि ६ आन्तरिक शत्रुओं का है, मन की स्थिति कुछ उच्च होने पर भी गिरी हुई है। आप यह जानते हैं, तथापि इन इन्द्रियों का स्वामी जो यह केवल आत्मा है, उसे क्यों आप दण्ड देना चाहते हैं।

प्यारे··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···औ सात।

हे प्रियतम! अब तो आप का वियोग नहीं सहा जाता, क्या करें, अब तो कुछ भी किये नहीं बनता, रात दिन मन पछताता रहता है कि पहले से उनसे मिलने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। अपनी मानसिक दशा बताते हैं कि जैसे कोई पक्षी छोटे से पिंजरे में बन्द होकर अपनी मुक्ति के लिये निरन्तर छट पटाता है, इसी प्रकार मेरे ये प्राण भी बन्धन में पडे हैं और निरन्तर छुटने के लिये छटपटाया करते हैं। क्या करें, इन्हे रोकने और समझाने के लिये कोई भी उपाय काम नहीं देता, मुड़ २ कर प्राण पछाड़ खाते हैं, पीछे फिर २ कर आकुलता से मूछित हो जाते हैं। हरिश्चन्द कहते हैं कि अब दशा इस प्रकार की हो गई है कि संकल्प और विकल्प का अवकाश नहीं रहा है, अतः शीघ्रता करके जिस किसी प्रकार से अपने समीप बुलाइये। वाक्यार्थोपमा है।

भरोसो··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···करिदास।

मुझे भगवान् के सहज ही रीझ जाने या प्रसन्न हो जाने के स्वभाव का ही बड़ा भारी विश्वास है। हमें भी यह विश्वास होता है कि भगवान मन मोहन अवश्य पतितों का उद्धार करने वाले हैं। वे नीचे गिरे हुओं को ऊंचा उठाते हैं, इसका हमें पूर्ण विश्वास है। क्योंकि यदि उनका यह स्वभाव नहीं होता तो भला उन्हें गोपों का, अहीरों का वंश क्यों भाता जो कि वे सारा बचपन भर उन्हीं में खेलते खाते रहे। गले में दिव्य कौस्तुभ मणि को त्यागकर रत्तियों की माला

क्यों पहनते। रत्न जटितमुकुट को पहिरना छोड़ कर मोर के पंखो का मुकुट शिर पर क्यों धारण करते। अच्छे २ मेवों का स्वाद या रस भुला कर वे करील के फल तोड़ने के लिये कमर क्यों कसते? निश्चय ही उन्होंने यह लीला गोपों पर अनुग्रह भाव के कारण की थी, उनकी ऐसी उलटी रुचि और अनुकम्पा को देख कर ही मन में यह आशा उत्पन्न होती है कि वे हरिचन्द्र को अपना दास समझ कर अवश्य अपनायेंगे।

अनुमान अलंकार है।

सभारहुँ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···चन्द की बारी।

हे गिरधारी, अब जरा अपने आप को सँभाल लीजिये, अपनी कमर कस कर सन्नद्ध हो जाइये, मोर पंखों के मुकुट को शिर क पंगड़ी से भली प्रकार कस कर बांध लो, अपने बालों का भी ठीक प्रकार से बांध लो, छाती पर हिलती हुई बनमाला को उतार दो, वंशी भी एक ओर उठाकर रख दीजिये। अपने सुदर्शन चक्र आदि अस्त्र शस्त्रों को सान पर तीक्ष्ण करलो, स्वर्ण कंकणों के फन्दे हटा दीजिये, अपने नूपुरों को ऊपर चढ़ालें और तगड़ी को खींच कर कस के तैयारी कर लें, बनवारी, अपने पीताम्बर कमर पर फेंट के रूप में बाँध लें, कारण यह है कि आपने हम से पूर्व जिन पतितों का उद्धार किया था, हम उनमें नहीं हैं, उन्हें तो आपने अनायास ही पार कर दिया था, अपना वेष भली प्रकार स्मरण करके ठीक करो अथवा अपने स्वभाव का भली प्रकार स्मरण कर लीजिये, अब हरिचन्द को पार करने की बारी है।

प्रान नाथ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···रस भीनी।

हे प्राण प्यारे! आप से मिलने के लिये हमने क्या २ युक्तियां नहीं की, कितने उपाय नहीं किये, प्रयत्न करके थक गईं परन्तु हमारे प्रयत्न कुछ काम न आये, परिणाम सब प्रकार से विपरीत ही रहा। मैं बहुत सी मूर्तियों का मुख देखा चुकी अर्थात् बहुत सी मतियों को

अनुकूल करने के लिये भेजा मैं सबकी शक्ति और चतुराई की थाह ले चुकी हूँ, सभी को अजमा चुकी हूँ। उनसे कोई कार्य सिद्ध न हो सका। अब मैंने एक नई युक्ति खोज निकाली है जो सर्वथा अचूक है, वह व्यर्थ नहीं जा सकती, युक्ति बताते हैं—इस शरीर को त्याग अर्थात् इस शरीर से हटा कर अपने मन को आपके चरणों में लीन करदूँ, जगत् की सत्वरजस्तम रूप तीनों गुणों का बन्धन त्याग दूँ, इस प्रकार आपके चरण समीप पहुंच कर आपकी मधुर अधरामृत की धारा का पान करती हुई वेखटके विहार करूँगी, इस शरीर से मनको हटा कर आप में मन लगा लूँगी, इस प्रकार आप से मिलन सम्भव हो जायगा।

पियारे ..... जग में साने।

हे प्यारे! तुम इतने याद क्यों आते हो? यह प्रेममय व्यंग्य है, कृष्ण प्रेम की अनुभूति का वर्णन करते हैं, आपकी याद आते ही जगत् के सारे काम काज छूट जाते हैं और सांसारिक भोगों के स्वाद भी मिट जाते हैं, अर्थात् आपकी स्मृति आने पर न तो कोई काम ही होने पाता है, न किसी वस्तु या भोग में आनन्द ही मिलता है। जब तक आपकी स्मृति मन में नहीं आती है तब तक तो हम सब कामों के योग्य रहते हैं, प्रत्येक कार्य करने में मन लगता है, सब प्रकार की रुचि बनी रहती है, परन्तु ज्यों ही आप की याद आती है, त्यों ही मन में आप की लगन के तीर चुभने लगते हैं। इन बातों से हम ने यह निश्चय से जान लिया है, कि आप जगत् के सब कार्यों तथा कामनाओं के शत्रु हैं, आप के प्रति प्रेम हो जाने पर आप किसी योग्य नहीं रहने देते तथा उसे किसी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहतो। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जब आप जगत् के शत्रु हैं या उसको कामना के शत्रु हैं तो लोग सांसारिक व्यवहारों को आपके प्रेम से एक क्यों कर देते हैं। आपके प्रेम के साथ ही जो वे निज के दैनिक कर्यों का निर्वाह करते रहने को कहते हैं, यह तो अनुचित है

क्योंकि जहाँ आपके प्रेम का जादू चला कि आपा ही नहीं रहता, फिर भला बाहरी कार्य कैसे निभ सकते हैं।

रहें क्यों ... ...फिरि फूलै।

भला एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं। क्योंकि जिन आँखों में भगवान् का प्रेम रम गया है उन्हें और कोई क्यों अच्छा लगेगा। जिस शरीर और मन में मोहन रम रहे हों भला उसमें कोरे ज्ञान के लिये स्थान कहाँ? या तो मन को कृष्ण प्रेम में लगा लें या ज्ञान के तर्कों में उलझा लें, एक ओर ही उसे लगाया जा सकता है। अब क्यों कि प्रेम उन पर अधिकार कर चुका है, अतः शुष्कज्ञान की ओर उसे नहीं ले जाया जा सकता। अब तो चाहे जितनी बातें समझायो, कितनी युक्तियां और उदाहरण दो पर यहाँ ऐसी कोई नहीं है जोकि उस पर विश्वास कर ले। भला ऐसा मूर्ख कौन होगा जो पहले अमृत फल खाकर पुनः इन्द्रायण के कड़ुवे फल को खाये, उसे देख कर क्यों ललचायेगा। इसी प्रकार हमारे मन को अब कृष्ण प्रेम के अतिरिक्त और ब्रह्म और ज्ञान ध्यान कुछ नहीं रुचता यह ब्रज तो केले का बन है, अर्थात् ब्रज का कृष्ण प्रेम केले के बन के समान है कि उसे जितना काटोगे, उतना ही फलेगा। केले के पेड़ को जितनी बार काटा जायगा, उतनी ही बार फल देगा, इसी प्रकार गोपियां कहती हैं कि हमारा प्रेम तो ऐसा है, उसे जितना तोड़ना चाहोगे, उतना ही अधिक दृढ़ होता जायगा।

फेरहुँ ... ...बिना अवार।

गोपियाँ कह रही हैं कि हे प्यारे नन्दलाल! इन प्राणों का कोई भरोसा नहीं है, ये, तो चलने को तैयार हैं, न मालूम किस समय निकल जायें, इसलिये हे प्यारे! कम से कम एक बार तो फिर मिल जाना। यदि तुम प्रकट रूप में पुनः यहाँ लीला करनी स्वीकार न करो तो दूर ही से अपने मुख की झलक दिखा देना। मैं बड़ी बिन्ती कर रही हूँ। यह बात मेरे मन में रोकने से भी नहीं रहती है, अतः विचार करके कह रही हूँ कि चाहे किसी ब्याह आदि के

निमन्त्रण या बुलावे के ही बहाने एक बार ब्रज अवश्य आ जाना। यह उक्ति वास्तव में यशोदा की प्रतीत होती है।

भई सखि ? ... ... रूप की सैल।

हे सखी, ये आंखें तो बहुत बिगड़ गई हैं, बड़ी चटोरी होगई हैं। ऐसी बिगड़ी हैं कि बिना सांवरिया छबीले को देखे ये मानती ही नहीं। मस्त होगई हैं जिस कारण लड़खड़ाते पैर रखती हैं। इन्हे अपने कुल मर्यादा का भी विचार नहीं रहा है। गुरुजनों की लज्जा का भाव त्याग कर ये केवल हरि की रखैल स्त्रियां (उप-पत्नी) बन गई हैं। अपनी धूर्तता को सुनकर लजाती नहीं हैं, उलटी और अधिक प्रसन्न होती हैं, मन में तनिक भी मैल नहीं लाती, उन्हे मन में जरा भी दुखः नहीं होता हरिश्चन्द्र कहते हैं कि ये तो सबका साथ छोड़ कर केवल रूप की सैर करती हैं सम्पूर्ण आसक्ति छोड़कर इन आंखों को केवल कृष्ण का रूप रुचता है। स्त्री लिंग होने से अप्रस्तुत स्त्री के व्यवहार का बोध होने से समासोक्ति अलंकार है।

पुरानी ... ... बखान।

हे प्यारे ! अबतो जान पहचान पुरानी पड़ गई है, मित्रता क्यों कि पुरानी होगई है, अतः आप अब हमें क्यों पहचानेंगे। बड़े चतुर हो, संसार का व्यवहार ही ऐसा है कि नई २ मित्रता से प्रेम रखते हैं और पुरानी फीकी पड़ जाती है, चतुर व्यक्तियों का यही ढंग रहता है। इस लिए क्यों कि तब तो आप छोटे थे उस समय की पहचान को अब बड़े होकर क्यों निभाने लगे। अब तो नये २ प्रेम भाव होंगे, नये ही प्रेमी होंगे, और तुम भी नये सुजान या प्रेम के पारखी हो, तुम्हारी तो निभ जायेगी पर हे प्रियतम, भला यह तो बताओ कि हम कहा जायं। मधुकरी प्रीति करने वालों का तो सभी स्थानों पर निर्वाह हो जाता है, वे एक प्रेम को तोड़ कर दूसरा जोड़ लेते हैं पर जो अनन्य भाव से एक ही प्रियतम पर अवलम्बित हों, जैसे मछली, वे भला कहां जांय ?

सखी ये ... ... लैन की दैन।

हे सखी, ये आंखें तो बड़ी ही उलझने वाली हैं. बड़ी लगाव वाली

हैं, सुलझना तो जानती ही नहीं, जितना सुलझने का प्रयत्न करो, उतनी और अधिक उलझ जाती हैं, उधर से इन्हें हटाने का प्रयत्न करती हैं परन्तु हटने के स्थान पर ये उल्टी उधर ही दौडती हैं और वहीं अटक जाती हैं। सम्भव है, थोडा बहुत उचित अनुचित का विचार कर लेने पर कुछ मान जाती पर ये सोचती समझती भी तो नहीं। ऐसे व्यक्ति को तो बलपूर्वक रोकने की आवश्यकता होती है, परन्तु इन्हे तो रोकने वाला कोई है ही नहीं, येतो ऐसी मतवाली हैं जैसे हाथी होता है। मतवाले हाथी को बांधना बहुत कठिन है। क्या करें, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि वैरिणी आंखों के कारण तो हमे लेने के देने पड़ गये। गईं थी रूप रस पीने के लिये उलटी वहीं उलझ गई है, आपे से भी गईं। विषम व उपमा अलंकार है।

मरम की ... ... होय सो होय।

हृदय की वेदना को कोई नहीं जानता, भला किसको बतायें, बाहरी चोट के लक्षण तो स्पष्ट हो जाते हैं पर भीतरी कष्ट के देखने मात्र से नहीं जाना जा सकता ऐसी वेदना को किसी के आगे प्रकट करने का यदि प्रयत्न भी करें तो भी कोई लाभ नहीं क्यों कि कोई सच नहीं मानेगा। प्रमाण होवे तो कोई सत्य समझे,इसका कहना सुनना भी व्यर्थ है। विवश होकर रोती घर बैठी हैं, आस पास में कोई भी इस प्रेम की आग को पहचानने वाली नहीं है जो कुछ उपाय ही करे या दया करके मेरी दशा की सूचना आगे पहुंचा दे। यहां तो सब लोग इस रहस्य से अनजान ह, सब अपनी अपनी कहते हैं, मेरी अनु-भूति को बात कोई सुनता ही नहीं है। ऐसी दशा में किसे क्या समझायें। पर प्रेम के कारण लोक लज्जा और कुल की मर्यादा सब कुछ खो बैठी हैं, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि यह यो अब ऐसे ही निभेगी अर्थात् अब तो इस मार्ग में पैर रख ही दिया है कुल की मर्यादा और लोकाचार का उल्लंघन हो ही चुका है, जगत् में हंसी हो चुकी है ऐसी दशा में इस प्रेम व्यथा से जो कुछ बीतेगी सहनी ही होगी, जो होना है सो होता रहे:—

रहे ... ... ब्रज की बाट।

हाय! ये आंखें यही देखने को बाकी रहीं, श्रीकृष्ण के वियोग में ब्रज की जो दशा होनी थी, उसे देखने को ही ये दोनों आंखें रहो थीं, हाय कितनी निर्लज्जता है कि अब तक प्राण नहीं गये आंखें वैसी की वैसी हैं और इन दुःखद दृश्यों को देख रही हैं। देखो वही हरेभरे कुञ्ज दिखाई दे रहे हैं, वेही तोते कोयल आदि पक्षी हैं, वही शिलाओं की पुष्प शय्या पड़ी है जोकि बलराम के भाई श्रीकृष्ण के विना सुनसान है। शून्यता से वह अरुचिकर प्रतीत होता है। वही भवन के झरोखे हैं, वही छज्जे हैं, वही ब्रज की गलियां हैं, वही सायंकाल परन्तु हाय! इन सब में एक वही नहीं है जोकि वंशी बजाता हुआ इन गलियों में आया करता था। ये ब्रज भी वही है, वे ही गौवें हैं, जिन्हें मोहन चराया करते थे, वही गोप और गोपियां हैं, परन्तु आज गोपाल के बिना सब तितर बितर होकर दुःखी हुए घूम रहे हैं। नन्दजी के भवन को सूना देख कर जोकि सदा श्रीकृष्ण की सुन्दर लीलाओं से अद्भुत हुआ रहता था, यह हृदय सहसा फट क्यों न गया हरिश्चन्द्र कहते हैं कि हे भगवन्? अब भी कृपा कीजिये, बहुत वेदना झेल चुके हैं, अब तो शीघ्रता कीजिये, शीघ्र उठ कर दौड़िये, ब्रज के मार्ग में एक बार पुनः लौट पड़ो। एक बार पुनः इस ब्रज की ओर पधारो शीघ्र दौड़ कर आइये। पीछे आने का क्या लाभ होगा। निर्वेद का बहुत ही अच्छा चमत्कार है, विनोक्ति अलकार से कृष्ण प्रेम और उनके विरह की भावना तीव्र रूप में स्पष्ट और पुष्ट हो रही है।

हरिश्चन्द्र

विहरि है ... ... अब को दाँव।

हम तो सब संसार के शिर पर पैर धर कर विहार करेंगी प्रेम में मस्त रहेंगी, जो संसार हमारी निन्दा करता है, भांति २ के उपहास करता है इस प्रेम मार्ग से हमें च्युत करना चाहता है, उसे नीचा दिखा कर प्रेममग्न होंगी। आलोचक की आलोचनाओं की चिन्ता न करके

पहिले से भी अधिक उसी प्रकार का आचरण करने से विरोधियों के सिर पर पैर रखना ही हो जाता है। हे प्यारे प्रियतम हमतो एकमात्र तुम्हारी होकर और किसी की चिन्ता नहीं करती और सब स्थान स्वर्ग आदि लोकों का मोह भी छोड़ देंगी। चाहे यह जगत् हमें बिगड़ी बताये, रात दिन निन्दा करे, व्यंग्य के रूप में उपहास के नाम रख दे, परन्तु हरिश्चन्द्र कहते हैं कि हम यह अब का दांव कभी नहीं चूकेंगी। अर्थात् अब की बार प्रेम व्यवहार से आपको पाने का कुछ साधन हमारे हाथ आया है, उसे संसारी लज्जा के भय से या भोगों के डर से व्यर्थ नहीं खोयेंगी।

न जानों ... ... निकारी।

न जाने प्यारे गोविन्द किस साधन से, किस बात से प्रसन्न होते हैं, और जप, तप, ज्ञान और ध्यान किस बात से चिढ़ते हैं। अर्थात् लोग जप भी करते हैं, वर्षों तक तपस्या भी करते हैं योग समाधि भी लगाते हैं, ज्ञान ध्यान भी करते हैं परन्तु वे प्रसन्न नहीं दीखते, इसलिए वह कौन साधन है जिससे वे प्रसन्न होते हैं और कौन सी बात इन में ऐसी है, जिससे वे चिढ़ते हैं। वेद और पुराण भी इसका भेद नहीं पा सके उन्होंने कुछ के कुछ एक दूसरे से विरुद्ध मार्ग बताये हैं, परन्तु उन मार्गों से सिद्धि नहीं सुनी है, उसके विपरीत मार्ग से अवश्य उनकी प्रसन्नता सुनी है भला पिंगला गणिका ने कौन जप या तप किया था, मांसहारी पक्षी गृध्र जटायु ने कौन सा बड़ा अपूर्व दान किया था, जो इन को भगवान् ने शुभ गति दी थी व्रत और ज्ञान मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति उन से और अधिक दूर होते जाते हैं, ऐसे लोगों को उनकी शरण में कहीं भी स्थान नहीं मिलता. जो सर्वथा निर्लज्ज है, लोकाचार और वेद प्रतिपादित धर्म के अनुसार निरन्दित हैं, वे उन के पास पहुंच कर स्तुति करते हैं, कहीं तो भगवान् उल्टे मार्ग से चलते हैं, कहीं सीधी ही चाल ये रीझते हैं जैसे ध्रुव आदि, कहीं न उल्टी न सीधी दोनों भिन्न रीति अपनाये हैं, हरिश्चन्द्र कहते हैं हे भगवान्? आपको रिझाने का मार्ग या साधन कोई भी नहीं जान पाया हूं, आपने किसी लोक वेद

की ओर न देख कर अपने मन से ही निराला ऐसा मार्ग निकाला है क. संसार से निन्दित होकरभी उस पर चलनेसे आप शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं यह भी आपकी विलक्षण ही रुचि है।

लाल के··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···तिहारी।

हे प्यारी! तू प्यारे नन्दलाल के प्रेम रग में रंगी हुई है। प्रेम का रंग लाल होता है, इसीलिये लाल शब्द का प्रयोग किया है। इसी कारण वस्त्र पहिनती हुई उस रंग को धारण करने के बहाने करके सदा कुसुम्भ के रंग की साड़ी पहनती है, अर्थात् तेरा सदा लालसाड़ी पहनने का अभिप्राय यही है कि किसी न किसी बहाने लाल रंग तन पर बना रहे। तेरे दोनों होंठ भी लाल हैं, करतल और पैरों के तलवे सब लाल हैं, शिर पर भी तूने लाल बिन्दी का तिलक किया है, जागरण के कारण आँखों में पड़े डोरों के बहाने लाल बिहारी श्री कृष्ण झलकते रहते हैं। तुझे अपने शरीर की कुछ चेतना नहीं है, अपने आप को सर्वथा भुला बैठी है, पैर के नखों से शिर तक गिरिधारी बन गई है, सर्वथा उन्हीं के रग में रंग कर व अपने आप को भुला कर कृष्णमय हो गई है, हरिश्चन्द कहते हैं कि तेरा यह प्रेम-वश्वास संसार भर में प्रसिद्ध हो गया है। तेरे सत्य-प्रेम को सारा जगत् जान गया है और धन्य २ कर रहा है। लाल इस पद्य में शिलष्ट है।

टरौ इन ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···प्रेम की बान।

हे सुहागिनी राधिके? सौभाग्यवती वही है जो वास्तव में अपने पति की प्यारी हो केवल पति होने मात्र से सुहाग नही होता। राधिका क्यों श्रीकृष्ण की अन्यान्य प्रेयसी और महारानी है, अतः अखण्ड सौभाग्यवती है, इसीलिये कहते हैं कि हे अखण्ड सौभाग्य शालिनि! राधिके! अब तो सदा ही हमारी इन आंखों में बनी रहो, इन से कभी दूर न होना, सदा पुतली सी बनी रहना। पुतलियों से समता दो है, पुतलियां ही आँखों की ज्योति होती हैं, उनके बिना आँखों का कोई प्रकाश नहीं। इसलिये जैसे आँखों से पुतलियों का दूर होना असह्य है,

इसी प्रकार राधा का भी आँखों से दूर होना असह्य सिद्ध करना चाहते हैं। तुम्हारा नीला वस्त्र, कानों में नीलम का तराना, एक प्रकार का कर्णाभरण, शिर में अर्थात् मांग में सिंदूर, मुख में पान, आँखों में काजल, इस प्रकार सिंगार किये हुए स्वभाव से ही भोली-भाली हो, अधरों पर मन को मोहने वाली मुस्कान छाई रहती है, हे रानी तुम इस प्रकार से वृन्दावन में सदा राज करो, व्रज प्रदेश में सुख-पूर्वक रहो, सदा घनश्याम का वेष धारण किये हुए व्रज सेवियों पर प्रेम रूपी अमृत की वर्षा करती रहो। नीली चोली आदि वस्त्राभरणों के न लवर्ण से घनश्याम का वेष धारण करना दिखाया है, वैसे इस शब्द के दो अर्थ लिये हैं, श्यामसुन्दर और नीले मेघ इसी कारण 'श्यामघन' अर्थात् नीला बादल शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार अमृत शब्द के दो अर्थ हैं, अमृत धारा और अमृत-जल, बादल जल की वर्षा करेगा और घनश्याम कृष्ण प्रेम की वृष्टि करेंगे। हमारी तो अब यही कामना रह गई है कि जब तक ये प्राण शेष रहें, जो कुछ देख चुके, उसके अतिरिक्त और कुछ न दिखाई दे। भाग्यवश भी और कुछ न देखना पड़े, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि इन श्वासों की गति जब तक वर्तमान रहे, बस यह प्रेम का ही स्वभाव या व्यसन रहे, जब तक जीवित हूँ, आपका यह प्रेम मेरे मन में बना रहे।

श्लेष और रूपक अलकार हैं।

राधे तुव ... ...पराग।

हे राधे, तुम्हारी सौभाग्य कान्ति से सम्पूर्ण जगत् भी सौभाग्यमय हो गया है, सौभाग्य चिन्ह मांग का सिंदूर भी लाल होता है, प्रेम का रंग भी लाल ही माना गया है। अर्थात् तेरी सौभाग्य कान्ति से सम्पूर्ण सृष्टि दीप्त हो रही है, श्री हरि तेरे अनुराग या प्रेम की छटा से ही संम्पूर्ण जगत् को अनुरागमय कर रहे हैं प्रेम के लिये कवि ने अनुराग शब्द भली प्रकार सोच समझ कर प्रयुक्त किया है। प्यारे कृष्ण केवल प्रिय जनों अर्थात् हम जैसे सेवकों के भाग्य से ही तुम्हारे

सत् और चित् सत्य सनातन और चिन्मय रूप से पृथक् हो गये, एक मात्र 'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् एक मैं अनेक हो जाऊँ की जब भावना करता है अनेक रूप धारण कर लेता है तुम और कृष्ण दोनों एक-मय हो, परन्तु इन सेवकों के भाग्य से वे पृथक् रूप धारण कर गये थे इसलिये सच्चिन्मय तो तुम हो ही, तुम्हारे सौभाग्य से जगत् भी सच्चित रूप हो रहा है, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि फिर आपके चरणों में प्रेम करने से चरण कमलों के पराग या रस का पान करने से आनन्द भी प्राप्त हो जाता है, इस प्रकार आपके कारण जगत् भी सच्चिदानन्द स्वरूप बन रहा है।

भाव यह है कि परमात्मा का स्वरूप सच्चिदानन्द कहा जाता है, वह सदा वर्तमान है, इसलिये सत् है; वह नित्य चेतनाशील है, इसलिये चित् कहलाता है, अखण्ड आनन्दमय है, निर्विकार होने से नित्य आनन्द स्वरूप है, इन तीनों कर्मों से सच्चिदानन्द कहलाता है, जगत् में चेतन जीवों में सत और चित् इन दो धर्मों का भाव है, आनन्द का अभाव है, क्योंकि वे जरा, मरण, हर्ष, शोक, राग और द्वेष आदि से ग्रस्त रहते हैं। जड़ पदार्थों में केवल सत् नामक तत्व है, परन्तु भगवान् श्री कृष्ण क्योंकि गुणमय शरीर धारण करके जगत में आये थे, इसलिये वे पृथक् हो गये अन्यथा राधा कृष्ण दोनों एक रूप हैं। कथन यही है कि आपके अनुराग के कारण केवल और चिन्मय यह स्थावर जंगमात्मक जगत् भी आनन्दमय हो जाता है, इसलिये तुम्हारे अनुराग, सौभाग्य और महिमा का क्या वर्णन किया जा सकता है, इसी कारण हम सेवक आप के चरणों में मन लगाये हैं कि आपके प्रति अनुराग से बिहारी के प्रति भी अनुराग होगा और वेभी प्रसन्न होंगे।

प्रीति की ... ...गिरि वर धारी -

प्रेम का तो मार्ग ही अनोखा है, लोकाचार और वेदोक्त रीति, सब से ही विपरीत है, केवल प्रेमियों को यह मार्ग प्यारा है। उस पर केवल

प्रेमी चलते हैं। इस प्रेम मार्ग को कौन जानता है और कौन समझता है, कोई एक आध ही इस प्रेम मार्ग की जानकार होगी। हरिश्चन्द कहते हैं, ऐसे प्रेम मार्ग का अनुभव करना चाहिये जिससे कि गिरधारी प्यारे कृष्ण को देखा जा सके। अर्थात् वह मार्ग वर्णन या समझाने के योग्य तो है नहीं, केवल अनुभव से जाना जासकता है, उस पर जो एक-बार चल पड़े वेही समझ पाते हैं, और नहीं जान पाता। इसलिये गिरधर को प्राप्त करने के ऐसे शुभ मार्ग का तो अवश्य अनुभव करना चाहिये।

भेदकातिश्योक्ति अलंकार है।

रे मन ..... पै जाय।

अरे मन नित्य ही इस अद्भुत रूप का ध्यान कर। जोकि सुन्दर रूप है, गौर और श्याम वर्ण की कान्ति है, जिसका कि वर्णन नहीं हो सकता। शिर पर मोर के चन्दों का मुकुट है, कानों में कर्ण फूल और कुण्डल हैं, राधिका के कानों में कर्ण फूल और कृष्ण के कानों में कुण्डल सोह रहे हैं। कमर में कछनी और साड़ी है, कृष्ण ने कछनी पहना है राधिकाने साड़ी, पैरों में नूपुर और बिछवे, अनवर या अनोखे पहने हैं, राधा के पैरों में बिछुवे, अनौत या अनोखे पहने गये हैं और कृष्ण के पैरों में नूपुर हैं। हाथों में सोने के कंकण और चूड़ियां हैं, दोनों भुजाओं में बाजू बन्द या अँगद पहने हुए हैं, श्री कृष्ण ने केसर का तिलक किया है, राधा ने सिदूर की बिन्दी लगाई है, जोकि देखने मात्र से मनको हर लेती है। कृष्ण के मुख पर घुंघराले बाल छितराये हुए हैं। राधा की पीठ पर वेणी या चोटी लटक रही है जैसे नागिन ही हिल रही है। दोनों के अत्यन्त भड़कदार नीले और पीले सुन्दर वस्त्र फहरा रहे हैं हवा में फर २ कर रहे हैं। अधरों पर अत्यन्त मधुर मुरली की ध्वनि है, राधा के अधरों पर मीठी मुस्कान छाई है, दोनों नेत्रों में बड़ी मादक चितवन है जोकि दया की खान है सब लोग आश्चर्य चकित होकर पास आ २ कर मुग्ध दृष्टि से उनके इस अद्भुत वेष को देखते हैं। हरिचन्द कहते है कि यह

सुन्दर रूप स्वयं राधा कृष्ण के बिना कौन देख सकता है अर्थात् कोई नहीं।

नखरा··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···विधि टीकौ।

हरिश्चन्द्र कहते हैं कि नखरे भी यथोचित ही ठीक रहते हैं, अर्थात् सभी अवसरों पर नखरे करने उचित नहीं होते, केवल ठिठोली के समय ही वे शोभा देते हैं। भला यह भी कोई ऐसा समय है क्योंकि इधर तो आप को देखे बिना प्राण निकले जा रहे हैं, पर आपको इस मन के दुःख का कुछ भान ही नहीं है। हे स्वामी दया करके शीघ्र मेरी रक्षा के लिए दौड़िये, मेरा आप पर जो मान या भरोसा है, उसे अपनी रुखाई से फीका न कीजिये। जान पड़ता है विधाता ने आप को ही ऐंठना का टीका दे दिया है, इतनी विनती करने पर भी जो आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, आप नहीं आते, जान पड़ता है, आपको बड़ा अभिमान है कि जितनी हम बिनती करते हैं, आप उतना और ऐंठे जाते हैं। यह उचित नहीं है।

नाथ तुम ·· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···को धाई।

हे स्वामी, आप अपनी ओर देखिये, हमारी बुराइयों पर ध्यान न दीजिये कि ये दर्शन देने योग्य नहीं हैं ये बड़े पापी हैं, आदि, पर अपने गुण समूह पर दृष्टि डालिये कि आपतो पतित पावन हैं, दयालु हैं, इसके लिये प्रमाण देते हैं। यदि आप अपने उपर्युक्त गुणों को भुला कर औरों के दोषों की ही छान बीन कर तो अजामील जैसे पापी कैसे पार होते यह तो बताइये। वे कौन से बड़े सत्कर्मी थे जो आपने उनके अच्छे कर्म देख कर ही कृपा की हो। हे प्यारे! अब तक तो आपने कभी भी औरों के अवगुणों पर दृष्टि नहीं डाली, यह सिद्ध हो गया, तब क्या कारण है कि

बिनती करने पर भी हमारी बारी आने पर आप नया ही काम ठान रहे हैं, अर्थात् पहली बार हमारे अच्छे बुरे कर्मों का लेखा जोखा ले रहे हैं। यह तो अनुचित है। दूसरी युक्ति देते हैं कि हे कन्हैया, आपके क्षमा, दया जैसे उत्तम गुणों से मेरे पाप बड़े तो नहीं हैं जो ऐसे सकुचा रहे हो, इसलिये हे नन्ददुलारे ! हरिश्चन्द्र को शीघ्र आकर इस सागर से पार कीजिये।

अहो इन ... ... अपनाई।

खेद प्रकट करते हैं कि अहा ! बड़े दुःख की बात है कि इन झूठी बातों ने मुझे भ्रम में डाल रखा था, कभी तो सांसारिक सुखों ने और कभी स्वर्ग के विषय-भोगों की कामना ने मेरे मन को ललचाया है। पुण्य और पाप ये दोनों बेड़ियाँ हैं चाहे लोहे की हों अथवा सोने की। अर्थात् बेड़ी चाहे सोने की भी हों पर हैं तो बेड़ी ही, वह दुःखदायी ही होती हैं, इसी प्रकार पुण्य भी एक प्रकार की बेड़ी ही है। पुण्य और पाप की क्रम से सोने और लोहे की बेड़ी से उपमा दी है। लोभ को लेकर किये गये परोपकार या अपने स्वार्थ के कार्य दोनों स्वार्थ ही हैं, केवल नाम का ही अन्तर है। अर्थात् जो उपकार स्वर्ग या किसी उत्तम फल की इच्छा से किया जाय, वह एक प्रकार की स्वार्थ साधना ही है। वास्तविक परोपकार वही होता है जिसके पीछे कोई कामना न हो, इस लिये स्वर्गादि की लिप्सा से किये परोपकार और स्वार्थ में केवल भिन्न २ नाम होने के और कोई अन्तर नहीं है। इन भूल भूलैयाओं में फिरते हुए हे दयानिधि हमने आपके चरण-कमल जोकि वास्तविक कल्याणकारी हैं, भुला दिये, आपको पाये बिना ही इस जगत् में भटकता फिरा और व्यर्थ में ही अनेकों जन्म बिता दिये, हाय २ करके मोह छोड़ कर कभी धैर्य धारण नहीं किया अर्थात् वहां के दुःखों के कारण हाय, हाय तो करता रहा पर मोह ममता को छोड़ कर इस मन को ठिकाने कभी नहीं लगया। इस संसार की इस प्रज्वलित विषयाग्नि में पड़ कर शुभ कर्म करने के या आपको भजने के सभी दिन जला दिये नष्ट कर दिये। हे करुणा के कोष, अभी भी कृपा कीजिये, मुझे

इस जगत् के जंजाल से छुड़ा कर अपना दीन हीन, सब प्रकार से गया बीता सेवक समझ कर शीघ्र ही अपना लीजिये।

हम हूं ... ... दहते।

अहा! पहले चेत जाते तो कभी हम भी सुख पूर्वक रहते, संसार के सम्पूर्ण जजाल छोड़ कर रात दिन मुख से केवल 'कृष्ण, कृष्ण' कहा करते। सदा राधा कृष्ण की लीलाओं के आनन्दानुभव में डूबे रहते, उसी आनन्द के का ण आंखों से आँसुओं की धारा बहती होती। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि हमें जगत् में एकमात्र घनश्याम का वियोग होता जिसकी वेदना रूपी आग में जगत् के दुःखों को तृण के समान भस्म कर देते। अर्थात् श्रीकृष्ण के विरह की वेदना ही हमारी अनुभूति में आती उसमें तन्मय होने के कारण सांसारिक दुःखों का हमारा हृदय स्पर्श ही नहीं करता। जोकि उसे अनुभव हो पाता।

करुना कर ... ... अब रेखौ।

हे करुणा की खान, हे भगवन्, शीघ्र ही हमारी सुधि लीजिये, हमें शीघ्र ही याद कीजिये, संसार की दुःखाग्नि को हम नहीं सह पाते हैं, इस लिये शीघ्र ही इसका उपचार कीजिये। अथवा जगत् रूपी बनाग्नि हम से नहीं सही जा रही है, अतः उसका उपाय कीजिये। हे स्वामिन्, हमारे अवगुणों का स्वप्न में भी ध्यान न करें, हे प्यारे! केवल अपनी ओर ही दृष्टि डालो कि कैसे दयालु और कैसे क्षमा शील हो।

हम तो ... ... सरन माने।

हमारे कर्मों पर दृष्टि डाल कर क्या पाओगे हम तो सब प्रकार से गिरे हुए हैं, दुष्ट हैं, निर्दयी हैं और विषयी हैं, नित्य ही धनवानों की गुलामी करते रहते हैं, वित्तैषणा या धन के लोभ के वशीभूत होकर धनवानों की चापलूसी करते रहते हैं। हम बड़े २ पापों को करकर पुष्ट हो गये हैं, दुष्टता में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रही है। धर्म को तो हम जानते भी नहीं कि उसका क्या स्वरूप है और कैसा है। उद्धार के यज्ञ, जप, तप आदि किसी साधन का भी हम सहारा नहीं

ले रहे हैं, केवल आपको ही शरण या रक्षक मानने हैं।

जैसे है ... ... पकरि लीजै।

हे प्यारे! हम अच्छे या बुरे जैसे भी हैं, केवल आपके ही सहारे हैं, आप ही हमारी गति हैं, हम तो सब उपाय करके हार चुके, आपकी इच्छा है कोई भी उपाय करो, किसी भी प्रकार से रक्षा करो, द्रौपदी, अजामील और हाथी को स्मरण कीजिये जिन्हें आपने किसी कर्म का बिना विचार किये पार कर दिया। इसी लिये हरिश्चन्द्र को दीन हीन जान कर बांह पकड़ कर उबार लीजिये?

तुम बिनु ... ... ठिकाने।

हे प्यारे! आपके बिना कहीं भी सुख नहीं है, विषय रसासक्त हुआ मैं आनन्द के लोभ में संसार में अनेक स्थान २ पर भटका, हे प्यारे, पहले पहले जहाँ जाने के लिये बड़े चाव से ललचाये थे, वहाँ से मन ऐसा उखड़ता है कि लौट कर वहीं अपने नियत स्थान पर आ जाता है। अर्थात् सुख की आशा में जहाँ २ जाते हैं, वहीं से निराश होकर पहले स्थान पर ही आना पड़ता है। वहाँ कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता।

जित देखौं ... ... पुकारे।

जहां भी देखता हूँ, वही वही स्वार्थ भरी पुरानी बातें होती हैं, केवल स्वार्थ की प्रधानता रहती है, किसी प्रकार की समासमता नहीं दिखाई देती इस कारण वहां के सारे व्यवहार सर्वथा मलिन दूषित होते हैं, कपट का मैल होने से स्वार्थ भरे व्यवहार बड़े दूषित देखकर उन्हीं स्थानों से या उनकी संगति से बड़ी घृणा उत्पन्न होती है। जिसे मैं हीरा समझता हूँ, वही कच्चा कांच निकलता है, अर्थात् जिसे भी हीरे के समान शुद्ध और निर्मल समझता हूँ वही कांच की भांति का कच्चा सिद्ध होता है, उसके व्यवहार में स्वार्थ की कृत्रिमता रहती है। उसका प्रेम केवल धोखा सिद्ध होता है। इस कारण पछता कर यही कहना पड़ता है कि इस जगत् के प्रेम व्यवहार या सौदे में पछताना ही नफा है। कोई व्यापार कुछ न कुछ लाभ की आशा रखकर किया जाता है, यदि कुछ लाभ नहीं तो पछताना पड़ता है। इस जगत के व्यवहार

या सौदे में भी इसी प्रकार केवल पछताना हीं पड़ता है।

सुन्दर ... ... मन होय ।

हमने सुन्दर, चतुर, रसज्ञ और प्रेमी समझ कर जिसे भी प्रेम किया उसे ही स्वार्थ परायण और मलिन हृदय वाला पाया, यह भली प्रकार परीक्षा करके देख लिया है। चाहे सभी गुण हों पर आप नहीं अर्थात् उसके हृदय में आपका प्रेम नहो तो भला क्या आनन्द है कुछ नहीं, वह तो बिना नमक की रसोई होजाती है। जैसे दाल या सब्जी में नमक डालने से रह जाय तो उसमें कुछ भी आनन्द या स्वाद नहीं आता, इसी प्रकार आपका प्रेम हुए बिना सारे गुण होने पर भी कुछ नहीं है, इसी कारण जहाज के पक्षी की भांति उधर से प्रेम भाव तोड़कर आपकी ओर दौड़ना पड़ता है। यह मन उस से ही जाहज का पक्षी सा हो जाता है। जैसे कोई पक्षी समुद्र के तीर पर खड़े जाहज पर बैठ जाय तीर छोड़कर जब जाहज समुद्र की बीच धारा में पहुँच जाता है, पक्षी उसपर से छोड़ इधर उधर जाता है परन्तु उसे चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है, इस कारण कोई आधार न पाकर विवश हो यह पुनः उसी जाहज पर आकर बैठ जाती है, इसी प्रकार यह मन इधर उधर भटकता है, परन्तु कहीं भी सुख न पाकर पुनः आपकी ही शरण में आता है।

अपने ... ... मोह की फांस ।

यद्यपि अपने परिवार के व्यक्ति और अन्य लोग सभी अपना २ प्रेम दिखाते हैं, बड़ा प्रेम व्यवहार करते हैं, परन्तु उनसे हृदको सन्तोष नहीं होता, इस बात पर बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होता है, यह हम भली प्रकार जानते हैं कि आपके प्रति प्रेम किये बिना हमारे ये श्वास जो जीवन को संख्या या मात्रा से सूचक हैं व्यर्थ बीत रही हैं, हम जो कुछ भी जी रहे हैं, सर्वथा व्यर्थ जी रहे हैं यद्यपि इस बात को समझते हैं हरिश्चन्द्र कहते हैं कि तथापि ये कठोर मोह के फन्दे नहीं टूटने पाते।

जो पे ... ... करि मान्यो।

यदि श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी को नहीं जाना, उनकी महिमा को नहीं समझा, उनके उपदेशों को नहीं गुना, तो यज्ञ जप तप आदि अन्य व्यर्थ साधन करके क्या लाभ हुआ, व्यर्थ ही भ्रम में पड़ा रहा। यदि इस बात को हृदय में नहीं ले आया अथवा विट्ठलनाथ को मन में ध्यान नहीं किया तो तेरी रसिकता और चतुरता सब व्यर्थ है, विषयानन्द का लोभी तू व्यर्थ में मरता रहा और कठिनतर कर्मबन्धनों में सना रहा। वही वास्तव में कर्म, मन वाणी से पवित्र है जिसका कि श्रीविट्ठलनाथ जी से प्रेम भाव है, अन्यथा व्यर्थ ही वेदों के सिद्धान्त छानता रहा, उनके द्वारा शुद्धि के कर्म ढूंढता रहा। हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हमने तो श्रीविट्ठलनाथ के बिना सब जगत् को झूठा मानलिया है। वही श्रीकृष्ण के समीप पहुँचाने वाले हैं। शेष जगत् तो उलटा दूर भटकने वाला है।

विशेष— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव थे, इसीलिए उन्होंने बल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ की स्तुति की है।

प्यारे मोहि ... ... उबारि।

हे प्राण प्यारे! मेरी परीक्षा न लो आप मनमें निश्चय करके यह समझ लीजिये कि हम आपकी परीक्षा योग्य नहीं हैं। अर्थात् आपकी परीक्षा बहुत कठिन होगी, हम उसमें खरे उतर सकें या नहीं इसमें सन्देह है, विश्वास यही है कि हम इस में समर्थ नहीं हैं। कारण यह है कि पापों से ही तो मेरा जन्म हुआ, माता पिता के विषय कर्म रूप पाप करने से अपना जन्म हुआ, मैंने भी सारा जीवन पुनः उसी प्रकार के पापों में बिता दिया। ऐसी दशा में मैं आपकी न्याय के तराजू पर कैसे ठीक उतर सकता हूँ! हे दया के कोष, हे भक्तों पर प्रेम भाव रखने वाले, हे करुणा स्वरूप, हे संसार के जन्म मरण के बन्धन रूप भय को हरण करने वाले भगवान्, इस अपने दास हरिश्चन्द्र को दुःखी देखकर शीघ्र ही हाथ पकड़ कर बचा लीजिये।

धनि ये मुनि ... ... गति आन ।

वृन्दाबन वन में बास करने वाले इन मुनियों को धन्य है जो कि श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति की उपासना के भाव से उनके दर्शनों के लिये पक्षी बन गये। नये २ कोमल पत्तों वाले वृक्षों पर वे सब आकर बैठ जाते है, सब प्रकार का कोलाहल करना छोड़ कर व आखें मूंद कर बड़े ध्यान से वन्सी की ध्वनि सुना करते है, वे प्राण प्यारे के मुख से निकली वाणी रूपी अमृत रस का पान करते हैं। भाग्य की गति ऐसी आके पड़ी है कि हरिश्चन्द्र कहते हैं हमें यह भी दुर्लभ है। अर्थात् उनका इतना सोभाग्य तो है कि पक्षी बनकर भी भगवान् की बजाई बन्शी सुन लेते हैं, परन्तु हमारे भाग्य में इतना भी नहीं।

बिशेष वैष्णवों के बिचार श्रीकृष्ण के प्रेम से ऋषि मुनि कुंज बिहार देखने के लिए पशु पक्षी बन कर ब्रज में बस गये थे।

सखी यह ... ... आनन्द ।

हे सखी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वाल बालों और गौवों को लेकर बन की ओर जाते हैं, उस समय वे दोनों बड़े मधुर स्वर से वन्शी बजाते हैं, उनकी ध्वनि कानों में पड़ते ही जगत् उस अपूर्व तान के प्रभाव से अपने गति चाल ढाल को भूल जाता है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि वृक्षों को भी रोमांच हो रहा है, अर्थात् वृक्ष,जड़ कहलाते हैं पर इस ध्वनि की माद्-कता का अनुभव उन्हें भी हो रहा है। स्थावर अर्थात् जड़ पदार्थ तो जंगम हो जाते चेतन की भांति सुख आदि का अनुभव करने योग्य हो जाते हैं। चेतन पदार्थ उसे सुन कर जड़ हो जाते है, ध्वनि की माद्-कता से प्रभावित होकर ठगे से रहजाते हैं। कन्धे पर गौवों को बांधने की रस्सी रखे, सिर पर साफा बांधे, गले में सुगन्ध के लोभी मतवाले भौंरों सहित वनमाला धारण किये और हाथों में फूल छड़ी लिए जब अपने सखा ग्वाल बालकों के साथ वंशी बजाते और गाते हुए आते तो हरिश्चन्द्र कहते हैं उनकी उस समय की शोभा को देखकर मन में

बड़ा ही आनन्द होता है।

मन मोहन ... ... ब्रज की वाम।

हे सुन्दर चतुर और सुजान प्यारे मन मोहन, देखो तुम्हारे बिना ब्रज के जीवन और प्राण अर्थात् ब्रज के सब लोग अत्यन्त ही दुःखी हैं। हे प्यारे ब्रज भूमि की सुन्दरी रमणीयां तुम्हारे लिये तुम्हें पाने के लिए सम्पूर्ण धन सम्पति और घर बार छोड़ कर बन २ में व्याकुल होकर घूम रही हैं। आपको ढूंढने के लिए सरी ब्रजबालाएं घरबार छोड़कर वन २ में चक्कर काटती हैं।

तनिक बांस ... ... देव विमान।

जब भी तुम बांस की छोटी सी बंशी हाथ में लेते हो त्योंही देवताओं की पत्नियां आप्सरायें अपने २ पतियों का साथ छोड़ कर बेचैन हो २ दौड़ी पड़ती हैं। हे मनमोहन! आपकी वंशी की तान देवता, मनुष्य और ऋषी मुनियों को भी मोहनेवाली है। उसे सुनकर यमुना का जल बहना बन्द हो जाता है और आकाश में सुनने के लिये आये देवताओं के विमान अपने स्थान से हिलते तक नहीं। इस भाग में चपलातिशयोक्ति अलंकार है, वंशी हाथ में लेने मात्र से अप्सराओं का व्याकुल होना दिखाया गया है।

जड़ चेतन ... ... श्याम को घेर।

जब आपकी वंशी में इतनी शक्ति है, इतनी मादकता है कि जड़ पदार्थ चेतन हो जाते हैं और चेतन जड़ हो जाते हैं तो हम अबलायें उसे सुन कर भला व्याकुल क्यों न हों। अर्थात् जड़ को चेतन और चेतन को जड़ करने की सामर्थ्य जिसमें है, वह तो असंभव को संभव और संभव को असंभव करने की शक्ति रखती है, उसके प्रभाव से बचने के लिये अत्यन्त प्रबल हृदय की आवश्यकता है। ब्रज बालायें इस वंशी की ध्वनि सुनते ही उठ २ कर दौड़ पड़ती हैं, उन्हें लोक लज्जा का कोई भय नहीं होता, अपने श्यामसुन्दर को घेरे रहती हैं, इस भाग में विरोधाभास और अर्थापत्ति अलंकार दिखाये गये हैं।

मगन भई ... ... ब्रज नारि।

सब ब्रज युवतियां अपना गोकुल ग्राम भुलाकर केवल कृष्ण रूप में मग्न हो गई हैं, तन्मय हो चुकी हैं, हरिश्चन्द्र कहते हैं, ऐसी अनन्य प्रेम परायण ब्रज बालाओं पर सेवक न्योछावर है। वे ब्रज बालायें धन्य हैं।

हम चाकर ... ... निवानी के।

हम तो राधा रानी के सेवक हैं, स्वामी श्रीनन्द कुमार हैं और स्वामिनी वृषभानु की कुमारी राधा है। हम सदा निर्भय रहते हैं, इनका आश्रय पाकर अभय पा गये हैं, संसारिक शक्ति काली से भी भय नहीं खाते, किसी से कुछ कहते भी नहीं हैं। हरिश्चन्द्र कहते हैं उस अवर्णनीय दिव्य सौंदर्य वाली मूर्ति पर दीवाने रहते हैं। सदा उसी मूर्ति में दत्तचित्त रहते हैं।

भौंरा रे ... ... पहिचान।

अरे भौंरे! तू तो केवल रस का लोभी है, केवल मधु और रूपरस या आनन्द चाहता है, इस लिये तेरा क्या प्रमाण, तेरा क्या विश्वास जिसका उद्देश्य ही केवल मधुपान हो, वह तो एक फूल पर रह ही नहीं सकता। एक का रस पिया और दूसरे पर जा बैठा, पहिले को भुला दिया। इसी प्रकार जो केवल रूप का लोभी है, वह नित्य नई २ रूपवतियों से प्रेम जोड़ता है और तोड़ता है, प्रेम को निभाता नहीं है, ऐसे का विश्वास नहीं किया जा सकता। इसी लिये उस से प्रेम भी नहीं करना चाहिये। तू तो अपने अनुभूत सुखों का गायन करके गुन्जार के मिस अपने अनुभूत सुख को गा २ कर सुना रहा है। मधु पी २ कर मतवाला हो २ कर फूलों पर घूम रहा है। मधुर मधु पी कर, इधर से उधर पागल सा दौड़ता फिरता है, मैं तेरी बात पहचान गई हूँ, तेरे फन्दे में कभी न पड़ूंगी। तेरी तरह से कच्चा और चलता प्रेम नहीं करूंगी।

प्रिय प्रान ... ... बल भाई।

हे प्रियतम हे प्राणनाथ जिसको देखकर या जिस के आश्चर्य पर

प्राण टिके हुए हों हे सुन्दर मन मोहन क्यों कि आपने मेरे मन को मोह लिया है वश में कर लिया है, इस लिए आप मेरी आंखों से क्षण-भर के लिये भी दूर न हों। हे घनश्याम, नये बादल के समान स्निग्ध श्यामल, कांति वाले, हे गोप और गोपियों के पति, उनके भी आप सखा और प्रेमी थे। हे गोकुल के स्वामी हे वृन्दावन के रक्षक, व्रज भूमि के सर्वस्व, हे बलराम के भाई! आप इन गुणों वाले होते हुए मुझ से दूर नहीं सदा मेरी दृष्टि के सामने बने रहें।

प्रानहुँ ते ... ... तें न्यारे।

तुम प्राणों से भी प्रिय हो, प्राण जांय पर तुम न जाओ, इसीलिये अत्यन्त प्रिय हो, हे मित्र कन्हैया, मित्र होने के नाते पास रहने का आग्रह किया जा सकता है। हे राधा के पति यशोदा और नन्द के लाड़ले तुम मेरी आंखों से क्षण भर के लिए भी दूर न होओ।

तुव दर्शन ... ... तें न्यारे।

आपके दर्शनों के बिना शरीर ऐसे २ में दुःख भर जाता है, आपके स्मरण के बिना यह जीवन बिषसा दुःख दायक प्रतीत होता है इस मेरे दुःखी जीवन के एक तुम्हीं रखवाले हो, हे प्रिय आप इस लिये मेरी आंखों से क्षण भर के लिये दूर न होना।

तुम हीं मम... ... ...तें न्यारे।

हे कन्हैया, आप ही मेरे जीवन के सहारे हो, आपके बिना में सम्पूर्ण सुख के साधन दुःखदायी हैं, आप को देख कर ही इस हृदय को सुख का अनुभव होता है, और कोई उपाय नहीं है, और किसी भी प्रकार से मुझे सुख का अनुभव नहीं होता। आपके बिना मुझे यह सारा संसार सूना दिखाई पड़ता है। हे मेरे जीवन के धन, जीवन के सर्वस्व, ऐसा कहने से उनका सामने रहना जीवन बनाये रखने का एकमात्र साधन है। आप मेरे नेत्रों से क्षण भर के लिये भी दूर न होओ।

तुम्हारे बिना... ... ...दृगन तें न्यारे।

आप के बिना मुझे एक २ क्षण भी करोड़ों कल्पों के स बिताना भारी लगता है। आपके बिना स्वर्ग भी महा दुःख दायी है।

बनवारी, तुम्हारे साथ तो बन भी घर से बढ़ कर है, घर में आपके बिना सुख नहीं मिलता और बन में आपके होने से वह सुख प्राप्त हो जाता है, अतः बन घर से अधिक सुख दायी स्वतः सिद्ध हो गया। हे गिरधर, हमारे तो सब कुछ तुम ही हो। हरिश्चन्द्र कहते हैं, हे प्यारे हमारा तुम पर जो कुछ अभिमान या भरोसा है, उसे बना रहने दो, और मेरी आँखों के आगे से क्षण भर के लिये भी दूर न होओ।

सखी ये··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···बुते छुरे।

हे सखी ये नेत्र तो बहुत ही बुरे हैं, ये आँखें बड़ी दुष्ट हैं। ये तभी से पराये हो गए हैं, जब से कि कृष्ण से जुड़ गये हैं, कृष्ण से लड़ने के बाद या उन्हें देखने के बाद ये अपने नहीं रहे हैं। मोहन को देख कर उसी आनन्द में मस्त रहते हैं, यदि थोड़ी देर के लिये भी हरि ओझल हो जायँ, सामने न रहें तो बड़े ही तड़पने लगते हैं। ये ऐसे निगोड़े हैं कि मेरी शिक्षा सब छोड़ दी मैं इन्हें जितना मनाती हूँ, समझाती हूँ, ये कुछ नहीं सुनते। सारा जगत् इनके कामों को देख कर चिढ़ गया, इन्हें बहुत रोका परन्तु यह अपने हठ से तनिक भी नहीं हटे, इन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा दीखने में तो ये अमृत से भरे हुए और कमल से शीतल लगते हैं परन्तु हैं जहर से बुझे हुए छुरे। सुख देने के स्थान पर और सताते ही हैं।

जो पै ऐसे हिं··· ··· ··· ··· ··· ··· ···जात कहीं।

यदि आपने ऐसा ही कुछ करना था,तो भला अपने मुख से प्रेम की बात क्यों कही। यदि छोड़ कर जाना था तो प्रेम का नाम क्यों लिया, हमने तो यह समझा था कि जैसा आनन्दमय समय अब बीत रहा है, सदा ऐसा ही बीतेगा, परन्तु विधाता ने तो हमसे सर्वथा उलटा ही कर दिखाया, पहली बात तो तनिक भी नहीं निभी मन मोहन पहले हमें मोह कर और अब भुलाकर और ही कहीं चल दिये, दूसरी ही चाल चलदी, अपना व्यवहार ही बदल दिया। कहती हैं, हाय।

क्या से क्या हो गया, कुछ कहा ही नहीं जाता ऐसी दशा हो गई, जिसकी कि कोई सम्भावना नहीं।

जोगिन ... ...विरह बधाई।

एक प्रेम को जोगिन आई है, उसके बड़े विशाल नेत्र हैं जोकि कानों तक फैले हैं, दृष्टि मद से अलसाई सी झूम रही है, दृष्टि में मस्ती प्रेमकी मस्ति है आँखों में ललाई हुई है. प्रेम व्यवहार में पूर्ण रूप से रंगी हुई है, अर्थात् प्रेम के मार्ग में बहुत बढ़ी हुई है, प्रेमियों को बहुत ही रुचिकर है, प्रेमी लोग उससे बड़े प्रसन्न या आनन्दित होते हैं। प्रेम नगर में भिक्षा मांगती फिरती है और विरह की बधाइयां गाती है। विरह में होने वाली वेदना को गाती फिरती है।

जोगिन ... ...सिराई।

इस प्रेम की जोगन के मुख्य पर घुंघराले बाल लटक रहे हैं जोकि सुन्दर होने से मन को बड़े ही प्यारे लगते हैं। शिर के बाल खुले हुए हैं गेरुवा चोला पहने हैं जिसने शोभा दुगुनी हो उठी है। वह साक्षात् प्रेम की सांचे में ढाल कर बनी मूर्ति सी हैं, जिसे देख २ कर आँखें ठण्डी हो रही हैं।

ब्रज वासी... ... .बनाई हमें।

विधाता को भला क्या सूझा कि सारा जगत् छोड़ कर इन कृष्ण वियोगी ब्रज वासियों के घर में ही हमें जन्म दिया, जन्म लेने के कारण हमें भी वही वियोग सहना पड़ा, प्रियतम से मिलना तो बहुत दूर की बात है, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि केवल नाम धराई, निन्दा अवश्य दे दी है कहावत है' 'बद अच्छा बदनाम बुरा, सो यदि मिलन हो जाता तो हृदय को कुछ सन्तोष तो हो जाता, पर मिलने की कोई आशा नहीं है, लोग अपने २ मन की बात अवश्य कहने लग गये हैं। संसार के अनेक प्रकार के सुखों से हमें वंचित करदिया और केवल यह वियोग का दुःख सहने के लिये ही हमें जीवित रहने दिया है, हाय विधाता! कौन सा वैर था जिसके कारण तुमने हमें केवल दुःख ही भोगने के

लिये बनाया, भाव यह कि सारे लक्षण आरम्भ से ही बुरे हैं, जन्म हुआ वियोगी ब्रज वासियों के घर में, जिससे परम्परा से वह वियोग हमें भी अपनाना पड़ा, बाद मे मिलन ही हो जाता तो भी कुछ सुख मिलता, पर मिलन की कोई आशा नहीं, हो बदनामी और गल पड़ गई, एक यही दुःख होता, और सुख मिल जाते तो भी सम्भव है कुछ शान्ति मिल पाती, पर सुख तो हमारे भाग में रखा ही नहीं, केवल दुःख ही भुगतने हैं, इसलिये जान पड़ता है विधाता ने अवश्य कोई पुराना बैर चुकाया है।

रोकहि जो··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· हमें समुझाइये।

बिछुड़ते समय यदि आप को रोकें तो अमंगल या असगुन होता है, यदि कहें कि हे प्यारे! आप जाओ तो प्रेम की हानि होती है, जाते समय किसी को टोकना या रोकना अशुभ कहा जाता है, इसी प्रकार किसी प्रिय व्यक्ति को जाने को कहा जाय तो प्रेम भाव के बिरुद्ध होगा, क्योंकि प्रिय व्यक्ति को तो अपने अधिक से अधिक समीप रखा जाता है, उसे जाने को कहे तो बुरा मानेगा, प्रेम जाता रहेगा। यदि कहें कि 'आप मत जाओ' तो यह अपना अधिकार चलाना होगा, तुम कहोगे कि यह तो बड़ा हुक्म चलाती है, प्रेम में तो आत्म समर्पण होता है, अधिकार भावना नहीं होती। इसलिये यह भी प्रेम की रीति के विरुद्ध ही है। यदि जाते समय कुछ भी न कहें न तो कहें कि जाओ और न कहें कि रुको तो भी प्रेम भाव बिगड़ेगा, क्योंकि प्रेम के विदा होते समय अपना प्रेम भाव, उसके गमन का अनोचित्य आदि दिखाना चाहिये और आदर से विदा देनी चाहिये, यदि जाते समय कुछ भी नहीं कहा तो यह समझेंगे कि इसे कोई प्रेम वेम नहीं है, नहीं तो मेरे जाने से क्या इसे कोई दुःख न होता। हरिश्चन्द्र कह रहे हैं कि यदि हम यह कहें कि आपके बिना हम नहीं जी सकते, तो भला विश्वास कैसे होगा, इस पर कैसे विश्वास करोगे। हे प्यारे! इन उलझनों

कारण आपके प्रस्थान के समय हम क्या कहें कृपा करके समझादो। अर्थात् जो कुछ हमारी समझ में आया, वह तो उचित प्रतीत नहीं होता अब तुम्हीं बताओ कि ऐसे समय क्या कहना चाहिये।

व्याकुल ही··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···मेरा सुनावै।

मैं प्यारे प्रियतम के बिना उनके वियोग (जुदाई) में व्याकुल होकर तड़प रहा हूँ, मेरी दशा देख कर कोई तो अपने मन में दया का भाव लाओ, कोई तो मुझ अभागे पर दया करो। प्रियतम की रूप सुधा की प्यास उस सुधा के बिना शरीर त्याग दूंगा, इस प्यासे पपीहे को कोई उस रूप माधुरी का रस पिलादे, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि कहीं हृदय में हवस बाकी न रह जाय, मरने के बाद कहीं कामना शेष न रह जाय, इसलिये कोई थोड़ा उठ कर दौड़ पड़ो, वह प्यारा आवे या न आवे पर कम से कम मेरा हाल ही जा कर उसे सुना दो, मरने पर मेरे मन में यही कामना रह जायगी कि उन तक मेरी दशा का समाचार नहीं पहुँचा, इसलिये कोई इतना काम तो कर ही दो, फिर आने न आने की उनकी इच्छा रहेगी।

दीन दयाल ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· नाम धरायो।

यदि निभाना नहीं था तो पहले दीनदयाल नाम धरा कर आगे दौड़ कर दीनों से प्रेम क्यों बढ़ाया था, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि इसी प्रकार वेदों में अपना नाम करुणानिधि क्यों रखाया था जो करुणा नहीं दिखानी थी, जब आप दीनदयाल और करुणानिधि कहलाते हैं तो आपको ऐसी रुखाई नहीं दिखानी चाहिये। अन्यथा यदि यही स्वभाव रखना था कि गरीबों पर भी रुखाई ही दिखानी थी तो 'गरीब नेवाज' नाम क्यों रखाया था। जब नाम रख लिया है तो उसे निभा कर दिखाना चाहिये।

यह संग में ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ५५।

ये आँखें साथ में लगी २ घूमती हैं, बिना तुम्हें देखे इन्हें धैर्य

नहीं आता, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि क्षण भर का वियोग होने पर भी प्रलय की चाल ठान लेती हैं अर्थात् प्रलय काल की सी अश्रु वर्षा करने लगती हैं, बरौनियों में ही फिरती रहती हैं न तो पलक झपती हैं न सर्वथा खुली ही रहती हैं, पलकों में समाना भी नहीं जानतीं, पलक नहीं मूंदती, कुछ देर तक बन्द भी नहीं रहतीं, हे प्यारे प्रियतम आपको देखे विना ये दुखिया आंखें नहीं मानतीं, इन्हे कल नहीं पड़ती। सदा आप को ही देखती रहना चाहतीं हैं।

व्यापक ब्रह्म ... ... नहिं मानती हैं।

गोपियां उद्धव से कहती हैं कि उद्धव, हम भी पहचानती हैं कि निर्गुण ब्रह्म सम्पूर्ण संसार में व्यापक है, वह सभी स्थानों में पूर्ण रूप से रमा हुआ हैं, परन्तु विना नन्दलाल के सदा व्याकुल होती हैं, इस लिए ज्ञान नहीं ठानतीं, इस कोरे ज्ञान को नहीं अपना सकती। उन्होंने जो कुछ निर्गुण ब्रह्म का सन्देश भेजा या ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया है, उसके बिषय में तुम जाकर श्रीकृष्ण से कुछ न कहना, केवल इतना कहनाा कि हम निर्गुण ब्रह्म या ज्ञान ध्यान तो कुछ नहीं जानतीं पर हे प्रिय तम ! आपको देखे विना हमारी ये आंखे नहीं मानती हैं। हमारी आंखें सदा आपको ही पाने के लिये तरसती रहती हैं।

सब आस तो ... ... प्रान तजैं।

प्रियतम की मिलने की सारी आशायें तो सब जाती रही हैं, सर्वथा छूट गई हैं, फिर भी न जाने कौन नाना प्रकार के मनोरथ करता रहता है, जबतक आशा रहती है तभी तक संकल्पों का होना संगत लगता है' पर जब सर्वथा निराशा हो जाती ह, उस समय संकल्पों का कोई अर्थ नहीं। परन्तु यहाँ इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य नहीं हो रहा है, निराशा में भी भान्ति २ के संकल्प होते रहते हैं, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि नित्य ही अनेक दुःख सहते हैं तथापि वे डटे हुए हैं, नतो डगमगाते और न कहीं भागते। अर्थात् नित्य भुगते जाने वाले दुःखों को देख कर वे संकल्प टूट जाने चाहिये और नवीन संकल्प होने बन्द हो जाने चाहियें पर ऐसा भी नहीं होता, वे संकल्प पूर्ववत् बने ही रहते हैं। ये प्राण

निशंक होकर इस शरीर में बैठे हैं, कृष्ण के वियोग में इन्हें उसी प्रकार बने रहते देखकर अनेक बार निरादर भी किया जाता है, परन्तु इन्हें फिर भी लज्जा नहीं आती। न जाने ये पापी प्राण किस मोह में पड़कर इस शरीर को नहीं त्यागते। वियोग में नित्य वेदना सहनी पड़ रही है, तथापि नित्य नये २ संकल्प उठते रहते हैं, शरीर पर विरह के आघात तीव्र हो रहे हैं, जीवन को व्यर्थ बता कर इन प्राणों को प्रति दिन बुरा भला कहते हैं, परन्तु ये इस शरीर को नहीं छोड़ते, न जाने किस बात का मोह पड़ा हुआ है। संकल्प नामक दशा और निर्वेद नामक संचारी संचारी भाव की अभिव्यक्ति है, विशेषोक्ति अलंकार है।

हाय दशा ... ... बर जोरन।

हाय इस मन की दशा किसे सुनाऊँ, कोई यहां ऐसा भी नहीं है जो कि उनके पास जाकर मेरी ओर से निहोरे ही करे, कोई मेरी सिफारिस करने वाला भी नहीं है, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि वैसे तो हितैषी करोड़ों बनते हैं परन्तु इस दुःख से छुड़ाने वाला कोई भी नहीं है। इसलिये हे प्यारे, गोवर्धन पर्वत को धारण करना याद कर के इन चोरों को दौड़ कर दूर करो, ये देखो, आपकी शरण में रहने वाले इस हरिश्चन्द्र के निवास स्थान को आंसू बलपूर्वक डुबा रहे हैं। पहिले आपने इन्द्र द्वारा की गई वर्षा से ब्रज को बचाने के लिये गोवर्धन पर्वत को धारण किया था, अब मेरे आंसू ही मेरे रहने के स्थान को डुबाये दे रहे हैं, इन से भी मेरी रक्षा करो।

केहि पाप सों ... ... भोर भयो।

वेदना की तीव्रता के कारण जागरण दशा के साथ २ निशा की दीर्घता की कामना दिखाते हैं, न जाने इतनी वेदना होने पर भी किन पापों के परिणाम स्वरूप हमें जीना पड़ रहा है, ये प्राण इस शरीर को नहीं छोड़ते हैं, न जाने क्या सोच कर इस तन में अटक रहे हैं। न मालूम, विधाता ने हमारे साथ क्या हठ ठान लिया है जो दुःख सहाना ही चाहता है। हाय! इसी प्रकार कलपते २ आज की रात भी बीत गई है, बिना प्रियतम के न जाने क्यों ये प्राण नहीं निकले,

इन अभागिनी आँखों को पुनः नित्य प्रति भुगते जाने वाले दुःख भोगने के लिये आज फिर सबेरा हो गया है। अर्थात् कल तो किसी प्रकार रात काटी ही थी, आज की रात भी योंही बीत गई है, कल पुनः यों ही कल्पना पड़ेगा, इन आँखों का भी दुर्भाग्य है कि दुःख समाप्त होने को आता ही नहीं।

जानत ही नहिं ... ... को कहूँ दुख।

संसार में आकर मैं यह भी नहीं जानती कि सुख कहते किस को हैं, सब लोग सुख का नाम लेते हैं पर मेरी समझ में नहीं आया कि ये किस को सुख के नाम से पुकारते हैं। मैं चैन का तो नाम सुनते ही चौंक पड़ती हूँ, नई वस्तु का नाम सुन कर मनुष्य का चौंकना स्वाभाविक है। संसार के अनेक प्रकार के विषय भोग गिनाये जाते हैं, परन्तु मैंने स्वप्न में भी उनका रूप नहीं देखा कि कैसे होते हैं। ऐसे लोगों से दूर ही बैठना अच्छा है, और तो क्या मुख देखना भी अच्छा नहीं, अरे भाई, मुझ दुखिया के समीप न रहो, कहीं ऐसा न हो कि मेरा दुःख उड़ कर तुम्हें भी जा लगे। लोक में देखा जाता है कि यदि कोई सदा दुःखी ही रहा हो तो यह तो होता नहीं, उस पर करुणा भाव दिखायें, उलटे उसको अशकुनी या मनहूस मान बैठते हैं, उसका मुख देखना भी अशुभ समझते हैं, इसी लिये कहा है कि मेरे पास बैठना तो क्या मेरा मुँह भी देखना अशुभ है। चतुर्थ चरण में दुःख को छूत के रोग के रूप में दिखाया है, प्रवाद है कि छूत का रोग एक से उड़ कर दूसरे को भी लग जाता है, पास जाने मात्र से फैल जाता है। इस लिये कहती है कि यह दुःख भी छूत का ही रोग है, तुम लोग मेरे पास न रहो, कहीं मेरा दुःख उड़ कर तुम्हें भी न दबा बैठे। आत्मग्लानि का उत्तम उदाहरण है।

वह सुन्दर ... ... रँग्यो सो रंग्यौ।

हे सखी, मन मोहन के उस सुन्दर रूप को देख कर मन मेरे हाथ से वह भगा और भाग ही गया। अर्थात् एक बार मेरे हाथ से निकल कर पुनः मेरे अधिकार में न आया, यह हृदय उस मधुर मूर्ति को देखते

ही उसमें डूबा था कि डूब ही गया, फिर उधर से नहीं हटा। अब मुझे औरों से क्या लेना, मुझे जो कलंक लगना था सो लग गया। अर्थात् मेरा मन अपने हाथ से निकल कर कृष्ण में रम गया, लोक इस बात को न सह सका, उसने 'कुलटा' 'स्वैरिणी' आदि विशेषण रख कर मुझे लाञ्छित कर दिया, पर वह कलंक या लाञ्छन अब छूट ता सकता ही नहीं, कोई कुछ क्यों न कहे, हे सखी, अब तो मेरा मन सांवले रंग में रंग गया है, कृष्ण प्रेम में रग गया है और नीले रंग में रंग गया है, ये रंग गया सो रंगा गया, अब इसने छूटना तो है नहीं न इस पर दूसरा रंग चढ़ेगा। श्रीकृष्ण का प्रेम आने पर किसी और से प्रेम नहीं हो सकता। इसी प्रकार नीला रंग ऐसा पक्का होता है कि न वह छूटता न उस पर दूसरा रंग ही चढ़ता है। प्रेम के वर्णों में नीली राग सब से उत्तम माना गया है। श्लेष अलंकार है।

धिक देह··· ··· ··· ··· ··· ··· ···विष घूँटनो है।

इस प्रेम को निभाने के लिये यदि शरीर भी त्यागना पड़े तो कोई बुरा नहीं यही भाव लेकर कहते हैं—हे सखी, जिनके कारण, जिनके मोह के कारण इस प्रेम को तोड़ना पड़े, वह शरीर और घर बार क्यों न छोड़ दिया जाय, उन शरीर और घर बार को धिक्कार है, उस प्राण प्यारे के बिना इन प्राणों को, इस जीवन को रख कर कौन सा सुख लूटना है जो इस शरीर कष्टों से घबराऊँ, इसकी दुर्बलता की चिन्ता करूँ या घर वालों की बात मानूँ। अब तो जो बात हो गई सो हो गई, यदि जीवन जाता है तो जाये, और अच्छा होगा, नित्य के झगड़ों से तो छुट्टी हो जायगी, हे सखी, अब तो और सब उपायों को छोड़ कर केवल विष का घूँट पीना ही शेष है। अर्थात् उस कृष्ण के प्रति प्रेम को छोड़ कर इस जगत् में बेप्रीति हो कर जीने से तो अच्छा है कि विषकी घूंट पीकर जीवन लीला ही समाप्त हो जाय, क्योंकि अब इस जीवन में कोई रस नहीं है, शरीर गिर

रहा है, घर के लोग विरुद्ध हो रहे हैं, कोई वस्तु अच्छी लगती नहीं है, ऐसी दशा में जी कर कहना ही क्या है, कम से कम नित्य के झगड़ों से तो पिण्ड छूटेगा। निर्वेद, विरति का उत्कृष्ट रूप है।

बाज्यो करै··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· लगाये लेति।

हे प्राण प्यारे, आपकी वंशी की ध्वनि नित्य ही बज २ कर मेरे कानों में गूँजती है आपकी मुख की कान्ति बल पूर्वक मेरे चित्त को चुरा रही है। आपका मुड़ २ कर स्वयं हँसना और औरों को भी हँसाना हमें जगत् से भी हँसाती है अर्थात् हमारी वह दशा होती है कि जगत् भी हमें हँसने लगता है और आपका मुड़ कर हँसना तो हमारे मन को सब से मोड़ देता है, आपका बोलना, चलना, बातें करना और आपके पीताम्बर की फहरान मिल कर मेरे धैर्य को मिटाये देती है। हे प्राण प्यारे, आपकी जुल्फें भी हमारी स्वाभाविक लज्जा रूपी तालों को तोड़ रही हैं, हमें निर्लज्ज बना रही हैं। अधिक क्या कहें, आपके कटाक्ष या आंखों के इशारे हमारे प्राणों को साथ ही लगाये लेते हैं, आंखों की मटकन देख कर प्राण वहीं लगे रह जाते हैं।

बोल्यो करै··· ··· ··· ··· ····· ··· ··· फहरयो करै।

मन की तन्मयता का वर्णन करते हैं हे प्रियतम, आप के नूपुर सदा मेरे कानों में गूंजती रहती हैं, मेरा मन सदा आपके चरणों, में विहार करता है, चरणों में ही लीन रहता है, मेरे रोम रोम में वंशी की ध्वनि रमी हुई है, मुख की मन्द २ मुस्कान मेरे मन को लुभाती रहती है। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि आपका चलना, मुड़ २ कर बातें करना ये सब मन में छाई रहती हैं और आपकी बातें दोनों कानों में गूंजती रहती हैं, इन प्राणों को आप सदा ही प्यारे रहते हैं, आपका पीला वस्त्र या पीताम्बर सदा मन में फर फराता रहता है।

घेरि घेरि··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· की सारी है।

वर्षा ऋतु विरहिणी के लिये बहुत सन्ताप जनक होती है, प्रिय

तम स्वयं इसका विचार करके यदि कहीं दूर भी होंतो अवश्य लौट आते हैं, परन्तु आप अभी तक नहीं आये। इस भाव को लक्ष्य करके कहते हैं—ह प्राण नाथ, बादल आकाश में उमड़ घुमड कर छाये हुए हैं, हमारे प्राणों के स्वामी तो आप ही हैं, फिर आपने भला क्यों सुधि भुलादी है, जो अभी तक नहीं आये हो, एक ओर जैसे बिजली चमक रही है, दूसरी ओर जुगनू चमक रहे हैं, आकाश में चारों ओर बड़ी २ बगुलों की पंक्तियां चल रही हैं, नील घनाच्छन्न गगन में धवल बक मालिका शोभा ही देगी इसलिये 'सँवारी' शब्द का प्रयोग किया है। ऐसे उद्दीपक समय में आपकी यह प्रिया तनिक भी धैर्य नहीं रखती, विरह वेदना के कारण बहुत ही व्याकुल हो रही है, हाय! आज की यह अंधेरी सावन की रात तो प्राण प्यारे नन्दलाल के बिना कटने में ही नहीं आती, यह सावन की रात है या द्रोपदी की साड़ी है, दुःशासन द्रोपदी की साड़ी खींचता २ थक गया था परन्तु साड़ी समस्त नहीं हुई, इसी प्रकार कलपते २ कितना समय बीत गया पर यह तो समाप्त ही नहीं होती। कितनी लम्बी रात है। कहीं यह भी द्रोपदी की साड़ी की भांति अनन्त तो नहीं हो गई? एक रात की ही यह दशा है तो अभी सारा महिना पड़ा है, वह कैसे कटेगा। उद्दीपन की चरम सीमा है। चतुर्थ चरण में सन्देह अलँकार है।

फूली सी ... ...सनेह की।

प्रेम हो जाने पर परिवर्तित मनोवृति पर प्रकाश डाला गया है जिन से प्रेमासक्ति का ज्ञान हो सके:— यह गोपिका कभी तो प्रसन्नता में फूली सी दीखती है, प्रिय के प्रेम का स्मरण करके प्रसन्न हो जाती है, कभी चकराती सी है कभी चौंक सी उठती है, ध्यान मग्न व्यक्ति सहस. चेत आने पर चौंक उठता है, कुछ रटती सी रहती है, कभी थकी सी लगती है थकने से आलस्य का बोध होता है। कभी दुःखी सी रहती है, प्रेम होने पर भी मिलन में बाधा के कारण दुःख स्वाभाविक है, घर की उसे कुछ भी सुधि नहीं रहती, ध्यानस्थ रहने से घर का ध्यान नहीं होता। कभी मोही सी, कुछ आकृष्ट सी दीखती है, अथवा अचेत सी

रहती है कभी ललचाई सी रहती है, जैसे किसी वस्तु ने उसे लुभा लिया हो, कभी कुछ लड्डू से खाये मन ही मन में प्रसन्न होती है, हृदय में अनेक प्रकार के मनोरथ और उनकी सफलता की आशा से प्रसन्नता होती है। वह आपको भुलाये सी रहती है अपने शरीर की चेतना नहीं रहती। किसी समय क्रोध में भरी रहती है, क्रोध होता है। प्रिय पर या बाधा के कारणों पर, कभी प्रसन्नता के कारण अँग में फूली नहीं समाती अपने मान के कारण प्रियतम द्वारा संभावित मान मनोबल की कल्पना से प्रसन्न हो जाती। ऐसे समय में हंस २ कर अधिक से अधिक उमंग भरी बातें करती है। इस प्रकार क. आकस्मिक प्रसन्नता या उदासी का कारण पूछने पर चिढ़ जाती है, उस से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, क्योंकि लज्जा और भय के कारण वास्तविक भेद को तो बता नहीं सकती, न लक्षणों से छिपा ही सकती है उत्तर के लिए कुछ बहाना बना नहीं पाती इस लिए कहते हैं कि हे प्रिये, हमने जान लिया ये सब चिन्ह प्रेम के हैं। तेरा जो नया प्रेम भाव हुआ है, उसी कारण यह दशा है। इसे नायिका भी मुग्ध प्रतीत होती हैं। अनुमान अलंकार है।

आइ कैं ... ... कोई की।

हे मन, इस सँसार में आकर न तो किसी से बैर कर जिसको जो इच्छा हो, कोई कुछ ही काम क्यों न करे, कुछ कहने को आवश्यकता नहीं, तू कितना ही गण्यमान्य श्रेष्ठ क्यों न हो जाय परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त कोई चाण्डाल हो चाहे म्वाले हों, चाहे अच्छे हों या बुरे, अपने जैसे पतित क्यों न हों पर तू किसी की निन्दा मत कर।

थाकी गति ... ... मुरझान।

विरह के कारण होने वाली दशा का चित्रण कर रहे हैं:—अंगों की गति थक गयी है, शरीर की शक्ति मन्द पड़ गई है, बुद्धि भी काम नहीं देती, शरीर भी सूख कर हड्डियों का झँखड़ सा होगया है और पीला पड़ता जा रहा है, बुद्धि बावली सी हो गई है कुछ असँगत सा

सोचने लगी है, हसना तो किसी ने छीन ही लिया है, सुख की सामग्री जहां तहां दूर जाने लग गई है। अर्थात् जितनी भी सुख सामग्री है, वह नहीं रुचती। हरिश्चन्द्र कहते हैं कि आपके विरह के कारण सम्पूर्ण जगत् भी दुःख मय हो गया हैं, आगे और कुछ भी होनी दीख रही है, इसे मृत्यु की संभावना की सूचना है। नेत्र कुम्हलाने लगे हैं, नेत्रों की शोभा जाती रही है, सूख कर आंखें नीचे धंस जाती हैं, वचन भी निकलने बन्द होने लगे है, अर्थात् इतनी असमर्थता आगई है कि बोलने की शक्ति भी मन्द पड़ गई है। प्राण भी मुरझाने लगे हैं। भाव यह है कि विरह करते २ आधि और व्याधि दोनों ने दबा लिया है, दशमी दशा भी समीप है, आक्रमण आरम्भ हो गया है, जितनी परीक्षा आपने करनी थी, हो चुकी है, आप मेरे प्राणों के स्वामी हैं, आपके ही आने पर प्राण बच सकते हैं, अभी भी समय है, अभी आजायेंगे तो प्राण रुक जायेंगे, अन्यथा बिलम्ब करने पर मुझे जीवित नहीं पा सकेंगे।

सुन्दर ... ... त्रिभंग की।

इसमें श्रीकृष्ण का नख शिख वर्णन करते हैं —जिनके अंग की शोभा करोड़ों गुने लावण्य की धाम हैं। सुन्दर चिकना सांवला रंग है, नख शिख सुन्दर ढला हुआ है, चरण कमल के समान कोमल हैं, नटवर के अंगों के मुड़ने की छटा बहुत ही अनोखी है, एक २ पोरी, एक जोड़ करोड़ों कामों की शोभा को न्योछावर करती हैं, तिरछी कमर से पेट तक तिरछे होकर खड़े हैं, पैर पर पैर रख कर कमर टेढी करके खड़े हैं, कोमल हाथों में वंशी लेने की मुद्रा या आकृति है, कानों में कुण्डल हैं मस्तक पर मोर की चन्द्रिका झुकी हुई है, ऐसे राधा वल्लभ त्रिभंगी अर्थात कमर गदन और पैरों से टेढ़े खड़े होकर वंशी बजाने वाले प्यारे कृष्ण की जय हो। बांके बिहारी श्रीकृष्ण की मूर्ति का शब्द चित्र हैं॥

पूरन सुकृत ... ... रमन जू।

जो भगवान् श्री गोपाल भट्ट जी के पूर्ण पुण्य फल हैं, उनकी भक्ति

से साक्षात् प्रकट होने के कारण पुण्यों के परिणाम कहे हैं। भक्ति महिपाल जी के संकटों को दूर करने वाले हैं संभवतः अम्बरीष से अभिप्राय है, जो गजेन्द्र को ग्राह से बचाने के लिये दौड़े थे, कौरवों की सभा में जिन्होंने द्रोपदी की लज्जा बचाई, देवराज इन्द्र का मद भञ्जन करने के लिए जिन्होंने पर्वतराज गोवर्धन को धारण किया, जिनके चरण अपनी दासी के सखी सम्प्रदाय से सहमत होने के कारण सम्भव है भारतेन्दु ने स्वयं के लिऐ कहा है, सम्पूर्ण दुखों और दीनता को दूर करने वाले हैं, सुख देने वाले और सब सम्पत्तियों के भवन हैं, वंशी और गाय चराने के समय हाथ में लाठी रखते हैं शिर पर मोर पंखों का मुकुट धारण करते हैं, हे राधा वल्लभ, ऐसे आप हमारे सम्पूर्ण पापों को दूर करो, अथवा दुःख हरो।

प्रगट प्रेम ... ... रस आगार।

श्रीकृष्ण भगवान् की कृपा से प्राप्त हुई यह प्रेम पद्धति, प्रेम मार्ग वाणी द्वारा प्रत्यक्ष की है, जिसके प्रभाव से हृदयाकाश में सदा आनन्द का बादल उमड़ा रहता है जो अद्भुत् प्रेम का घर है। साथ में रस शब्द का अर्थ जल भी लेना चाहिये। क्यों कि बादल रूप अर्थ की सँगति के लिए उस अर्थ की आवश्यकता है। इस प्रकार रूपक और श्लेष अलँकार है।

प्रेम परा वधि ... ... ब्रज चन्द।

प्रेम की पराकाष्टा स्वरूप, प्रेम की चरम सीमा पर पहुँची हुई, गोपियाँ प्रेम लक्षणा भक्ति में सर्व श्रेष्ठ कहाती हैं। प्रम मार्ग में सब से आगे बढो हुई गोपियों ने मन्द स्वर में बजाई गई बँशी की ध्वनि सुन कर सम्पूर्ण लज्जा भाव त्याग दिया और ब्रज के चन्द्र स्वरूप भगवान् को भजा, अपने सर्वस्व रूप से उन्हें अपनाया।

आरज पथ ... ... आमन्द।

वह गोपियां उस अलौकिक प्रेम से पूर्ण होकर साक्षात् ब्रज को मोहने वाले श्रीकृष्ण के मन को लुभाने लगी, उस प्रेम बंधन में विवश

होकर आर्यों के पति व्रत धर्म की मर्यादा से विरुद्ध भले ही हो गई। चाहे आये धर्म के पातिव्रत धर्म का उन्होंने उल्लँघन कर दिया, पर अपने अटूट और दिव्य प्रेम से श्रीकृष्ण के मन को भी वशी भूत कर लिया।

श्रीपद अँकित ……… ……… ……… ……… ……… लल चार।

श्री राधा कृष्ण के चरण जिन्हों से पवित्र हुई व्रज भूमि की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, उस भूमि को देखकर प्राप्त होने वाले सुख को पाने के लिये स्वयं लक्ष्मी का भी मन क्यों न ललचाने लगे। अर्थापत्ति अलँकार है।

एक कृपा ……… ……… ……… ……… ……… ……… पंकज धूरि।

श्री राधा रमण के एक अनुग्रह के ही प्रभाव से सुबुद्धि सद्गति और पूर्ण शुद्ध प्रेम प्राप्त हो जाते हैं, श्री राधा कृष्ण के चरण कमला की रज समीप होते ही उपर्युक्त तीनों फल पीछे २ फिरते हैं।

परम प्रेम ……… ……… ……… ……… ……… अयुनपौ हरि।

इस अत्यन्त उत्कृष्ट प्रेम दशा को कौन पा सकता है, मन और बुद्धि भी इसकी महिमा पर विचार करते थक गये हैं अर्थात् इस प्रेम की महिमा तक मन और बुद्धि भी नहीं पहुंच सकती हैं। इस प्रेम के वश में होकर स्वयं विश्व मोहन श्री कृष्ण भी आया हार जाना चाहते हैं, अपने आप पर अधिकार नहीं रखने पाते हैं। जो उन से इस प्रकार प्रेम करता है, स्वँय भगवान् उसके वश में हो जाते हैं।

अतुल रूप ……… ……… ……… ……… ……… ……… समाज।

गोपियों और गोपाल के रूप गुण और शील माधुर्य सभी अनुपम हैं, उन की साज सज्जा, शृँगार आदि भी अपूर्व हैं, उनका सम्पूर्ण समाज ही प्रेमानन्द से पूर्ण हैं।

अति इयोक्ति और असम अलँकार हैं। समालँकार की ध्वनि है।

परम प्रेम ... ... नन्द कुमार ।

जो कि अपने प्रेम भाव, आंतरिक गुण रूप और आनन्द के कारण सर्वोत्कृष्ट है, व्रज भूमि की अपार या अपरिमित सम्पत्ति हैं, ऐसी गोपिकाओं और श्रीनन्दकुमार की जय हो। अथवा प्रथम चरण गोपिकाओं का विशेषण मानें और द्वितीय चरण नन्दकुमार का तो अन्य ही अर्थ बैठता है, उस में यथासँख्या अलँकार होगा। शब्दार्थ में कोई अन्तर नहीं है।

रसखान

सुजान रसखान

शब्दार्थ

पृष्ठ १४६—पाहन=पत्थर। पुरन्दर-धारन=यहाँ 'पुरन्दर कारन' पाठ ही उचित है जैसा कि बहुत से स्थलों में पाठ पाया जाता है। उसका अर्थ होगा 'इन्द्र के कारण अर्थात् इन्द्र के कोप के कारण'। प्रस्तुत पाठ में अर्थ 'इन्द्र के कोप से बचाने के लिए' लेना चाहिए। कालिंदी-कूल-कदम्ब=यमुना के तीर पर स्थित कदम्ब का वृक्ष। लकुटी=लाठी। कलधौत=सुवर्ण। धाम=भवन, महल। हौं=मैं।

पृष्ठ १५०—मोर पखा=मोर के चन्दों का बना मुकुट। गुंज=रत्तियाँ। सारद=शारदा, सरस्वती। गनन्त=गिनते हैं। त्रिलोचन=शंकर। दिनेश=सूर्य। अभेद=अभेद्य, अविनाशी। हुतो=था। बनिता=स्त्री। कानि=मर्यादा, लिहाज।

पृष्ठ १५१—जैसिये=जैसी। पाग=पगड़ी। गोरज=गायों के खुरों की धूल। भाल=माथा। बनमाल=तुलसी के पत्तों और मन्दार के फूलों की माला। दुरचो=छिपा हुआ। पलोटतु=दबता हुआ। रहिबो=रहना। अटा=अटारी। टेरि=पुकारकर। गनिका=पिंगला नाम की गणिका। गीध=जटायु।

पृष्ठ १५२—सजीवनि=संजीवनी। पथ्य=हितकारक, रोगनाशक। जामन=दही जमाने के लिए जो दही दूध में लगाया जाता है।

पृष्ठ १५३—लबार=मूर्ख। दीठि=दृष्टि। प्रभुताई=ऐश्वर्य। मुक्ताहल=मोती। सकारे=कष्ट।

पृष्ठ १५४—बंक=तिरछी। रस=आनन्द। ढोटा=बालक। तरनि-तनूजा

यमुना। अनहितुन= जो अहित चाहते हैं। हितू=हितैषी। जे=जो। मनोज=कामदेव। प्रेम अयनि=प्रेम की घर। प्रेम बरन=प्रेम स्वरूप अथवा प्रेम से रंगे हुए। द्वन्द=जोड़ा।

पृष्ठ १५५—अमित=परिणाम से रहित। प्रेम बारुनी=प्रेम की मदिरा। अनिवार=अनिवार्य, जिसे टाला न जा सके। विधि-निषेध=शास्त्रों द्वारा जो कार्य करने योग्य बताये गये हैं और जो मना किये गये हैं। मात्सर्य=जलना।

पृष्ठ १५६—निष्ठा=दृढ़ विश्वास। इक अंगी=अधूरा, इकतरफा। इक रस=सदा एक सा रहने वाला। सर्वस्व=सब कुछ।

पृष्ठ १५७—एतो हूँ=इतना ही। अजीबो=अजीब। लही=पाई। स्रुति-सार=वेदों का निचोड़। अनन्य=असाधारण, अद्वितीय। बहुरि=फिर। सुद्धासुद्ध विभेद=शुद्ध और अशुद्ध के उपभेद। द्वैविध=दो प्रकार के।

पृष्ठ १५८—तूल=तुलना। अहै=है, होता है। ठसक=अभिमान। साहिबी=प्रभुता। श्री बन=वृन्दावन। जुगुल सरूप=राधाकृष्ण का स्वरूप। ललाम=श्रेष्ठ, सुन्दर। हरिचरन पदुम पराग=श्रीकृष्ण के दोनों चरण-कमलों की धूलि।

व्याख्या

(१) **मानुष हौं.....की डारन।**

श्री रसखान ब्रज भूमि, ब्रजवासी और श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम को प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि मैं आगामी जन्म में पुनः मनुष्य बनूँ तो मेरी यही कामना है कि ब्रज भूमि के अन्तर्गत गोकुल गाँव के ग्वालों के बीच में निवास करूँ। क्योंकि वे सभी श्रीकृष्ण के प्रिय भक्त हैं। यदि पशु बन गया तो मेरे वश की क्या बात है पशु स्वयं कुछ करने में असमर्थ रहता है, इसलिए और तो मेरे वश की कुछ बात है नहीं, यही अभिलाषा है कि नन्दबाबा की गौओं के बीच में भी चरा करूँ। हो सकता है, प्रभु मुझे सर्वथा अचेतन ही कर दें, इसलिए स्मृति और अनुरोध करते हैं कि यदि पत्थर बन जाऊँ तो उसी गोवर्धन पर्वत का बनूँ जिसे कि श्रीकृष्ण ने इन्द्र के कोप से ब्रज की रक्षा करने के लिए धारण किया था। यदि पक्षी बनूँ तो यमुना नदी के तीर स्थित

कदम्ब वृक्ष की डालियों पर बैठ कर वहाँ निवास करूँ।

रसखान वल्लभ सम्प्रदाय के अनुगामी कृष्ण-भक्त थे, अतः उन्होंने ब्रज भूमि पर अनन्य स्नेह प्रकट किया है।

या लकुटी.....ऊपर वारों

ब्रजवासी कृष्ण के वेष और ब्रज से अनुराग प्रकट करते हुए लिखते हैं कि मैं श्रीकृष्ण की इस लाठी और काली कमली पर तीनों—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—लोकों के राज्य को ठुकरा दूँ। अर्थात् इस ब्रज में गाय चराने के समय जो वेष धारण करते हैं, उसमें यह लाठी और कमली जो श्रीकृष्ण ने भी गोप वेष में धारण की थी मुझे प्राप्त हो तो मैं तीनों लोकों का राज्य इन पर न्यौछावर कर दूँ। उनकी सम्पत्ति मेरी दृष्टि में इन दोनों वस्तुओं के समक्ष कुछ भी नहीं है। मैं आठों प्रकार की सिद्धियों और नौ कुबेर के खजानों के प्राप्त करने से मिलने वाले सुख को नन्द की गाय चराने में भुला दूँ। अर्थात् इन आठ प्रकार की सिद्धियों और नौ खजानों का सुख नन्द की गाय चराकर मिलने वाले सुख से कहीं नगण्य है। रसखान कहते हैं कि मैं कब तृप्त होकर ब्रज भूमि के वन, बागीचों और तालाबों को इन्हीं आँखों से देखूँगा? मैं करोड़ों सोने के महल, करील के कुंजों पर न्यौछावर कर दूँ। करील वह वृक्ष है जिस पर हरे हरे फल लगते हैं, पक कर गुलाबी हो जाते हैं। इनको टींट, डेले, कैर आदि नामों से भी पुकारते हैं। ब्रज भूमि में इसकी अधिकता है।

मोर पखा.....न धरौंगी।

किसी गोपिका ने अपनी सखी को कहा कि कृष्ण का रूप धारण करे, इस पर वह उत्तर दे रही है कि मैं सिर पर मोर के चन्दो का मुकुट धारण कर लूँगी, गले में गुंजाओं—रत्तियों की माला भी पहन लूँगी, पीताम्बर अर्थात् पीला वस्त्र ओढ़ कर हाथों में लाठी लेकर गाती हुई वन में गौओं को ले ग्वालों के साथ घूमती फिरूँगी। मुझे वह रूप बहुत भाता है, तेरे कहने से मैं सारे वेष भर लूँगी। कृष्ण का वह सुन्दर वेष तो मुझे पहले ही प्रिय है। अतः उसका सम्पूर्ण वेष मैं भली प्रकार भर लूँगी, परन्तु वंशी बजाने वाले उन कृष्ण की वंशी को जो कि उनके ओठों से लग चुकी है, अपने ओठों से नहीं छुआऊँगी, होठों पर नहीं रखूँगी। मुरली स्त्रीलिंग है, मुरलीधर विशेषण

इस भाव को बताता है कि वह वंशी सदा कृष्ण के पास रहती है। यदि सौतन के साथ स्त्री पति का विशेष प्रेम देख ले तो उसे असह्य हो जाता है। यहाँ कृष्ण तो मुरली को सदा अपने संग ही नहीं रखते, होठों से लगाये रहते हैं। इसलिये ईर्ष्या का प्रभाव और भी बढ़ जाता है। यहाँ वही ईर्ष्या है, वह सदा कृष्ण के अधरामृत का पान करती रहती है। इसीलिये कहती है कि मैं उसे ओठों पर नहीं रखूंगी, ओठों से नहीं लगाऊँगी। यहाँ मुरली के स्त्रीलिंग से स्त्रीत्व के व्यवहार का आरोप किया गया है अतः समासोक्ति है। 'मुरली मुरली' इतने भाग में लाटानुप्रास है, 'अधरा, अधरा' में प्रमक है; 'धरा, धरा, धरो' में वृत्त्यानुप्रास है। इनकी संसृष्टि और एकवाचनानुप्रवेश संकर है।

गावें गुनी..... नाच नचावें।

श्रीकृष्ण की महिमा की अज्ञेयता और स्वभाव तथा ब्रजवासिनी महिलाओं की भक्ति के वश में हो उनकी लीलाओं पर कवि अपने उद्गार प्रकट करता है कि जिस ब्रह्म के गुणों को बड़े-बड़े रागी, संगीतज्ञ, अप्सराएँ और गन्धर्व नित्य संगीत द्वारा गाया करते हैं, सरस्वती और शेष नाग सभी उनके अनन्त गुणों का कीर्तन करते हैं, गणेश जी उनके असंख्य गुणों तथा नामों को गिनाते रहते हैं, अनन्त गुण होने के कारण उसके नाम भी अनन्त हैं गणेश जी उन को गिनाते रहते है, इसी प्रकार ब्रह्मा और शंकर भी उनके असंख्य नामों का गायन करते हैं परन्तु अन्त नहीं [redacted] बड़े योगी, सन्यासी जो ब्रह्मचारी रहकर सा[redacted] और जो साधना करके अणिमादि सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, सदा जिस[redacted] के लिये चित्त की एकाग्रता रूप समाधि लगाया करते हैं उसी ब्रह्म को [redacted]लों की छोकरियां एक लुटिया भर मट्ठे के लिये तरह-तरह से नचाती हैं।

सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री देवी है, शेषनाग सहस्र मुख वाले हैं, गणेश भी सर्वज्ञ हैं, ब्रह्म और शंकर ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न हैं, परन्तु ब्रह्म की महिमा इतनी दुर्ज्ञेय है कि उसका गायन इनकी शक्ति से भी बाहर है ऐसे ब्रह्म का भी गोपियों के पीछे पीछे फिरना और एक लुटिया भर लस्सी के लिये उनके इशारों पर नाचना अद्भुत रस की सृष्टि करता है। इस प्रकार विषम अलंकार बनता है। गोपियों की भक्ति की असाधारणता और भगवान्

की भक्त-वत्सलता भी व्यंग्य है कि वे गोपिकाओं के सहज प्रेम से इतने वशीभूत हो रहे हैं कि अपना सम्पूर्ण गौरव उपेक्षित करके उनकी अभिलाषा के अनुसार अपनी लीलाएँ दिखाते रहते हैं। इस प्रकार भगवान् की इस भक्त-वत्सलता की प्रशंसा से गोपिकाओं की भी प्रशंसा होती है कि उनका ऐसा अपूर्व प्रेम है कि उन्होंने अपने अनन्त प्रेम से ब्रह्म को भी अपना बना लिया। इस प्रकार स्तुति से स्तुति का बोध होने के कारण यहां व्याजस्तुति अलंकार भी व्यंग्य है।

सेस महेस ..... नाच नचावें।

पूर्वोक्त अर्थ को ही प्रकारान्तर से पुनः कहते हैं कि जिस ब्रह्म की महिमा को शेषनाग, शंकर, गणेश, सूर्य तथा देवताओं के राजा इन्द्र भी सदा गाया करते हैं; चारों वेद जिसको अनादि अर्थात् सब विश्व का प्रथम जिससे पूर्व कोई नहीं था, अनन्त अर्थात् जो सनातन है, कभी जिसका लय नही होता, अखण्ड जो सदा पूर्ण रहता है, कभी जिसके टुकड़े या भाग नहीं होते, अछेद्य अर्थात् जिसके दो भाग न हो सकें, और अभेद्य जो तोड़ा न जा सके, इस प्रकार अलौकिक सर्वशक्तिसम्पन्न बताते हैं, नारद जैसे योगी, शुकदेव और महात्मा व्यास जैसे सिद्ध ऋषि रात-दिन जिसका नाम रटते रटते थक गये, पर जिसका पार नहीं पा सकते, उस ब्रह्म को ही इन गोपों की लड़कियाँ लुटिया भर [illegible] के लिये मनमाने ढंग से नचाती हैं।

पिछले पद्य की भाँति ब्रह्म की महिमा के साथ गोपियों के प्रेम सम्बन्धी महत्त्व और उद्‌गार प्रकट किये हैं। अनुप्रास, अर्थापत्ति और विषम अलंकार हैं।

धूरि भरे ..... माखन रोटी।

श्रीकृष्ण रोटी खाते हुए खेल रहे थे, सहसा कौवा आया और उनके हाथों से रोटी छीन ले गया। कवि कृष्ण की उस काल की रूप माधुरी का वर्णन कर रहा है कि घनश्याम श्रीकृष्ण जी सांवले शरीर पर खेलते रहने के कारण लगी हुई धूल से अति सुन्दर प्रतीत हो रहे है उसी प्रकार उनके सिर पर चोटी भी सुन्दर गुँथी हुई है। वे मक्खन और रोटी हाथों में लिये आँगन में खा रहे हैं और खेलते फिर रहे हैं। उनके चरणों में पायलें बज रही हैं और पीली कछनी पहने हुए हैं। कविवर रसखान कहते है कि मैं भगवान्

की उस सुन्दरता को देख कर करोड़ों कामदेव और ६४ कलाओं में चतुर तथा १६ कलाओं के खजाने चन्द्र को भी न्यौछावर करता हूँ। उस कौवे के भाग्य की प्रशंसा कहाँ तक करें कि उनके हाथों से मक्खन-रोटी छीनकर ले गया। जिन भगवान् के दर्शनों के लिये देवता भी तरसा करते हैं, जो इतने सौन्दर्य के राशि हैं, उनके हाथ से कौवा भी रोटी छीन ले जाय तो बड़े आश्चर्य की बात है।

इसमें श्रीकृष्ण के बाल चापल्य और सौन्दर्य का वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलंकार है। श्री भगवान् की अज्ञेय लीला का महत्त्व भी सूचित किया है कि कौवा भी उनके हाथों से रोटी लेकर कृतकृत्य हो गया।

आयो हुतो..... .....चराइगो गैया।

श्रीकृष्ण गाय चराते हुए एक दिन किसी दूसरे गाँव के पास पहुँच गये। उस गाँव की गोपिका ने गोविन्द के मोहक रूप को देखा और उनकी मधुर मुरली की ध्वनि भी सुनी। अपनी सहेली के प्रति उस समय का वृत्तान्त और भगवान् के प्रभाव का वर्णन करती हुई वह कहती है कि अरी, वह आनन्द की खान अर्थात् असीम आनन्द प्रदान करने वाला वह रसिक हमारे गाँव के समीप ही आया था। गोपी 'कौन' के उत्तर में भगवान् का नाम न बताकर प्रभाव का ही उल्लेख करती है। क्योंकि सम्भव है नाम बताने से पहचाने भी या नहीं। प्रभाव से अवश्य जानती होगी। साथ ही सखी को यह सूचित करने के लिये कि तू बड़ी दुर्भाग्य वाली है जो उसको स्वयं नहीं देख पाई कहती है कि अरी उसका क्या वर्णन करूँ, तू उस स्थान पर नहीं गई नहीं तो स्वयं ही देख लेती। सखी 'उस' को जानने के लिये अधीर हो उठी, है, यह जानकर परिचय देती है कि जिसको देखकर इस ब्रज की नारियाँ उस पर अपने-अपने प्राण न्यौछावर करती हैं और बलायें लेती हैं, बलिहार होती हैं। इससे सूचित कर दिया है कि जिसके कारण सम्पूर्ण ब्रज की यह दशा है, उसे यदि तूने नहीं देखा और न उसे जानती है तो तेरा जन्म ही निरर्थक है। अब बतला रही है कि श्रीकृष्ण क्या प्रभाव छोड़ गये। कहती है कि यदुराय श्री मोहन ने तब से कुछ ऐसा जादू-सा फेरा है कि कोई भी गोपिका किसी अपने घर के बड़े-बूढ़े की लज्जा या मर्यादा का पालन नहीं करती, उसी की याद में बेसुध रहती हैं। वह मुरली की तान गा गया,

सारी स्त्रियों के हृदय में अपने प्रेम को जमा गया, अपने सौन्दर्य से सबके प्राणों को मुग्ध कर गया और अपनी गाय भी चरा गया, एक साथ सारे काम कर गया।

एक कर्ता और कई क्रिया होने से कारक दीपक अलंकार है।

सोहत है.....मांझ बसी है।

किसी गोपी ने श्रीकृष्ण के मनमोहन रूप को देख कर आंखें बन्द कर लीं, वह प्रेम में मग्न हो गई। हृदय में भी वही सुन्दर आकृति दिखाई दे रही थी। आँखों में वही मूर्ति बसी हुई थी। उस तन्मयता में उसने सामने कृष्ण की उपस्थिति का अनुभव करके घूंघट निकाल लिया। उस अकेली को घूँघट काढ़े खड़ी देखकर दूसरी गोपी उसे घूँघट खोलने को कहती है तो पहली कहती है कि घूंघट कैसे खोलूं, वह सलोनी मूर्ति तो मन में आकर बस गई है। इसी तात्पर्य को लेकर कवि वर्णन करता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के सिर पर जितनी सुन्दर पगड़ी बंधी हुई है, उतने ही सुन्दर मोर के चन्दे भी शोभा दे रहे हैं, अर्थात् सुन्दर रग-बिरंगी पगड़ी पर मोर के चन्दे बहुत फबते हैं। इसी प्रकार उनके हृदय पर अर्थात् वक्षस्थल पर जैसे तुलसी के पत्तों और मन्दार के पुष्पों की माला शोभा दे रही है, वैसे ही माथे पर वायु के कारण पड़ी गौवों के खुरों की धूलि भी शोभा पाती है। सांवले वक्षस्थल पर रंग-बिरंगे फूलों की शोभा, इसी प्रकार माथे पर पीली-पीली मिट्टी पड़ी है, अतः वह सौन्दर्य विशेष चमक उठा है। मिट्टी से भी उनका सौन्दर्य भूषित ही हुआ है। ऐसी दशा में उनके सौन्दर्य का अतिशय जाना जाता है। रसखान कवि कहते हैं कि उस आनन्द की खान रसिक कृष्ण को (पूर्वोक्त वेष में वन से आता देखकर सहसा बावली या दीवानी हो गई। उसने आँखें मूंद लीं। उसकी इस दशा को देखकर दूसरी ग्वालन हँसी और कहा कि अरी, यहाँ तो कोई भी नहीं है किस को देखकर घूँघट किये बैठी है, खोल इसे)। पहली कहती है कि अरी खोलूँ क्या? वह सुन्दरतम आकृति तो एकदम मेरी आँखों में बस गई है, वह सदा दिखाई देती रहती है। उसके होते भला घूँघट क्योंकर खोलूं। इस प्रकार एक ओर तो गोपिका के प्रेमातिशय का वर्णन दिया, साथ ही श्रीकृष्ण का अपूर्व सौन्दर्य और उसका प्रभाव दिखाया।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो ·····राधिका पायन ।

रसखान भगवान् की प्रेमवश्यता पर प्रकाश डाल रहे हैं कि मैंने ब्रह्म को पुराणों के गान अर्थात् कीर्तन में ढूंढा, उसको पाने की इच्छा से चौगुने चाव से वेद मन्त्र भी सुने । परन्तु कहीं भी कभी नहीं सुना कि उस ब्रह्म का कैसा स्वभाव है और क्या उसका स्वरूप है, कैसी आकृति है । वेद और पुराण 'नेति, नेति' अर्थात् 'ऐसा भी नहीं है' कहकर चुप हो जाते हैं । रसखान कवि कहते हैं कि मैं उसको पुकारता हुआ और ढूँढता हुआ थक गया परन्तु किन्हीं नर-नारियों ने उसका परिचय नहीं दिया कि वह वहाँ मिल सकता है । बड़े-बड़े महात्माओं से उसके विषय में पूछा पर जब उन्हें पता ही नहीं तो बताते क्या ? परन्तु मैंने उसे लता-गृह में छिपे हुए राधिका के पांव दबाते देखा । प्रेम जहां था, वहाँ वह मिल गया ।

कानन दै ····· ····· ····· ····· ····· न जैहै ।

एक गोपिका श्रीकृष्ण की मन्द मुस्कान का प्रभाव बताती हुई ब्रजवासियों को सचेत कर रही है । वह कहती है कि हे ब्रजबालाओ ! वह रसखान कन्हैया ज्यों ही धीरे-धीरे मुरली बजाना आरम्भ करेगा, तुम सब कानों में अंगुली दे लेना जिससे उसका जादू तुम पर न हो सके । वह गाय रूपी धन वाला गोपाल सुन्दर तान लगाकर अटारी पर गावेगा तो गाता रहेगा । मैं सारे ब्रजवासियों (विशेषकर स्त्रियों) को पुकारकर कहती हूँ, कल कोई चाहे कितना ही समझाता रहेगा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । अरी माँ, अर्थात् अरी सखी ! उस कृष्ण के सुन्दर मुख पर छाई वह मन्द-मन्द मुस्कान किसी से नहीं सही जायगी, अर्थात् उसकी मुस्कान को देखकर और वंशी को सुनकर कोई अपने आपको वश में नहीं रख सकेगी । इसलिए मैं पहले ही सबको सावधान करती हूँ कि अपने आपको पहले ही सावधान रखना बाद में समझाने का कोई लाभ नहीं होगा । अतः अच्छा यही है कि न कोई उस हँसी को देखे और न वंशी की ध्वनि सुनने पाये । तब कोई भी हानि नहीं होने पायेगी ।

द्रौपदि औ ····· ·····राखन हारो ।

इस पद्य में रसखान अपने मन को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण की करुणा पर अगाध विश्वास प्रकट करते हैं कि भगवान् के रक्षक रहते यमराज से उन्हें क्या भय है । इस प्रकार उन्हें अपने प्रेम पर पूर्ण विश्वास है । वे

कहते हैं कि भगवान् ने द्रौपदी, गणिका, हाथी, गृध्र जटायु और अजामिल से क्या और कैसे व्यवहार किया, क्या तू इसको नहीं देखता ? पति द्वारा त्यक्त और पत्थर की शिला बनी हुई गौतम महर्षि की पत्नी अहल्या का उद्धार कैसे हुआ ? प्रह्लाद का महान् कष्ट उन्होंने किस प्रकार दूर किया। द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी थी, तथापि वह पतिव्रता और प्रातः स्मरणीया मानी गई। गणिका जो पिङ्गला नाम की थी और गाना गाकर जीविका चलाती थी, तोते को 'राम राम' पढ़ाती-पढ़ाती मर गई तो बैकुण्ठ गई। हाथी का मगर के मुँह से उद्धार किया, मांस भक्षक पक्षी जटायु गीध का रामावतार में अपने हाथ से संस्कार करके उसे भी शुभ गति दी। अजामिल को पुत्र के उद्देश्य से नारायण नाम लेने पर भी अपना लोक प्रदान किया। अहल्या का रामावतार में चरणों से उस शिला को छूकर उद्धार किया। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मारने के लिए उस पर कैसे-कैसे अत्याचार किये, परन्तु उन कष्टों को भी दूर करके उसे बचाते रहे। हे रसखान ! तू क्यों चिन्ता करता है, बेचारा यमराज तेरा क्या बिगाड़ सकेगा ? जब मखखन का प्रेमी वह श्रीकृष्ण रक्षा करने वाला है तो भला तुझे किसका डर है।

इस पद्य में कवि ने अनेक धार्मिक कथाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया है। द्रौपदी की कथा महाभारत मे प्रसिद्ध है। वह पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की कन्या थी, किसी शाप के कारण उसको पाँच पतियों की पत्नी होना पड़ा था। इतना होने पर भी वह बड़ी भक्त थी। भरी सभा में चीर हरण के समय उसकी रक्षा की।

गणिका उन वेश्याओं को कहते हैं जो विशेषकर गाने बजाने का कार्य करती हैं। पिंगला नाम की एक गणिका तोते को राम-राम पढ़ा रही थी, अचानक उसी दशा में वह मर गई। मरते समय राम नाम मुख में होने से भगवान् ने उसे भी परम पद दिया।

गज—यह कथा गजेन्द्र मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। एक गजेन्द्र अपने यूथ के साथ एक महान् सरोवर के निकट जल पीने गया। पानी पीते समय एक मगर ने उसका पाँव पकड़ लिया और उसे खींचकर पानी मे ले चला। जब हाथी की थोड़ी-सी सूंड ही बाहर शेष रही तो उसने तालाब में से एक कमल तोड़कर एक स्वर से हरि नाम से भगवान् को पुकारा, उसकी पुकार

सुनते ही भगवान् तुरन्त वहाँ पहुँचे और सुदर्शन चक्र से मगर को चीरकर गजेन्द्र का उद्धार किया।

गीध—कवि का तात्पर्य जटायु से है। इसने सीता हरण के समय रावण के साथ महायुद्ध किया था और उसी के हाथों घायल हुआ। भगवान् राम ने उसका और्ध्वदैहिक संस्कार अपने हाथों किया था।

अजामिल—यह एक ब्राह्मण था जो कि दैव दुर्योग से दुर्व्यसनों में पड़ गया था। वेश्यागामी हो गया था। सभी दुष्कर्म इसने किये थे। बाद में छोटे पुत्र का नाम नारायण रखा। अन्तकाल में यम-दूत को देखकर भय विवश होकर नारायण को पुकारा। उसी के प्रतापों से भगवान् के पुरुषों ने तुरन्त पहुँचकर उसे नरक जाने से बचाया।

इस पद्य में कवि ने श्रीकृष्ण और राम में समान रूप से विश्वास प्रकट किया है। अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार है।

ये देखि.....आवतु है।

शंकर जी का वर्णन करते हुए कविवर रसखान कहते हैं कि यह शंकर जो कि धतूरे के पत्ते चबाते हैं, अपने शरीर से धूल लगाते हैं, चारों ओर जटायें एक दूसरे मे उलझकर लटक रही हैं, सिर पर सुन्दर नाग फहरा रहा है, शिरोमणि के रूप में नाग लिपटा हुआ है। रसखान कहते हैं कि जो भी मन लगाकर इनका ध्यान करते हैं अथवा कृपापूर्ण मन से यह रसखान अर्थात् सदा आनन्द में मग्न रहने वाले शंकर जिसको भी एक बार देख लेते हैं, जिस पर कृपा दृष्टि फेर देते हैं, उनके दुःखों के समूह को भगा देते हैं, सर्वथा उनके कष्ट दूर कर देते हैं। जिसने गजासुर की चर्म शरीर पर ओढ़ ली है, गले में लम्बी मुण्ड माला पड़ी है, वह पागलों की भाँति आ रहे हैं।

इसमें कल्याणकारी शंकर का प्रच्छन्न रूप दिखाया है जिसमें लोग उन्हें पहचानने नहीं पाते। परन्तु वे इतने दयालु हैं कि जिस पर भी कृपा दृष्टि करते हैं, उसी के दुःख दूर हो जाते हैं। गाल बजाने का अभिप्राय यह है कि कहा जाता है, दक्ष का शिर कट जाने पर जब विष्णु के कहने से उसे पुनः जीवित किया तो बकरे का शिर लगाया गया था। उसने बकरे की वाणी में शंकर की स्तुति की थी। स्वभावोक्ति व अनप्रास अलंकार है।

बैद की ओषधि ..... तोरे भरोसे ।

इस पद्य में कवि गंगा की स्तुति करता हुआ उसके महत्त्व का वर्णन कर रहा है कि हे अमृतपूर्ण गंगे ! जल का नाम अमृत भी है, साथ ही उसके जल की रोगनाशकता के लिये सुधा का तात्पर्य पीयूष हो जाता है, तब भाव होगा कि जल के रूप में अमृत से भरी हुई, भगीरथ राजा द्वारा पृथ्वी पर अवतारित गंगे ! मनुष्य तेरा आश्रय लेकर चाहे किसी वैद्य की औषध (दवा) न खाये, न किसी प्रकार का संयम अर्थात् नियम पालन करे जो कि रोगी के लिए आवश्यक है, हे माता तू मेरे वचनों को सुन, वह तेरे ही अमृत सदृश पवित्र, स्वादि और त्रिदोषहारी जल को पिये, तेरे जल को जीवन प्रदान करने वाला जानकर तेरे दर्शनों से भी प्रसन्नता का अनुभव करे, रसखान कहते हैं कि हे गंगे ! तू यदि पालन करे तो सम्पूर्ण कुपथ्य अर्थात् रोग के विरुद्ध वस्तुओं का सेवन (बदपरहेजी) भी पथ्य अर्थात् हितकारक बन जायें। तेरी शक्ति का इससे बढ़कर प्रमाण क्या होगा कि शंकर जी तेरे भरोसे पर ही मदार के पत्ते, धतूरे के फल खाते फिरते हैं और विष का पान करते हैं। जब तू ऐसे घातक विष को लाभदायक बना सकती है तो भला साधारण वस्तुओं का तो कहना ही क्या ?

इस पद्य में वैष्णवों के इस पद्य पर विश्वास प्रकट किया है कि—

'औषध जाह्नवी तोयं, वैद्यो नारायणो हरिः ।'

अर्थात् गंगा का जल तो औषध है और भगवान् कृष्ण वैद्य हैं। राम, कृष्ण, शंकर और गंगा सभी पर दृढ़ प्रेम प्रकट करने में रसखान का हिन्दू संस्कृति पर अनुरागातिशय प्रत्यक्ष है। गंगा के विश्वास से विष-पान न करने पर भी ऐसा उल्लेख करने में सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है ?

बैन वही ..... रसखानी ।

रसखान कवि अब मानव जीवन की सार्थकता श्रीकृष्ण की सेवा में ही बताते हैं कि वचन वही है अर्थात् वाणी वह सफल है जो कि उन भगवान् का गुणगान करे, जिसमें उनका कीर्तन किया जाय, सांसारिक बातों और पराई निन्दा-स्तुति करने वाली वाणी व्यर्थ है। कान वे ही सफल हैं जो उन मोहन की लीला-कथाओं और गुणों वाले वचनों को सुनें। केवल भगवान् सम्बन्ध रखने वाले वचनों को सुनने में कानों की सफलता है। हाथ वे

सफल है जो उनके शरीर के काम आएँ अर्थात् जिनसे उनकी सेवा होती हो। पैर वही है जो उनके पीछे-पीछे चलें, उनका अनुगमन करें, अथवा उनके दर्शनों के लिए जाएँ। जीवन वही है जो उनके प्राणों के साथ हो अर्थात् उन्हीं में लीन हो, उनमें मिलकर एक रूप हो जाय। मान या आदर वही है कि जो उनके मन की मानी करे, उनकी प्रसन्नता के अनुकूल आचरण करने में आदर और सम्मान है। इसी प्रकार रसखान कवि कहते हैं कि जो रसिक अर्थात् प्रेमी व्यक्ति आनन्द की खान श्रीकृष्ण के साथ रस अर्थात् प्रेम की खान बन गया है, जिसने उन आनन्द की खान भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अटूट प्रेम कर लिया है, वही सच्चा रसिक है।

यहाँ कवि ने अनन्यता प्रकट की है। चार बार रसखानि शब्द का प्रयोग किया है। पहला शब्द कवि के नाम का सूचक है। दूसरे का अर्थ है—रसिक, भावुक व्यक्ति। तीसरा भगवान् के लिए प्रयुक्त किया है, जिसका अर्थ है—आनन्द की खान या समूह। चतुर्थ का अर्थ है—प्रेमी या प्रेम की खान। एक शब्द का चार बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया है, अतः यमक अलंकार है, परिसंख्या भी है।

दूध दुह्यौ..... .....बगरायगौ।

अब मुरली की महिमा का वर्णन, उसका गोपियों पर प्रभाव दिखते हुए करते हैं कि कोई गोपी अपनी सहेली से वंशी का जादू बता रही है कि किसी ने तो दूध दुहा था, वह दुहा ही धरा रह गया। हे बहिन! जो गर्म किया था, वह भी रखा-रखा ठण्डा पड़ गया, मुरली को सुनकर गर्म करने या गर्म करके जमाने की सुध न रहने से जमाया न जा सका। वह धरा-धरा ही इस प्रकार खट्टा पड गया, जैसे उसमें जामन दे दिया हो। रस की खान वह श्रीकृष्ण जिस समय से वंशी की ध्वनि सुना गया, तभी से सारी गोपियों के हाथ और ही हो गये हैं और पैर भी और ही हो गये हैं। अर्थात् हाथ-पैरों पर किसी का अपना अधिकार नहीं रहा है, किसी के हाथ-पैर काम नहीं दे रहे हैं। इस वंशी के प्रभाव से जैसे पुरुष वैसे ही स्त्रियाँ, जैसे जवान वैसी ही बच्चियाँ, अरी और क्या क्या कहें, किस-किस को गिनायें, सारा ही ब्रज व्याकुल हो गया है। हे सखि! न-जाने यशोदा का छोकरा यह श्रीकृष्ण वंशी बजा गया या चारों ओर विष फैला गया है कि किसी को अपनी सुध-बुध

ही नहीं रही है। सन्देह, काव्यलिंग और अनुप्रास अलंकार हैं।

ग्वालन संग ..... फरकत हैं।

इस पद्य में कवि भगवान् कृष्ण का ब्रज के प्रति प्रेम प्रकट कर रहा है कि वे द्वारिका में भी गोकुल और वृन्दावन को नही भूलते हैं, उन्हे वहाँ ब्रज के उस प्रेमोल्लासपूर्ण जीवन की घड़ियाँ स्मरण हो आती हैं, जिसके कारण द्वारिका का राज व वैभव भी उन्हें तुच्छ प्रतीत होने लगता है। उसी अनुभव का वर्णन कर रहे है कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारिका में सोच रहे अथवा उद्धव सखा से कहते हैं कि ब्रज में ग्वालों, उन गोप-सखाओं के साथ वन को जाना, उनके ही साथ गाय चराना और तान लगाकर गाना याद करके, उसका विचार करते ही आँखें फड़कने लगती हैं। इस द्वारिका की गज-मुक्ताओं अर्थात् हाथी के मस्तक से निकलने वाले बड़े-बड़े मोतियों की मालाओं को ब्रज की रत्तियो (घुंघुचियों) की मालाओं पर न्यौछावर कर दूँ। हाय! उस वृंदावन के कुञ्जों की याद आते ही प्राण धड़कने लग जाते है। ब्रजवासी लोग रत्तियों की माला पहना करते है। ब्रज के घरों में काम आने वाला या लीपने में काम आने वाला गाय के गोबर का गारा मुझे अधिक प्यारा लगता है, उसके आगे मरकतमणि अर्थात् हरी मणि (पन्ना) से जड़े हुए ये महल अच्छे नहीं लगते। तात्पर्य यह कि इन पन्नों के जड़े महलों से गाय के गोबर से लिपे हुए ब्रज भूमि के कच्चे घर मुझे अधिक अच्छे लगते है। इस द्वारिका के मन्दर पर्वत से ऊँचे महल क्या है। ये क्या चीज हैं, इनसे अच्छे वे ब्रजभूमि के बाड़े या घेर मुझे अधिक प्यारे हैं, वे अभी भी मेरे मन मे खटक रहे है उनका स्मरण आते ही अभी भी मन व्याकुल हो जाता है।

यह कवित्त भाषा के विचार से रसखान के समान होकर भी उनका प्रतीत नहीं होता। इसमें कवि का नाम भी नहीं है। शुक्ल जी ने भी इसे अन्य कवि का पद्य दर्शाया है। इसमें व्यतिरेक और अनुप्रास अलंकार है।

कहा रसखानि ..... कुमार को।

अब कवि श्रीकृष्ण के प्रेम में ही जीवन की सार्थकता मानता हुआ उसके अभाव में बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्य को तुच्छ और व्यर्थ बतलाता हुआ कहता है कि परिमाण या संख्या से बाहर अतुल सम्पत्ति और उसका

सुख भी पा लिया तो क्या हुआ। यदि सम्पूर्ण शरीर में भस्म रमा ली और साधु बन गये तो भी क्या कर लिया। पंचाग्नि तप करके भी क्या-क्या लिया, इसी प्रकार पानी के भीतर गले-गले तक लेटकर तप करके क्या पाया। तपस्वी लोग गर्मियों में पञ्चाग्नि तप करते थे और सर्दियों में गले-गले तक पानी में बैठा या लेटा करते थे, रसखान जी कहते हैं कि इस प्रकार उग्र तप कर भी लिए तो क्या लाभ प्राप्त हुआ। और यदि समुद्र पर्यन्त अपने देश और समुद्र के पार वाले दूसरे देशों का अर्थात् सारे संसार का राज्य भी जीत लिया तो भी तुमने कुछ नहीं किया। बार-बार भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्रों का हर समय जप करना, इन्द्रियदमन और प्राणायाम आदि कष्टसाध्य कर्म, असंख्य चान्द्रायण, वायु भक्षण अर्थात् अनशन आदि व्रत करने और हजारों तीर्थों की यात्रा को भी हे मूर्ख! कौन पूछता है। संसार में मेरे विचार में वही गंवार है, वही विवेकहीन मूर्ख है जिसने भगवान् नन्द के लाड़ले श्रीकृष्ण के साथ सच्ची लगन से प्रेम नहीं किया, न उनके दरबार का सेवन किया अर्थात् न उनकी शरण में गया, हर समय उनकी ही सेवा में न लगा रहा। अर्थात् ऊपर लिखे कर्म भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रेम या उनकी भक्ति से ही सफल हैं। यदि भक्ति नहीं की तो ये कर्म करने से अपनी आयु व्यर्थ ही बिता दी।

इस प्रकार पुष्टिमार्गी विचारधारा के अनुसार भगवान् के साथ प्रेम-लक्षणा भक्ति करके उनका अनुग्रह पाने पर बल दिया गया है। विनोक्ति अलंकार और अनुप्रास अलंकार हैं। पुष्टि मार्ग का सिद्धान्त यही है कि जीवात्मा को अपने कल्याण के लिए भगवान् कृष्ण का अनुग्रह पाने का प्रयत्न करना चाहिए जो कि उससे प्रेम करके ही प्राप्त होता है।

कंचन के..... .....पट वारे सों।

पूर्वोक्त अर्थ को पुनः अन्य प्रकार से कहते हैं कि यदि इतनी सम्पत्ति प्राप्त हो जाय कि सुवर्ण के बने महल हों, जिनमें जड़े हुए लालों और माणिक्य आदि रत्नों के प्रकाश के कारण सदा दीवाली-सी मनी रहती है और वह सुवर्ण इतना चमचमा उठता है कि दर्शकों की दृष्टि चकाचौंध के मारे उन पर जमती ही नहीं। इससे अधिक अधिकार शक्ति का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ कि द्वार पर राजाओं की इतनी भीड़ लगी रहे कि प्रतीहार अर्थात्

द्वारपालों के टालने से भी नहीं टलती। अर्थात् बड़े भारी सम्राट् बन जायें और राजा लोग उसके अनुग्रह की इच्छा से सदा द्वार पर खड़े रहें, द्वारपाल उनको हटाना भी चाहें पर हटें नहीं और उनका आना-जाना जारी ही रहे। गंगा में स्नान करके मोतियों का खुले हाथों दान किया, बीसों बार वेद मन्त्र पढ़े, वेदपाठी बने, बड़ा कष्ट सहन करके योग समाधि भी लगाई। रसखान कवि कहते हैं कि यदि पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मन लगा करके प्रेम नहीं किया तो क्या किया। यदि ऊपर लिखे प्रकार से महान् सम्राट्, दानी और धर्मात्मा बन गये, ध्यान और योग की साधना भी कर ली, योगी बन गये, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमामृत का पान नहीं किया तो सब कुछ व्यर्थ है। कवि ने यह कहकर कि "मैं और सांसारिक अधिकारों का वर्णन कहाँ तक करूँ" सूचित कर दिया कि बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित कर लेना भी कृष्ण-प्रेम के बिना निःसार है। जो लोग थोड़ी-सी सम्पत्ति पाकर ही अभिमान में लीन हो जाते हैं और समझने लगते हैं कि अब हमने किसी की भक्ति करके क्या लेना है, उनका तो जीवन नष्ट हो ही गया। सम्राटों के सामने उनकी गणना ही क्या है। श्रीकृष्ण प्रेम में ही जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार कवि ने उदात्त, विनोक्ति और अर्थापत्ति अलंकारों का प्रयोग किया है।

गोरज बिराजै.....खान री।

कोई गोपिका अपनी सखी को गाय चराने के पश्चात् वन की ओर से लौट कर आते हुए भगवान् श्री कृष्ण को देखने के लिये आमन्त्रित कर रही है। वह दूर से ही उनको आता हुआ दिखा रही है। स्वरूप का वर्णन करती है कि मस्तक पर गायों के खुरों से उडने वाली धूल शोभा दे रही है। गले में मन्दार पुष्प और तुलसी के पत्तों से बनी वनमाला शोभा देती है, आगे-आगे गाय हैं और पीछे ग्वाल सखा हैं, वंशी से मधुर ध्वनि से गा रहे है। जिस प्रकार वंशी की ध्वनि अत्यन्त मधुर है, इसी प्रकार उनकी तिरछी चितवन और धीमी-धीमी हंसी भी आकर्षक है। हे सखी! तू अटारी अर्थात् छज्जे पर चढ़कर देख। अथवा अटा का अर्थ भवन लेना चाहिये जो कि कई-कई मंजिल के होते हैं। दूर की वस्तु को देखने के लिए ऊँचे मकान पर चढ़ा जाता है। इस प्रकार ऊँचे भवन पर चढ़कर यमुना नदी के किनारे कदम्ब के वृक्ष के

पास मे वह पीले वस्त्र—पीताम्बर का वायु मे फरफराना देख। दूर से इसी प्रकार किसी वस्तु को दिखाया जाता है। अब कौतूहल को समाप्त करती हुई कहती है कि वह रस अर्थात् आनन्द की खान आता हुआ आनन्द (प्रेम रस का आनन्द) बरसाता है, शरीर की विरहजात तपन को, जलन को शान्त कर रहा है, नेत्रो और प्राणो को प्रसन्न करता हुआ वह रसिया वन से आ रहा है। स्वभावोक्ति अलंकार है।

आपनो सो..... ....**छुड़ावहीं।**

जिस समय भगवान् कालिया नाग को नाथने के लिये यमुना के अन्तर्गत कालीदह मे कूद पड़े थे, उस समय ब्रजवासियो के मन पर जो बीती, कवि उसी समय का वर्णन कर रहा है। एक गोपी जो कि श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य रखती है, कह रही है यह यशोदा की भी उक्ति हो सकती है, परन्तु दूसरी गोपी का वचन मानने में चमत्कार बढ़ जाता है। कहती है कि हम तो सब के बच्चो को अपना-सा ही समझती हैं फिर कृष्ण के विषय मे तो कहना ही क्या है; ये नन्द और यशोदा सदा सारे ब्रज के सुख-दुःख में काम आते है। जिन ब्रजवासियों के कार्य में ये नन्द-यशोदा आते है, वे ब्रज के लोग तो देखो यमुना तट के पास भी नहीं फटक रहे है। कैसी स्वार्थान्धता है। रसखान कह रहे है कि वह गोपिका कहती है कि जो हमारा हित नही चाहते, उनसे मै अन्य दिन की बात का क्या वर्णन करूँ, अर्थात् जो हितैषी ही नही है, उनसे तो कहना ही व्यर्थ है, पर जो हितैषी बनते हैं वे भी आंखे चुरा रहे हैं। वे लोग यहां यमुना तट पर आये अवश्य हैं, परन्तु छुड़ाने के स्थान पर दृष्टि बचा रहे है अर्थात् बगलें झाँक रहे है। हे सखि! क्या कहूँ, सब खड़े हैं, खड़े तमाशा देखते हैं और केवल हाय-हाय तो कर रहे है पर कोई यमुना में कूदने का साहस करके मेरे कन्हैया को इस दुष्ट कालिय नाग से नहीं छुड़ाता। उस समय भगवान् को नाग ने अपने फणों पर लपेट लिया था।

अन्तःकथा—कालिय नाग एक सात फण वाला विषधर नाग था। पहले वह समुद्र के मध्य स्थित रमणक द्वीप में रहता था, परन्तु गरुड़ के भय से इस स्थान पर आकर रहने लगा था। उसके कारण यमुना के अन्तर्गत उसके स्थान से आगे-पीछे लगभग सौ धनुष (प्राचीन आयाम का परिमाण) तक कालीदह कहा जाता था। यह भाग वन में चरने के लिये जाने वाले

पशुओं का जल पीने का स्थान था। गरुड़ को शाप होने के कारण वह इस स्थान पर नहीं आ सकता था। इसलिये कालिय यहाँ पर निर्भय था। भगवान् ने इस नाग को नाथकर उसे इस स्थान से निकाल दिया था और यमुना के जल को शुद्ध कर दिया था। कहते हैं सभी नाग जाति के फणो के ऊपर चरण चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। अर्थापत्ति और अनुप्रास अलंकार है।

प्रेम वाटिका

या छवि पै.....सुर खोज ?

रसखान कवि कहते हैं श्री कृष्ण की इस सुन्दरता पर मैं करोड़ों कामदेवों को न्योछावर कर दूँ। जिस सौन्दर्य की उपमा को कवि लोग बहुत लगन के साथ खोज रहे है, ग्रन्थों में ढूंढ़ते फिरते हैं परन्तु उन्हें अभी तक कोई ऐसी उपमा मिली नहीं है। कामदेव से तो प्रत्येक व्यक्ति की उपमा देते हैं। ऐसी दशा में वह भला श्री कृष्ण का उपमान कैसे बन सकता है ? इस प्रकार वे अपने उपमान आप ही हैं। असम अलंकार है। साथ ही व्यतिरेक भी व्यंग्य है।

प्रेम अनिय..... मालिन द्वन्द।

कविवर रसखान कह रहे हैं कि पवित्र प्रेम एक बगीची या सुन्दर उद्यान है, प्रेम की खान या प्रेम का घर राधा जी और प्रेम के रंग-रूप वाले साक्षात् प्रेम के स्वरूप नन्दकुमार श्रीकृष्ण उस उद्यान के माली और मालिन का जोड़ा हैं। दोनों प्रेम की मूर्ति हैं। श्री राधा ने अपने आपको सर्व भाव से श्रीकृष्ण से एकरूप कर दिया है, सर्वथा उनका साहचर्य प्राप्त कर लिया है। अतः वे प्रेम की घर हैं, नन्दकुमार एक तो ऐसे सलोने हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हें देखकर उनके प्रेम के वशीभूत हो जाता है। साथ ही वे प्रेम के वशीभूत रहने वाले हैं। अतः दोनों प्रकार से भगवान् प्रेम के साकार रूप हुए। रसखान वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः उसके पुष्टि मार्ग के अनुकूल प्रेम लक्षणा भक्ति का पालन करते थे। इसीलिए प्रेम की महिमा गा रहे हैं।

राधा और श्री कृष्ण की परस्पर तुलना करके सूचित कर दिया है कि दोनों एक-दूसरे के अनुरूप हैं। अतः सम अलंकार हो जाता है।

प्रेम प्रेम.....क्यों रोय।

संसार में प्रेम-प्रेम सभी लोग पुकारते हैं, परन्तु उसको पहचानता कोई नहीं कि प्रेम है क्या ? यदि लोग प्रेम को पहिचान जाएँ कि क्या है तो ये संसार रो-रोकर क्यों मरे ? तात्पर्य यह है कि संसार में प्रेमी बनना तो सभी चाहते हैं, पर वास्तव में प्रेम करना कोई नहीं जानता। यदि संसार सच्चे दिल से प्रेम करे तो रो-रोकर न मरे। क्योंकि कोई तो प्रेम को कोसते दिख ई देते हैं कि—

जो मैं ऐसा जानती, प्रीति किये दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति न करियो कोय॥

परन्तु वास्तव में वे प्रेमी नहीं हैं। प्रेम में तड़फन जो होती है, सच्चा प्रेमी उसे सहर्ष स्वीकार करता है। वह तो वेदना को भी आनन्द मानता है। उसके विरह में अपने आपको तिल-तिल करके घुला डालता है। जैसे जायसी का कहना है कि—

मुहमद कवि जो विरह भा, रहेउ रकत न मासु।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी को तो प्रियतम सदा हृदय में दिखाई देता है—**सौ जोजन साजन बसै जानो हृदय मंझार।** और—

दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥

ऐसी दशा में प्रेम के लिए रोना-पीटना सच्चा प्रेमी कभी नहीं कर सकता।

प्रेम अगम .....रसखान।

रसखान कवि कहते हैं कि प्रेम समुद्र के समान अगम है अर्थात् उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता, तथा उसकी किसी से उपमा नहीं दी जा सकती, न उसका कोई परिमाण है। जिस प्रकार कोई समुद्र अथाह, अपार और अनन्त होता है, उसमें कोई व्यक्ति प्रवेश करने का साहस नहीं कर सकता, इसी प्रकार यह प्रेम का मार्ग ऐसा है कि यह कठिन है, सहसा इस पर कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता। इसका सच्चा ज्ञान पाने के लिए कोई उपमा भी नहीं है, जिससे तुलना करके बता दे कि इतना गहरा और इतना विस्तृत है। उसकी कोई सीमा नहीं है। संसार में किसी वस्तु का ज्ञान पहले तो प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है, यह ज्ञान पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, कर्ण, रसना, नासिका,

और त्वचा) के द्वारा होता है। जो ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा सम्भव नहीं उसका किसी अन्य धर्म के द्वारा अनुमान करके पाने का प्रयास किया जाता है। अनुमान के लिए किसी उदाहरण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रेम-समुद्र का कोई समान ही नहीं। ऐसी दशा में कोई उदाहरण नही बनता, तो अनुमान भी नहीं बनता, उपमान भी इसका कोई नहीं। शब्द के द्वारा भी इसका यथार्थ ज्ञान सम्भव नहीं, क्योंकि वह अपरिमित है। अतः कैसे भी उसका ज्ञान सम्भव नहीं। इसके आगे कहते हैं कि इस प्रेम समुद्र के पास जो कोई पहुँच जाता है, फिर वह वापिस नहीं लौटता। जैसे समुद्र में एक बार गोता खाकर जीव पुनः जीता नहीं लौट सकता, इसी प्रकार इस प्रेम समुद्र के समीप आकर, इसका सेवन करके पुनः संसार में जन्म लेने को नहीं लौटता। भगवान् से प्रेम करने के बाद उनका अनुग्रह प्राप्त होते ही सम्पूर्ण जन्म-मरण के बन्धन भग्न हो जाते हैं। उपमा और असम अलंकार हैं।

प्रेम बारुनी ..... जात गिरीस ।:

प्रेम रूपी मदिरा छानकर अर्थात् पीकर ही वरुण देवता समुद्र के स्वामी बन गये। उन्होने भगवान् के प्रेम की मदिरा या रस पिया तो भगवान् ने भी उन्हें समुद्रों का स्वामी बना दिया कि इच्छानुसार रस-पान करो। प्रेम से संसार की कल्याण-कामना के कारण श्री शकर ने जो समुद्र से निकला हुआ अत्यन्त तीव्र ज्वाला वाला कालकूट, विष पिया था, उसी के कारण वे आज भी महादेव के नाम से पूजे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सच्चा प्रेमी संकट और ऐश्वर्य दोनों को समान रूप से देखता है, वह दूसरों के कल्याण के लिए महान्-से-महान् कष्ट उठा लेता है। समुद्र-मन्थन के समय उससे निकले हुए विष से देव और दानव दग्ध होने लगे तो भगवान् शंकर ने सबके कल्याण के लिए उसको पी लिया। सर्व समर्थ होने से विष ने उस पर केवल इतना प्रभाव दिखाया कि गला काला पड़ गया। तभी उन्हें नीलकण्ठ अर्थात् नीले गले वाला कहते हैं। कवि कह रहा है, इसी प्रेम के कारण वे आज भी महादेव कहे जाते हैं। अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है जिससे कवि ने दिखाया है कि भगवान् के प्रति प्रेम ही संसार में प्रतिष्ठा और सुख-सम्पत्ति पाने का एकमात्र साधन है।

प्रेम रूप..... .....**अनमोल**।

यह प्रेम-रूपी दर्पण अर्थात् शीशा अजीब ही तमाशा दिखाता है, क्योंकि इस दर्पण का आश्रय लेने पर अपना रूप कुछ अन्य और अमूल्य अर्थात् असाधारण सुन्दर दीख पड़ेगा। साधारण दर्पणों में तो वही सबसे उत्तम समझा जाता है जिसमें कि मनुष्य की आकृति यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बित हो। जिसमें ठीक दिखाई न दे, उसको खराब कहते है। पर यहाँ उलटी बात है कि इस निराले दर्पण में अपना स्वरूप निराला और असाधारण सुन्दर दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि भगवान् के साथ घनिष्ठ प्रेम करने के पश्चात् जीवात्मा पर भगवान् का अनुग्रह हो जाता है, जिससे अविद्या या अज्ञान का जो आवरण उस जीव पर पड़ा हुआ था और जिसके कारण वह अपने आपको भी न पहचान पाता था, संसार को ही सत्य समझता था, वह सहसा हट जाता है, इससे जीवात्मा अपने स्वयं प्रकाशमय—

ईश्वर अंश, जीव अविनासी। चेतन, अमल, सहज सुख रासी॥

रूप को पहचान लेता है। इस दार्शनिक तथ्य को कवि ने समझाना चाहा है। यहाँ व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

कमल तन्तु ....**अनिवार**।

अब प्रेम की विलक्षणता का वर्णन करते हैं कि प्रेम कमल की डण्डी के बीच निकलने वाले तागे के समान बारीक है और तलवार की धार के समान कठोर है। कमल का सूत्र बहुत सूक्ष्म होता है, वह सहसा भासित नहीं होता। इस प्रकार प्रेम भी बहुत सूक्ष्म भाव है जो कि मनोविज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण सहसा प्रतीत नहीं होता तथा उसका रहस्य या वास्तविक स्वरूप कोई-कोई जानता है। इसी प्रकार जैसे तलवार की धार पर कोई टिक नहीं सकता, इसी प्रकार प्रेम का मार्ग बहुत कठिन है। उस पर आने वाली कठिनाइयों पर कोई ही विजय पा सकता है। यह अत्यन्त सरल या सीधा है, इसमें छल-कपट के लिए कोई अवकाश नहीं है और किसी आडम्बर की आवश्यकता नहीं है, परन्तु साथ ही बहुत टेढ़ा अर्थात् दुर्गम है। इस प्रकार यह प्रेम का मार्ग अनिवार्य है। मानव जीवन के लिए आवश्यक है। जो अपने जीवन को सफल करना चाहता है, उसको इस प्रेम मार्ग पर अवश्य चलना चाहिए। अथवा इस प्रेम-पन्थ की यह कठिनता अनिवार्य है, किसी प्रकार दूर नहीं की जा सकती। इस दोहे में सूक्ष्म पुनः कठिन, सरल फिर

टेढ़ा, इन परस्पर विरोधी गुणों का उल्लेख करने से विरोधाभास अलंकार है।

लोक वेद.....को नेह।

प्रेम के आश्रय में जाने पर मानव अन्य किसी बन्धन में नहीं रहता। मनुष्य प्रेम करने के पश्चात् संसार की सामाजिक मर्यादा तथा शास्त्रोक्त कर्मों का नियम या व्रत, सन्ध्या आदि का बन्धन सम्पूर्ण लज्जा के व्यापार, किसी प्रकार के भी सन्देह या द्विविधा और शास्त्रीय विधान तथा निषेधों के प्रति प्रेम को या आकर्षण को बहा देता या दूर कर देता है। विधि का अर्थ होता है, शास्त्र जिस कर्म को करने की आज्ञा दे। किसी कार्य को न करने की शास्त्रीय आज्ञा निषेध कही जाती है। सन्ध्या आदि कर्म करने की आज्ञा विधि है, झूठ बोलना और चोरी करने के विरुद्ध आज्ञा निषेध है। कवि का तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब तक प्रेम का अनुभव नहीं करता, वह शास्त्रीय बन्धनों के फेर में रहता है। अपने भावों को प्रकट करने में लजाता है, सफलता में उसका विश्वास नहीं होता। वह विधि और निषेध के फेर में शास्त्रीय कर्म करता रहता है। पर प्रेम करने के पश्चात् वह इन बन्धनों से पार निकल जाता है। प्रेमी को किसी की लज्जा नहीं होती, किसी पर सन्देह नहीं होता, प्रियतम पर विश्वास रहता है, कर्मों का बन्धन नहीं रहता। इस प्रकार वह असाधारण शक्ति रखता है।

सास्त्रन पढ़ि.....रसखान।

कुछ लोग शास्त्रों को पढकर पण्डित बन जाते हैं, मुसलमान कुरान को पढ़कर मौलवी बन जाते हैं, परन्तु यदि उन्होंने पेम का रहस्य नहीं जाना तो कुछ नहीं किया। अर्थात् पण्डित लोग तो शास्त्र पढ़कर उनके वाद-विवाद में लगे रहते हैं। मुल्ला कुरान के अनुसार बाहरी आचारों रोजा-नमाज की व्यवस्था में लगे रहते हैं, वे भगवान् को जान ही नहीं सकते। उनको जाने बिना सारा ज्ञान और पढाई व्यर्थ है।

काम क्रोध.....मुनिवर्य।

मुनियों में श्रेष्ठ अर्थात् बड़े-बड़े मुनि लोग कहते हैं कि प्रेम बहुत पवित्र है, वह काम अर्थात् विषयों की इच्छा, रोष, अहंकार, ममता, डर, लालच, लोगों से वैर रखना, ईर्ष्या, इन सब बुरे भावों से दूर रहता है। जिसके हृदय

में ये दुर्भाव होंगे, उसके मन में प्रेम नहीं रह सकता। जो भगवान् से प्रेम करता है, वह किसी से वैर नहीं करता, कभी गर्व नहीं करता, सबसे मीठा व्यवहार करता है। किसी की उन्नति को देखकर जलता नहीं। जो ईश्वर से प्रेम करना चाहे, उसे उपर्युक्त दोष त्याग देने चाहिये।

बिनु गुन.....रसखानि।

कवि कहता है कि सच्चा प्रेम किसे कहते हैं। जो प्रेम किसी के गुणों, यौवन, सौन्दर्य, धन और किसी स्वार्थ के बिना हुआ हो, वही सच्चा प्रेम होता है। जो वासना से रहित होने से पवित्र हो, किसी इच्छा के कारण न हुआ हो, ऐसा प्रेम सब प्रकार के सुखों की खान होता है।

अति सूछम.....भरपूर।

यह प्रेम अत्यन्त बारीक है, अणुमात्र है, बहुत ही कोमल है, कठोर भोंवा के आगमन से नष्ट हो जाने वाला है। बहुत पतला है, बहुत दूर की वस्तु है, बड़ी कठिनता से मिलने वाला है, यह सदा एक-सा रहने वाला और पूर्ण रहता है। इस प्रेम का निभाना बहुत कठिन है। प्रेम का सम्बन्ध हृदय से होने के कारण वह मनोवैज्ञानिक व्यापार है, इसलिए इन्द्रियों से उसे नहीं जाना जा सकता, सच्चा प्रेम कभी घटता-बढ़ता नहीं। स्थूल कारणों से उसका अनुभव नहीं होता। इसलिए उसका सब भावों से विशेष महत्व है।

जग में.....अकथ कहायैं।

कविवर रसखान कहते हैं कि संसार में अन्य सभी तत्व जाने जा सकते हैं, और सभी का कहने के अवसर पर वर्णन भी सम्भव है, अर्थात् सभी कहे जा सकते हैं। परन्तु वे जगदीश्वर भगवान् और उनका यह प्रेम तत्व दोनों ही अकथनीय (जो कहे न जा सकें) दिखाई देते हैं। प्रेम का तत्व गूढ़ है। अतः जिस प्रकार भगवान् की महिमा या उनके स्वरूप का वर्णन असम्भव है, इसी प्रकार उनका यह प्रेम भी रहस्यपूर्ण होने से अज्ञेय है। इस प्रकार दोनों को समान स्थिति पर लाकर उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया है।

जेहि बिनु जाने.....कछ सेस।

अब कवि बता रहा है कि उस प्रेम तत्व को जाने बिना कुछ भी नहीं जाना जा सकता और यदि उसको जान लिया जाय तो सब कुछ जान लिया।

फिर कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता। सो कहते हैं कि जिसको जाने बिना अर्थात् जिस प्रेम का रहस्य जाने बिना संसार में विशेष रूप से कुछ नहीं जाना जा सकता। सामान्य ज्ञान तो सृष्टि, आत्मा और परमात्मा के विषयों में और पुस्तकों से भी जाना जा सकता है। परन्तु वास्तविक तत्व-ज्ञान जो कि विज्ञान के नाम से पुकारा जाता है, इस प्रेम के बिना नहीं जाना जा सकता। इसके साथ ही इस प्रेम-तत्व को जान लेने पर मनुष्य को जानने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। इस प्रकार के महत्व से भरा भाव प्रेम कहा जाता है।

दम्पति सुख.....रसखान।

रसखान कहते हैं कि पति और पत्नी का परस्पर प्रेमजन्य आनन्द, संभोग तथा सांसारिक भोगों का आनन्द, पूजा, श्रद्धा और ध्यान या मन को एकाग्र करके उसमें इष्ट देवता का स्मरण करना आदि सभी व्यापारों से शुद्ध और विकारशून्य प्रेम सर्वथा दूर है। कामनाओं से किया गया प्रेम शुद्ध नहीं होता। अतः वह निकृष्ट है। अर्थात् शुद्ध प्रेम का आनन्द इन सभी बातों से परे है।

मित्र कलत्र.....सविसेह।

रसखान जी कहते हैं कि संसार में यद्यपि मित्र, पत्नी, भाई, पुत्र इनमें स्वाभाविक प्रेम रहता है, मनुष्य इनके प्रति स्वभाव से ही प्रेम रखता है, तथापि वह शुद्ध प्रेम नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इनके प्रति प्रेम तो सकारण है। सकारण प्रेम स्वार्थमूलक होता है, जिस प्रेम में स्वार्थ का तनिक भी लगाव होता है, वह शुद्ध प्रेम नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि प्रेम की कहानी अकथनीय है, उसे कोई कह नहीं सकता। अकथनीय विषय भी यद्यपि अनेक हैं, तथापि प्रेम विशेष रूप से अनिर्वचनीय है। उसमें पवित्रता की मात्रा निष्कामना पर निर्भर है।

इक अंगी.....प्रेम प्रमान।

रसखान कवि अब शुद्ध प्रेम का स्वरूप बताते हैं कि जो प्रेम एकांगी हो, दोनों ओर से न हो, अकारण हो, किसी उपकार या स्वार्थ के कारण न हुआ, हो, सदा एक-सा रहे, कभी घटे-बढ़े नहीं, सदा समान रहे, अचल और निर्विकार रहे, और जो प्रियतम को सब कुछ समझे, उसके सामने सांसारिक

वैभव को कुछ न गिने, वही सच्चा प्रेम कहा जाता है। यहाँ कवि गहराई में गया है। संसार प्रेमी और प्रेमिका दोनों के परस्पर प्रेम को ही पूर्ण मानता है। परन्तु ऐसा प्रेम तो लेन-देन ही है। सच्चा प्रेम तो अपने प्रिय के न मिलने पर भी कुछ शोक से आकृष्ट नहीं होगा। वह तो उसको हरदम मन में बसाये रखता है। इसलिए विरह में वर्तमान होकर भी जो प्रेम सदा एकरस रहे, वही सच्चा प्रेम है। विरह ही प्रेम की सच्ची कसौटी है। जो सच्चा प्रेमी है, वह विरह को ही अधिक प्रिय मानता है।

(२) **प्रेम प्रेम सब कोउ..... उसांस।**

कवि कहता है कि संसार में प्रेम का नाम तो सब लेते हैं पर प्रेम करना सहज नहीं है। प्रेम का फन्दा बहुत कठिन है। प्रेम के कारण जीवन-भर हृदय तड़पता रहता है। उस तड़पन में ऐसी तीव्रता है कि हर समय भीतर कौंचती रहती है। उससे छुटकारा पाने के लिए अन्तर से प्राण भी तो नहीं निकलते। केवल सांस चलती रहती है। गहरे प्रेम की तडपन शीतल दाह की भाँति सुलगती रहती है। बाहर जीवन के चिन्ह सांसों की गति चलती रहती है। इस प्रकार मरता भी नहीं। तभी तो कबीर ने कहा कि—

विरह बान जेहि लागिया, औषधि लगत न ताहि।
सिसकि-सिसकि मरि-मरि जिये, उठै कराहि-कराहि॥

तथा जायसी कहते हैं कि –

मुहमद कवि जो विरह भा रहेउ न रकत न मासु।
डरै सदा..... बलानौ सोय।

इस पद्य में कवि प्रेमी का कर्तव्य समझा रहा है कि प्रेमी को चाहिए कि वह सदा डरता रहे। प्रेम में वैसे निर्भयता चाहिए, परन्तु इस बात से उसको सदा डरता रहना चाहिए कि मेरे प्रेम या सेवा भाव में किसी प्रकार की कमी न रह जाय। अपने प्रेम के बदले में किसी प्रकार की इच्छा न करे अर्थात् प्रेम निष्काम हो। जो कुछ ऊपर आ पड़े, उसे सह ले, घबराये नहीं। विरह की वेदना से व्याकुल न हो। अपने अनुराग से, दृढ़ता से, सदा एक-सा रहे, कभी घटे-बढ़े नहीं। उसको ही सच्चा प्रेम कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रेम करते समय सावधानी की आवश्यकता रहती है। प्रियतम की प्रसन्नता को

सबसे प्रमुख समझना चाहिए। निष्काम और सावधानी से किया गया प्रेम सच्चा होता है।

प्रेम हरी को ..... अरु धूप।

कवि बताता है कि भगवान् और उनके प्रेम में द्वैतभाव (भेद) नहीं है। दोनों एकरूप हैं। कहना है कि प्रेम साक्षात् भगवान् का रूप है और स्वयं भगवान् भी प्रेम का ही स्वरूप हैं। अर्थात् भगवान् और प्रेम दोनों एक हैं। जैसे सूर्य और धूप दोनों पृथक् न होकर भी दो आकारों में पृथक्-पृथक् दिखाई देते है, इसी प्रकार भगवान् और उनके प्रति प्रेम दोनों अभिन्न हैं। तात्विक दृष्टि से एक हैं। परन्तु व्यवहार में कह दिया जाता है कि भगवान् के प्रति प्रेम करो। ऐसा कहने से भेद बुद्धि हो जाती है। इस पद्य से कवि ने दो बातें कही हैं—१. भगवान् साक्षात् प्रेम अर्थात् प्रेममूर्ति हैं, वे प्रेम से ही राझते हैं, २. शुद्ध प्रेम वही है जो भगवान् के प्रति हो। सांसारिक प्रेम प्रेम नहीं कहलाता।

प्रेम फाँस ..... जीवत नाहिं।

रसखान कहते हैं कि संसार में जो कोई प्रेम के बन्धन में पड़कर अपने आपको मिटा दे, वह सदा जीवित है या अमर है। जिसने प्रेम करना नहीं सीखा, वह जीता भी मरे के समान है। जिसने प्रेम का रहस्य जान लिया वह मरकर भी जीता है। प्रेम का रहस्य या तत्व जाने बिना कोई भी मरकर नहीं जीता, एक बार मरकर वह जीवित नहीं माना जाता। तात्पर्य यही है कि जीना वही कि प्रेम में अपनी सत्ता को मिटा दे। इसके बिना जीता रहना भी मरना ही है।

जग में सब ..... प्रेम कहाय।

संसार में सबसे बढ़कर प्यारा प्रायः शरीर ही समझा जाता है, परन्तु इस शरीर से भी प्यारा प्रेम कहलाता है। तात्पर्य यह है कि शरीर की रक्षा के लिए मनुष्य तो क्या, सम्पूर्ण जीव प्रयत्नशील रहते हैं। उसको सुरक्षित बनाये रखना ही चाहते हैं। परन्तु जब इस प्रेम-मार्ग पर चलते है तो इसकी मर्यादा की रक्षा के लिए शरीर को भी सुखा डालते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि प्रेम सबसे महान् है।

जेहि पाये बैकुण्ठ..... सु प्रेम कहाहि ।

प्रायः कर्म और अनुष्ठान करने वाले स्वर्ग, वैकुण्ठ अथवा भगवान् के दर्शनों की इच्छा रखते हैं। परन्तु सच्चा प्रेम वही कहाता है, जिसे पाने पर वैकुण्ठ और भगवान् की भी इच्छा नहीं रहती। अर्थात् न तो यह इच्छा रहती है कि भगवान् के दर्शन हों, न यही कामना रहती है कि उनका लोक वैकुण्ठ मिले। ऐसे प्रेम को ही अलौकिक कहते हैं। अर्थात् सांसारिक वासना और स्वार्थों के कारण होने वाले प्रेम को प्रेम नहीं समझा जाता। वही शुद्ध या पवित्र कहा जाता है। उसे ही शुभ अर्थात् कल्याण करने वाला कहना चाहिए। सच्चे भक्त भगवान् के प्रेम में इतने तन्मय हो जाते हैं कि भगवान् को सदा अपने ही पास समझते हैं। इसके अतिरिक्त वे उनकी सेवा को ही सर्वस्व मानकर मुक्ति की इच्छा नहीं करते। भगवान् से पृथक् रहना ही उन्हें अच्छा लगता है।

कोउ याहि ..... दिल सों मेल।

कोई तो इस प्रेम को फांसी कहते हैं, कोई कहते हैं कि तलवार है, कोई बर्छी कहते हैं, तो कोई भाला बताते हैं, कोई उसे तीर या बाण कहकर कोसते हैं, तो कोई ढाल कहकर बड़ाई करते हैं। पर कवि कहता है कि हमने यही सुना है कि प्रेम एक निराला खेल है। इसमें दो हृदय आपस में भिड़ते हैं या मिलते हैं और प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है। दो दिलों की उस मुठभेड़ में आत्मसमर्पण की बाजी लगती है। जैसे कबड्डी खेली जाती है तो कुछ शर्त या बाजी लगाई जाती है। इसी प्रकार इस प्रेम को निभाने के लिए जान तक लड़ा देनी पड़ती है। २४ और २५ वां दोहा परस्पर सम्बन्ध रखते हैं। इसको युग्मक कहा जाता है।

सिर काटो..... वाह वाह ही लेहु।

प्रेमी का चाहे सिर काट दो, कलेजा चीर दो, उसके टुकड़े टुकड़े कर दो। पर वह फिर भी वाह-वाह ही करता रहेगा। इस काटने के बदले उस प्रेमी से हँसी के साथ वाहवाही ही मिलेगी। अर्थात् प्रेमी इतना करने पर भी घबरायेगा नहीं। वह मुस्कराता ही रहेगा। उसको उसमें भी प्रेम-व्यापार का ही अनुभव होता है।

याही तेसब ..... जगत के नेम

रसखान कहते हैं कि प्रेम ने मुक्ति से बड़ाई इसी कारण पाई है कि मुक्ति

चाहने वाले को तो संसार के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये प्रयत्न करना पडता है और सफलता भी कम ही मिलती है। परन्तु जब हृदय में भगवान् के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है, तो संसार के सम्पूर्ण आचार और मर्यादाओं के नियम-बन्धन आप ही आप छूट जाते हैं। मुक्ति के ज्ञानमार्ग में तो इन बन्धनों से छुटकारा पाने का निरन्तर प्रयत्न करना होता है, पर प्रेम में वे आप ही आप छूट जाते हैं। अतः प्रेम की मुक्ति से महत्ता स्वतः सिद्ध हो गई। व्यतिरेक अलंकार है।

हरि के सब.....**बड़प्पन दीन।**

कवि कहता है कि संसार में सब कुछ तो भगवान् के अधीन है, उन्हीं के वश में है, परन्तु वे भगवान् भी प्रेम के वश में हैं। वे प्रेम की मर्यादा के बन्धन में हैं, जो उनसे प्रेम करता है वे सदा उसके समीप रहते हैं। इस कारण ही भगवान् ने स्वयं इस प्रेम को बड़प्पन या महत्त्व दिया है।

वेद मूल सब.....**अनिवार।**

सम्पूर्ण वेद और उनके निचोड़ (शास्त्र) यही कहते हैं कि धर्म वेदों पर आधारित है। अर्थात् वेदों से उक्त यज्ञ और अन्य कर्म सभी धर्म हैं। परन्तु रसखान कहते हैं कि उन वेदोक्त कर्मों से भी बढ़कर सर्वश्रेष्ठ महान् धर्म यह भगवान् का प्रेम है। यह मानव के लिये आवश्यक है। कारण यह है कि वे कर्म तो स्वर्ग आदि के लालच में फंसाये रहते हैं परन्तु प्रेम ऐसा है कि जिसके बिना मानव का कल्याण नहीं हो सकता।

जदपि जसोदा.....**गोपी भई अनन्द।**

रसखान कहते हैं कि यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ दृढ़ प्रेम करके यशोदा और नन्द जिन्होंने उनसे वात्सल्य भाव का प्रेम किया था तथा गोकुल के अन्य गोप बालक जो श्रीकृष्ण के बाल सखा थे, ये सभी प्रशंसा के योग्य हैं, परन्तु इस संसार में प्रेम करने में गोपियाँ असाधारण हो गईं। विश्व-भर में कोई उनकी समता नहीं कर सकता।

वा रस की.....**दूजो को आहि।**

रसखान कहते हैं कि प्रेम के आनन्द की मिठास को कुछ तो उद्धव ने प्रशंसा करके प्राप्त किया। अब फिर उस मिठास का अनुभव करे, ऐसा दूसरा कौन है। उद्धव जो कि ज्ञान के मद में चूर होकर ब्रज गये थे, गोपियों और गोपों

के प्रेम को देखकर तन्मय हो गये थे, तथा मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशसा करने लगे थे। अब और कौन है जो उस प्रेम की गरिमा को जानकर उसका आनन्द ले सके।

स्रवन कीरतन ..... ताके नेम।

प्रिय का गुण और नाम आदि सुनने से, उसके रूप-गुण आदि का वर्णन करने से तथा दर्शन से मानव में उसके प्रति आकर्षण रूप में जो भाव उत्पन्न होता है, उसे ही प्रेम कहते हैं। शुद्ध और अशुद्धके भेद से उसके रूप दो प्रकार के हैं।

स्वारथ मूल ..... जाहि को तूल।

जो प्रेम किसी स्वार्थ के कारण उत्पन्न हुआ हो अथवा किसी कामना से किया गया हो, वह अशुद्ध होता है, जो स्वभाव के अनुकुल निष्काम भाव से स्वाभाविक रूप से होता है, वह शुद्ध प्रेम होता है। नारदादि भक्तों ने विस्तार से इसका वर्णन कर दिया है अथवा दोनों प्रकार के प्रेमों की तुलना की है।

रसमय ..... रसखान।

रसखान कवि कहते हैं कि जो प्रेम सदा आनन्द से पूर्ण हो, विरह वेदना में भी एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कराये, जो स्वाभाविक हो अर्थात् किसी कृत्रिम कारण से उत्पन्न न हो, जो स्वार्थ से शून्य हो। क्योंकि स्वार्थ मूलक प्रेम रीति ही रहता है। जो अडिग हो, विरहजन्य कष्टों के कारण जो टूट न जाये और सदा समुद्र के समान गम्भीर, निर्विकार व सम न रहे, उसी को शुद्ध प्रेम कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि सांसारिक प्रेम सदा सहेतुक होता है। भगवान् के प्रति अहेतुक प्रेम ही उत्तम माना जाता है।

जातें उपजत ..... कहावत प्रेम।

कवि अब प्रेम के आलम्बन कारण और आश्रय की सम न स्थिति स्वीकार करता हुआ कहता है कि जिस मूल कारण के द्वारा प्रेम उत्पन्न होता है, वह बीज भी प्रेम होता है तथा जिसके प्रति अथवा जिस हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है, वह क्षेत्र (खेत) भी प्रेम ही कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एक खेत में बीज डालने से अन्न की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार एक के प्रेम से दूसरे के मानस में भी प्रेम का उद्भव होता है। प्रेम ही प्रेम का मूल है। प्रेम

की उत्पत्ति से आगे प्रेम की वृद्धि हो जाती है। बीज और क्षेत्र दोनों के रूप में प्रेम को ही बताया है, अतः यह विरोधाभास अलंकार है। प्रेम की प्रधानता ही कवि का तात्पर्य है।

जाते पनपत..... ..... रसखान।

प्रेमी (रस का जो अनुभव कर चुके है) ऐसे रसखान कवि कहते है कि जिससे प्रेम उत्पन्न होता है, जिससे वह पुष्ट होता है, पुनः आगे बढ़ता है, बाद में बहुत अधिक फलता-फूलता है, जिन भावों और कारणों से प्रेम की उत्पत्ति और पुष्टि होती है, वे प्रेम ही कहलाते हैं। अर्थात् प्रेम के द्वारा ही उसकी उत्पत्ति और पुष्टि होती है। जो कुछ भी उसकी पुष्टि के कारण हैं, वे सभी प्रेम हैं।

जो जातें जामें .....रसखानि अशेस।

जो भाव जिस आलम्बन को देख-सुनकर जिस हृदय में उत्पन्न होता है, तथा जिसकी वृद्धि और पुष्टि के लिये उस प्रियतम के स्वरूप का वर्णन किया जाता है, रसखान कवि कहते है कि संसार में वह सब कुछ एकमात्र प्रेम है। कवि ने प्रेम की तन्मयता और अनन्यता दिखाने के विचार से ऐसा कहा है। प्रियतम को देख या सुनकर हृदय में उनके प्रति जो भाव उत्पन्न होता है, वह प्रेम है; जिसको देखने या सुनने से प्रेम होता है, वह प्यार भी प्रेम ही है, जिसके हृदय में यह पावन प्रेम उत्पन्न हो गया, वह भी प्रेम स्वरूप ही है, इसी प्रकार जिस भाव की पुष्टि और स्थिरता के लिये प्रभु का स्वरूप वर्णन किया जाता है, वह भाव भी प्रेम है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रेम से किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध रखने वाला कारण प्रेम ही कहा जाता है।

देखि गदर.....रसखान

अब कवि संक्षेप में अपना परिचय दे रहे हैं कि प्रेमी रसखान ने साहिबी अर्थात् राज्याधिकार के लिये दिल्ली नगर को परस्पर विद्रोह के कारण श्मशान हुआ देखकर क्षण भर में शाही खानदान का सारा अभिमान छोड़ दिया।

प्रेम निकेतन..... .....सरूप ललाम

इसके पश्चात् प्रेम के घर अर्थात् जहाँ कि शोभा को देखकर प्रत्येक प्रेम से पूर्ण हो जाता है, ऐसे वृन्दावन में पहुँचकर गोवर्धन तीर्थ पर आकर मन में बड़ी अभिलाषा करके अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर युगल किशोर राधा और कृष्ण के चरणों में शरण ली।

———

बिहारी

शब्दार्थ

पृष्ठ २८५—भवबाधा=सांसारिक आवागमन का कष्ट । नागरी=स्त्री जनोचित हाव-भावों में कुशल । झाईं=झलक, परछाईं, छाया, ध्यान । स्यामु=सांवले रंग के कृष्ण, सांवला रंग, काले रंग वाला, पाप । काछनी=छोटा कच्छा । बानिक=वेष ।

पृष्ठ २८६—गति=दशा, स्वभाव । जोय=देखो । तऊ=तो भी । गुजन=रत्तियां । चन्द्रिकनि=चन्दे । ससिसेखर=चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले शंकर । सेखर=सिर पर लगाने वाला आभूषण । सुभग सिरमौर=सुन्दरों का शिरोमणि । अजौं=आज भी । मकराकृति=मगरमच्छ के सामान टेढ़े । समर=स्मर, काम ।

पृष्ठ २८७—ब्रजकेलि निकुंज मग=ब्रज भूमि में की गई रासलीलाओं के स्थान कुञ्जों के मार्ग । एकत=एक स्थान पर, एक साथ । बैस=अवस्था । जुगल किसोर=युगल किशोर, किशोर (१६) अवस्था वाले राधाकृष्ण की जोड़ी । चहियतु=चाहिये । गिरिधर=पर्वत को धारण करने वाले श्रीकृष्ण । गिरि=पर्वत को । धर=धारण करके । सलोने=मनोहर । नीलमणि सैल=नीलम का पहाड़ । आतप=धूप । दीठि=आँख । पट=वस्त्र । जोति=कान्ति ।

पृष्ठ २८८—बेंदी=बिन्दी, तिलक, शून्य । आंक=अंक । लिलार=माथा । उदोत=कांति, सौन्दर्य । पत्रा=पञ्चाङ्ग । आनन-ओप=मुख की कान्ति । उजास=उजाला । अजौं=आज भी, अभी भी । तरयौना=कानों का भूषण । श्रुति=कान व वेद । नाक=स्वर्ग, नाक । बेसर=नथ । बिन्दु सुरंग=लाल रंग की बिन्दी । रसमय=जलपूर्ण, आनन्दमग्न । सबी=तस्वीर,

फोटो (बहुत-सी पुस्तकों में छवि पाठ है)। गरब गरूर=चित्रकार होने का अभिमान। चितेरे=चित्रकार।

पृष्ठ २८९—गति=दशा, स्वभाव। स्याम रंग=काला रंग, कृष्ण प्रेम। बूड़े=डूबे।। उज्जल=निष्पाप, सफेद। जुगुति=उपाय, साधना। धरक=खटका। आन=अन्य। सांट=सांठ-गांठ, गुप्त परामर्श।

पृष्ठ २९०—पागि=पूर्ण। बौरी=पगली। ससिहि=चन्द्रमा को। कहलाने=गर्मी के कारण व्याकुल। एकत=एक स्थान पर। अहि=नाग। दाघ=जलन। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु।

पृष्ठ २९१—चटक=चमक, कान्ति। मित्त=मित्र अर्थात् मैत्री। रज राजस=स्वार्थ सिद्धि रूपी धूलि, अथवा अहंकार रूपी धूलि। नीति=उचित मार्ग। गलीत=गरीब की बुरी दशा भोग कर, बहुरि=फिर। कुरंग=हरिण।

पृष्ठ २९२—गंधी=इत्र बेचने वाला। गंवई=छोटा सा गाँव। मराल=हंस। नागर=चतुर, मर्मज्ञ। गड़े=चुभे, रमे। रांचति=रंग गई है। गुड़हर=एक लाल रंग का पुष्प। पुहुमि=पृथ्वी। सराधपख=श्राद्ध (कन्यागत=जिसे कनागत भी कहते हैं) का पखवाड़ा।

पृष्ठ २९३—बलि=भोजन से पूर्व जो अन्न गाय, कुत्ते और कौवों को दिया जाता है। मही=बड़ी। लहियत=पाते हैं। जड़ता=मूर्खता। ह्यां=यहाँ। विषम=तीव्र, कठिन। वृषादित=जेठ के महीने का सूर्य। पयोधि=समुद्र। अमित=असीम। पगार—नाली, छिछली धारा। तन्त्री नाद=वीणा की ध्वनि। राग=गीत। रति-रंग=प्रेमानन्द। अनबूड़े=डुबकी न लगाने वाले, गहराई में न जाने वाले। दुरचौ=छिपा हुआ। नीलकंठ=एक पक्षी जिसका दर्शन जेठ के दशहरे के दिन होने से शुभ माना जाता है। जितै=जिधर। जेती=जितनी।

पृष्ठ २९४—प्रतिबिम्बित=छाया के रूप में झलकता। लखियतु=देखा जाता है। जनायो=ज्ञान दिया अथवा जन्म दिया। सरै=सिद्ध होना। मन सदन=मन रूपी घर। बाट=रास्ता। विकट=कठिन, भारी। जौ लगि=जब तक। निपट=अत्यन्त। कपट कपाट=छल रूपी द्वार। बिरिया=बारी, अवसर। कंरिया=मल्लाह। सोधि=ढूंढ। पाहन=पत्थर।

पृष्ठ २९५—पतवार=नाव की दिशा बदलने वाली कल। आन=

अन्य। कुंजबिहारी=लता कुंजों में रमण करने वाले। नीकी=भली। अनाकनी=टालमटोल करना। गुहारी=पुकार। तारन-विरद=पतित-पावन की उपाधि। बारक=एक बार। बारथ—हृथी।

पृष्ठ २९६—दई दई=हाय हाय। सुचितई=मन की पवित्रता। तारिबो=उद्धार करना।

पृष्ठ २९७—कुबत=बुरी खोटी बातें। त्रिभंगी लाल=वंशी बजाते समय टेढ़े पड़ जाने से कृष्ण को त्रिभगी कहते थे।

व्याख्या

मेरी भव.....दुति हरै

बिहारी कवि की 'बिहारी सतसई' का यह पहला दोहा है। शृंगार की रचना होने पर भी मंगलाचरण की रीति के लिये यह प्रार्थना-वाचक पद्य है। ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण की रीति भारत में आरम्भ से है। कवि इसमें राधाजी से प्रार्थना कर रहा है। कवि कहता है कि वह चतुर राधिका मेरे सांसारिक तापों को जो कि बारम्बार जन्म लेन और मरने से प्राप्त होते हैं, दूर करदे। वह कैसी है कि जिसके शरीर की झलक पड़ते ही अर्थात जिसके अपूर्व सुन्दर शरीर को देखते ही श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हरी कान्ति वाले अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं। उत्तरार्ध के दो अर्थ और निकलते हैं। यहाँ झाईं शब्द का अर्थ छाया लिया जायगा, अर्थात् शरीर की छाया पड़ने से सांवले रंग के श्रीकृष्ण हरे रंग के हो जाते है, तात्पर्य यह है कि पीला और नीला मिलकर हरा रंग बन जाता है। राधा का शरीर चम्पे के समान सुनहला गोरा रंग है, कृष्ण का श्याम वर्ण, उस कान्ति के मिश्रण से हरित वर्ण हो जाता है। यहाँ झाईं का अर्थ ध्यान भी लिया जाता है। जिसके शरीर का ध्यान करने से श्याम वर्ण अर्थात् काला पाप भी हरी गई कान्ति वा निष्प्रभ हो जाता है। श्लेष अलंकार है।

सीस मुकुट.....बिहारीलाल

बिहारी कवि श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति से अपने हृदय में बसने का अनुरोध कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे रासबिहारी प्यारे कृष्ण! आप मेरे मानस मन्दिर में इसी वेष में सदा निवास कीजिये। जिसके शिर पर मोर के चन्दा

का मुकुट है, हाथ में बंशी, कमर में कछनी पहनी हुई है, छाती पर माला पडी है ; तात्पर्य यह है कि आपका यह मनोहर वेष सदा मेरे हृदय में स्थान बनाये रहे। इसमें श्रीकृष्ण के वेश का वर्णन किया गया है, अतः स्वभावोक्ति अलकार है।

मोहन मूर्ति..... जग होय।

कवि कहता है कि श्रीकृष्ण की परम आकर्षक मूर्ति का अत्यन्त विस्मय-जनक स्वभाव देखो कि वह निर्मल हृदय के भीतर निवास करती है, परन्तु झलकती सारे संसार में है। ब्रह्म ब्रह्माण्ड भर में कण-कण में व्याप्त है। श्रीकृष्ण की मूर्ति बसी तो मन में है और दिखाई देती है सम्पूर्ण विश्व में। जब कोई वस्तु किसी सन्दूक में बन्द कर दी जाय, तो वह बाहर कभी दिखाई न देगी। यह वस्तुओं का प्राकृतिक धर्म है। परन्तु श्रीकृष्ण की मूर्ति के विषय में यह नियम नहीं लागू होता। यही आश्चर्य है। ब्रह्म स्वरूप होने के कारण श्रीकृष्ण घट-घट में व्यापक हैं, यही तात्पर्य है। विरोधाभास अलंकार है।

सखि सोहित..... की उदाल।

कोई गोपी दूसरी सखी से श्रीकृष्ण के मनोहर रूप का वर्णन कर रही है गोपाल श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर रत्तियों की माला इस प्रकार शोभा दे रही है कि मानों गोओं और गायों की रक्षा के लिये भगवान् ने जो वन की आग को अपनी योग शक्ति से पी लिया था, मानों आज उसी आग की लपट बाहर झलकती दिखाई दे रही है। रत्तियों की माला लाल होती है, आग की लपटें भी लाल हैं। ऐसी दशा में कल्पना यही होती है कि भीतर से वही आग दिखाई दे रही है। कहा जाता है कि वन में जहां श्रीकृष्ण अपने गोप सखाओं के साथा गाय चरा रहे थे, वहीं एक बार चारों ओर भयानक आग लग गई। सारे सखा और गायें व्याकुल हो गई। इस पर भगवान् ने उनको निर्भय करके योग के द्वारा उसको आत्मसात् कर लिया। उसी कथा का संकेत है। स्वरूपोत्प्रेक्षा अलंकार है।

मोर मुकुट की चन्द्रिका..... सत चन्द।

नन्दकुमार श्रीकृष्ण मोर के चन्दों के मुकुट से इस प्रकार शोभा पा रहे हैं मानों चन्द्रमा को मुकुट के रूप में धारण करने वाला शंकर की होड़ करके उन्होंने सैंकड़ों चन्द्रमाओं को शिर का भूषण बना लिया हो। भगवान् शकर

के मस्तक के ऊपर एक कला का चन्द्रमा रहता है, श्रीकृष्ण ने मोर के चन्दे मुकुट के रूप में धारण कर रखे हैं। कवि कल्पना करता है कि मानो कृष्ण ने शंकर से होड़ की है कि तुमने तो एक ही चन्द्रमा को अपना आभूषण बनाया है, देखो मैं सैकड़ों चन्द्रमाओं को धारण कर लेता हूँ। यहाँ पर भी उत्प्रेक्षा अलंकार है।

नाचि अचानक ..... नन्दकिसोर।

कोई गोपिका वन में गई है, बरसात का समय भी नहीं है, सहसा जंगल के मोर एक भाग में नाच उठे। उनके नाचने से वह अनुमान लगा रही है कि अवश्य इस भाग को श्री नन्दकुमार ने भूषित या अपने आगमन से आनन्द-मग्न कर दिया है, जिससे मोर उन्हें बादल समझकर नाच रहे हैं। वह कहती है कि हे सखी ! ये जो वन के मोर बिना बरसात के अर्थात् आकाश में बिना किसी बादल के आये इस अमुक भाग में एक साथ ही नाच उठे है, इससे मैं जान गई हूँ कि इस प्रदेश को श्रीकृष्ण ने अपने आगमन से आनन्द-मग्न कर दिया है। यहाँ श्रीकृष्ण के आगमन का अनुमान मोरों के नाचने से किया, इसलिये अनुमान अलंकार हुआ। इससे श्रीकृष्ण को बादल समझने का ज्ञान होता है, इसलिये भ्रम अलकार है। इससे श्रीकृष्ण का स्वरूप जलधर के सामान श्यामल सूचित किया है अतः विभावना भी है।

जहाँ जहाँ ..... वह ठौर।

कोई गोपी, श्रीकृष्ण को वन-वन ढूंढती अपनी सखी से कहती है कि सुन्दरों में शिरोमणि कृष्ण जिस-जिस स्थान पर खड़े देखे थे, आज यद्यपि वे उपस्थित नहीं हैं, तथापि क्षण-भर के लिये वह स्थान आज भी दृष्टि को पकड़ लेता है। पहले जब कृष्ण यहां खड़े होते थे तो सहसा दृष्टि उनकी ओर चली जाती थी। आज वे नहीं हैं परन्तु उनके सौन्दर्य की छटा आज भी उस-उस प्रदेश को भासित कर रही है। कारण चला गया है तथापि वह सौन्दर्य उसी प्रकार वर्तमान है। विशेषोक्ति अलंकार हुआ। इसी प्रकार कृष्ण रूप कारण के अभाव में दृष्टि को पकड़ लेना रूप कार्य का वर्णन किया है, अतः विभावना अलंकार भी है।

मकराकृति ..... लसत निसान।

श्रीकृष्ण के कानों में मगरमच्छ की आकृति के टेढ़े कुण्डल बहुत शोभा

देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानों यौवन काल आने के कारण श्रीकृष्ण के हृदय रूपी दुर्ग में कानों के मार्ग से कामदेव प्रवेश कर गया है। कुण्डल के रूप में उसका मकर की आकृति वाला झण्डा स्पष्ट चिह्न के रूप में दिखाई दे रहा है। कोई राजा जब किसी किले में प्रवेश करता है तो उसका झण्डा या और कुछ चिह्न द्वार पर लगा रहता है, कामदेव का चिन्ह मकर है। उसके झण्डे पर मगर की ही आकृति बनी हुई है। कुण्डल भी मगर की शक्ल के टेढ़े हैं। अतः लगता है कि कामदेव कानों के रास्ते हृदय-दुर्ग में प्रवेश कर गया है, कुण्डल के रूप में उसका मकरांकित ध्वज द्वार पर लगा हुआ है। उत्प्रेक्षा और काव्यलिंग अलंकार हैं।

तजि तीरथ ..... होत प्रयाग।

बिहारी कवि कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू सम्पूर्ण तीर्थों में भ्रमण करने के महान् और कष्टसाध्य कार्य को छोड़कर राधा और कृष्ण के शरीर की कान्ति से प्रेम कर ले, अपने मन में उस कान्ति को बसा ले, जिस कान्ति के कारण ब्रज भूमि के रास की क्रीड़ाओं के स्थानभूत लता-भवनों के मार्ग का एक-एक पद या चरण तीर्थों का राजा प्रयाग बन जाता है। प्रयाग को सब तीर्थों का राजा कहा जाता है। क्योंकि भारत के बड़े-बड़े तीर्थ गंगा और यमुना नदी के तट पर हैं, कुरुक्षेत्र सरस्वती के तट पर है। यदि मनुष्य तीर्थों में भ्रमण करने जायेगा तो इन तीनों नदियों के जल में स्नान करने के लिये उसे पृथक् स्थानों पर जाना पड़ेगा। परन्तु प्रयाग में उपर्युक्त तीनों पवित्र नदियाँ एक स्थान पर मिल गई हैं, अतः वह तीर्थों का राजा कहा गया है। अब कवि कहता है कि अन्य तीर्थों में जाने का कोई लाभ नहीं है। श्री राधा और कृष्ण के सौंदर्य से प्रेम करो वही वास्तविक प्रयाग है। वहाँ श्री राधा जी का शरीर गोरा होने से उस की धवल कान्ति गंगा की धारा हुई, श्री कृष्ण के शरीर का रंग श्याम होने से नीले जल वाली यमुना उनकी कान्ति को मान लिया गया। रास क्रीड़ा के कुञ्जों में जाते हुए पथ पर पड़ती हुई लाल लालुओं की कान्ति सरस्वती हो गई। इस प्रकार यहाँ भी तीनों नदियों का संगम अर्थात् त्रिवेणी बन गई। प्रयागराज तो एक ही स्थान पर है, परन्तु रास-विहार के कुञ्जों का तो एक-एक चरण प्रयागराज है, इसलिये इस तीर्थ की ही यात्रा करनी चाहिये। कवि का गूढ़ तात्पर्य यही है कि अन्य तीर्थों

मे भटकने की अपेक्षा वृन्दावन के निकुञ्जों का ही दर्शन करो, वहीं निवास करो। वहाँ एक-एक चरण बराबर भूमि प्रयागराज के समान पवित्र है। इस प्रकार पञ्चम प्रतीप व्यंग्य है। व्यञ्जना से व्यतिरेक अलंकार भी ध्वनित होता है। प्रकारान्तर से वृन्दावन में निवास का अर्थ कहने से पर्यायोक्ति अलंकार भी है।

नित प्रति ....जुगल अनेक।

विहारी कवि राधा-कृष्ण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि दोनों अवस्था, रंग और मन से एकरूप हो गये हैं, अतः सदा दोनों एक ही स्थान पर रहते हैं। राधा और कृष्ण दोनों किशोर (१६ वर्ष) अवस्था के है, इस प्रकार अवस्था से समान हैं, राधा गोरी हैं कृष्ण सांवले हैं परन्तु पारस्परिक कान्ति के सांकर्य से दोनों ही समान वर्ण वाले हो गये हैं। अविच्छिन्न प्रणय होने से दोनों के हृदय भी एक हो गये हैं। प्रेम दो हृदयों का मिलन होता है। जब दोनों का परस्पर प्रेम हो जाता है तो मन एक हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों की जोडी तन और मन से सर्वथा एक हो गई है। इस अभिन्नता के कारण ही दोनों एक स्थान पर रहते हैं। ऐसी अनुपम कान्ति और प्रेम वाले युगलकिशोर अर्थात् किशोरी राधा और किशोर कृष्ण की जोड़ी को देखने, उनकी रूप-सुधा का पान करने के लिये दोनों आँखें ही पर्याप्त नहीं हैं, अतः उनके आंखों की जोड़ियाँ होनी चाहियें। काव्यलिंग अलंकार है।

चिर जीवो .....के वीर।

इस दोहें के दो अर्थ बनते हैं, एक सादा और दूसरा हास्य-प्रधान। पहला—यह राधा और कृष्ण की जोड़ी सदा चिरंजीवी रहे, चिरकाल तक जिये; दोनों ही समान हैं। दोनों का प्रेम गहरा क्यों न हो, समानों में प्रेम होता ही है। दोनों में कम कौन है। ये तो राधा वृषभानु की लड़की हैं और ये हलरूप अस्त्रधारी बलराम के भाई हैं। वृषभानु लाखों गायों का स्वामी है, ऐसे बड़े व्यक्ति की पुत्री राधा है, श्रीकृष्ण भी वसुदेव के पुत्र बलराम के भाई हैं। ऐसे उच्च कुल के व्यक्तियों का परस्पर प्रेम होना सम्भव ही है। अतः यह सदा बना रहे।

हास्य-प्रधान—इन दोनों राधा और कृष्ण जी की जोड़ी सदा बनी रहे। इन दोनों का प्रेम गहरा क्यों न हो, क्योंकि इनमें कौन किससे कम है। ये

राधा तो वृषभ अर्थात् बैल की अनुजा अर्थात् बहिन हैं, उधर कृष्ण हल को धारण करने वाले बैल के भाई हैं। यहाँ पहले तो 'वृषभानु+जा' यह शब्द रखा गया है, दूसरे अर्थ में वृषभ+अनुजा रखा गया गया है। पहला अर्थ वाच्य है, दूसरा व्यंग्य।

प्रलय करन.....गिरिधर हाथ।

जिस समय भगवान् कृष्ण ने गोपियों के द्वारा चिर काल से चली आती हुई इन्द्र पूजा को छुड़ाकर गोवर्धन पर्वत की पूजा करवाई, उस समय इन्द्र ने क्रोधित होकर ब्रज को बहा देने के लिये वर्षा आरम्भ कर दी। उसका वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है कि प्रलय मचा देने वाले पुष्करावर्त, संवर्तक आदि महान् मेघ एकत्रित होकर एक ही वेग से बरसने लगे। ऐसे समय में गोवर्धन को धारण करने वाले भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर गोवर्धन पर्वत को हाथ पर धारण करके देवराज इन्द्र के अभिमान को चूर कर दिया। इस पद्य में 'गिरिधर, गिरिधर' में लाटानुप्रास अलंकार है।

सोहत ओढ़े.....प्रभात।

सांवले शरीर वाले भगवान् कृष्ण पीत वस्त्र धारण करके ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानो नीलम के पहाड़ पर प्रातःकाल के समय धूप पड़ रही हो। नीलम के पर्वत पर पीली-पीली धूप पड़ने पर वह बहुत शोभा देता है। इसी प्रकार सांवले शरीर पर पीताम्बर शोभा देता है। इस प्रकार स्वरूपोत्प्रेक्षा अलंकार है।

अधर धरत.....सी होति।

श्री कृष्ण की हरे रंग की वंशी जब उनके होठों पर रखी जाती है, तो उस पर होठों की लाल कान्ति, आंखों की सफेद कान्ति और वस्त्र की पीली कान्ति पड़ती है। इसलिये वह हरे रंग की होकर इन्द्रधनुष के समान विविध रंगों वाली बन जाती है। इसमें कवि ने वंशी पर सूक्ष्म दृष्टि डाली है। हरे बांस की वंशी जब लाल होठों पर रखते हैं, तब आँखों की सफेदी, होठों की लाली और वस्त्रों का पीला रंग हरे रंग के साथ मिलकर इन्द्र धनुष की सृष्टि कर देते हैं। इस प्रकार इस पद्य में कवि ने रंगों के मिश्रण का चमत्कारिक वर्णन किया है। वैसे व्यंजना द्वारा होठों की ललिमा, वस्त्रों की पीतिमा तथा नेत्रों की श्वेतिमा सिद्ध की है।

कहत सबै ..... उदोत ।

कवि कहता है कि देखो गणितशास्त्र के मर्मज्ञ सभी व्यक्ति कहा करते हैं कि यदि किसी अंक के आगे बेंदी या शून्य जोड़ दिया जाय तो वह संख्या दस गुनी हो जाती है। जैसे ५ के साथ शून्य चिन्ह जोड़ दिया तो ५० बन जायेगा। इस प्रकार गणितशास्त्र तो केवल दस ही गुना संख्या वृद्धि बताता है। परन्तु बात कुछ और ही है। स्त्री के माथे पर यदि तिलक की बिन्दी लगा दी जाय तो उसके मुख की कान्ति असख्यगुना बढ़ जाती है। यदि कोई सुन्दरी माथे पर बिन्दी लगाती है तो असंख्यगुना कान्ति बढ़ती है। इस प्रकार वहाँ गणितशास्त्र का नियम नही घटता। श्लेष अलंकार है।

पत्रा ही तिथि ..... ओप उजास ।

किसी नायिका के मुख-सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है कि उस नायिका या सुन्दरी के घर के चारों ओर तथा आसपास केवल पचांगों में ही अमावस्या और प्रतिपदा आदि तिथियाँ मिल सकती हैं। साधारण रूप से एक पक्ष में पन्द्रह तिथि होती है। परन्तु उसके घर के पास इन तिथियों का नाम केवल पचाङ्ग में ही मिल सकता है, यहाँ ये तिथियाँ होती ही नहीं। क्योंकि उसके मुख की कान्ति के प्रकाश से वहाँ प्रतिदिन पूर्णमासी ही बनी रहती है। तात्पर्य यह है कि अन्य तिथियों में चन्द्रमा का प्रकाश घढ़ता-बढ़ता रहता है पर पूर्णमासी के दिन पूरा रहता है। इस नायिका (राधा) के घर के पास तो पंचांग देखने से ही अन्य तिथियों का ज्ञान होने पाता है। अन्यथा उसके मुख की कान्ति इतनी उज्ज्वल है कि रात दिन पूर्णमासी ही प्रतीत होती है। इस प्रकार कवि ने एक ओर तो राधा के मुख को चन्द्रमा के समान सूचित करके साथ ही चन्द्रमा को घटता-बढ़ता बताकर मुख का उससे व्यतिरेक सूचित किया है। इधर तिथियों की स्थिति केवल पत्रे में ही बताकर उसके घर के पास उनका निषेध करके परिसंख्या अलंकार वाच्य है।

अजौ तरचौना ..... के संग ।

इस पद्य में श्लेष अलंकार द्वारा कवि ने सत्संग का महत्त्व दिखाया है। वह कहता है कि तरचौना अर्थात् एक कानों का आभूषण जिसे कर्णफूल भी कहते हैं, एकांगी भाव से, अनन्यभाव से श्रुति अर्थात् कानों का सेवन करता हुआ अभी तक तरचौना ही बना रहा, वह तरचौ नहीं अर्थात् वह तरा

नहीं ? श्रुति का अर्थ वेद भी है, अतः दूसरा अर्थ है कि एकाग्र भाव से इतने दिन से वेदों का अध्ययन करता हुआ भी तू अभी तक तरा नहीं । जब कि बेसर अर्थात् नथ ने मोतियों का संग पाकर नासिका में निवास पा लिया । नथ मोतियों से जड़ी है अतः उसे नासिका में स्थान मिल गया है । यहाँ "मुकुतन" के भी दो अर्थ हैं । एक अर्थ तो मुक्ता या मोती है ही । दूसरा अर्थ मुक्तों अर्थात् जीवन्मुक्तों या तत्त्वज्ञानियों है । इसी प्रकार नाक का भी दूसरा अर्थ स्वर्ग है । इसका तात्पर्य है कि जीवन्मुक्तों या तत्त्वज्ञानियों की संगति में रहकर नथ ने तो नाक अर्थात् स्वर्ग में स्थान पा लिया और उधर कर्णफूल निरन्तर श्रुति अर्थात् वेदों का अध्ययन करके भी तरा नहीं । इस प्रकार सत्संग की महिमा सिद्ध कर दी है ।

मंगल बिन्दु ..... लोचन जासु ।

इस दोहे में कवि श्लेष और रूपक द्वारा ज्योतिष का चमत्कार दिखा रहा है । कहता है कि सुन्दर लाल रंग की बिन्दी जो कि नायिका के मस्तक पर लगी हुई है, मंगल ग्रह है (मंगल का ग्रह लाल होता है), नायिका का मुख ही चन्द्रमा है, केसर का टेढ़ा तिलक ही वृहस्पति है । वृहस्पति का रंग पीला और चन्द्रमा का सफेद होता है । इस प्रकार इन तीनों ग्रहों ने एक नारी—नायिका, राधा और नाड़ी राशि के साथ योग अर्थात् सम्बन्ध हो जाने से सम्पूर्ण जनता के नेत्ररूपी संसार को रसमय-आनन्दमय और जलपूर्ण कर दिया है । ज्योतिष का सिद्धान्त है कि 'विधुभौमसमायोगे करोत्येकार्णवां महीम्' अर्थात् यदि एक राशि पर चन्द्रमा और मंगल आ जाएँ तो सारी पृथ्वी को समुदाय बना देते हैं । जब वृहस्पति भी साथ में हो तब तो कहना ही क्या है ? यहाँ भी तो गजब हो रहा है । पहले ही मुख चन्द्रमा के समान है, उस पर भी केसर का टेढ़ा तिलक लगाया है, बीच मे लाल बिन्दी लगा दी है । एक रमणी के मुख पर इन तीनों के एकत्र योग ने सबकी आँखों को आनन्द में मग्न कर दिया है । ज्योतिष के विचार से लाल बिन्दी मंगल ग्रह है, मुख चन्द्रमा है, केसर का तिलक वृहस्पति है । अतः नेत्ररूपी संसार आनन्द के पानी में क्यों न डूब जाय ।

लिखन बैठि ..... चितेरे कूर ।

राधिका का सौन्दर्य वर्णित करता हुआ कवि कह रहा है कि कितने ही

चतुर चित्रकार जिस राधा की सबी अर्थात् चित्र लिखने के लिए हृदय में अपनी कुशल चित्रकारिता का अभिमान लेकर बैठे लेकिन वे सभी मूर्ख बनकर रह गये। तात्पर्य यह है कि चित्रकार थे तो कुशल, इसलिए उन्हें अभिमान था कि वे राधा के सुरूप का यथार्थ चित्र खींच सकेंगे। परन्तु यह उनका भ्रम ही था। क्योंकि चित्रकार स्थिर वस्तु का चित्र तो खींच सकता है पर चल वस्तु के एक ही रूप का वर्णन रेखाओं द्वारा किया जा सकता है, प्रतिक्षण बदलती हुई स्थिति को दिखाना उसकी शक्ति के वश की बात नहीं। राधा के सौन्दर्य का चित्रण भी इसलिए कठिन है कि वह प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। उसकी एक-कालिका दशा का चित्रण तो चित्रकार अपने रेखाचित्र से कर सकता है, पर बाद में जो दशा होगी उसका कैसे चित्र होगा? इसलिए उसका यथार्थ चित्र नहीं खिच सकता। जो व्यक्ति एक कार्य को करने के लिए अभिमान से प्रवृत्त हुआ हो, अपनी असफलता पर उसे मूर्ख बनना पड़ता है।

कवि का तात्पर्य यह है कि राधा के सौन्दर्य का वर्णन कोई कर ही नहीं सकता। क्योंकि वह सदा उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। इसलिए किसी की सामर्थ्य नहीं कि प्रति क्षण बढते सौन्दर्य का वर्णन कर सके। इस प्रकार राधा के सौन्दर्य की अनुपमता का वर्णन किया है।

नेह न नैनन ....प्यास बुझ्यो।

कवि आँखों की वेदना का वर्णन कर रहा है कि इन आँखों का प्यार नहीं हुआ है, इन्हें कुछ प्यारा नहीं हुआ है, इनके लिए तो बड़ी आपत्ति उत्पन्न हो गई है। क्योंकि ये सदा, हरदम पानी से भरे रहते हैं फिर भी प्यास नहीं बुझती। आँखों ने रीझकर क्या विपत्ति मोल ली है। आँखे किसी पर रीझती हैं तो उन्हें उससे प्यार हो जाता है। कवि कहता है कि आँखों को यह प्यार नहीं हुआ है, यह तो उनके लिए बड़ी कठिनाई हो गई है कि प्रियतम को देखने के लिए सदा प्यासी रहती हैं। दर्शन न पाकर आँसू बहाने लगती हैं, कवि कहता है कि प्यासे को पानी मिल जाय तो उसकी प्यास बुझ जाती है, पर इन आँखों की प्यास हर वक्त पानी (आँसू) से भरी रहने पर भी नहीं बुझती। कारण के होते हुए भी कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार है।

या अनुरागी ..... उज्जल होय ।

कवि कहता है कि देखो इस प्रेमी हृदय के स्वभाव को कोई नही समझ पाता कि कैसा विचित्र है । क्योंकि यह जैसे-जैसे काले रंग में डुबकी लगाता है, तैसे-तैसे सफेद होता जाता है । यहाँ श्याम रंग के दो अर्थ हैं—१. काला रग, २. कृष्ण का प्रेम । इसी प्रकार उज्ज्वल के भी दो अर्थ हैं— १. सफेद, २. निर्मल । इस प्रकार पहला अर्थ ऊपर दिया जा चुका है । वास्तविक अर्थ है कि जैसे-जैसे मन कृष्ण के प्रेम में मग्न होता जाता है, तैसे-तैसे उज्ज्वल अर्थात् निष्पाप हो जाता है । विरोधाभास अलकार है ।

जो न जुगुति ..... हूँ कौन ।

प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम के बिना मुक्ति को भी निस्सार बताते हुए कवि कहते हैं कि यदि प्रियतम श्रीकृष्ण मे मिलन का उपाय उसमें नहीं है तो ऐसी मुक्ति के मुँह में धूल फेंको । ऐसी मुक्ति हमें नहीं चाहिए जो कि प्रियतम के मिलने से वञ्चित करती है । यदि प्रियतम का संग प्राप्त हो; यदि प्रिय का साथ उपलब्ध हो जाय तो नरक का भी भय नहीं है । यदि नरक ही में प्रियतम का संग प्राप्त होता है तो वह भी श्रेयस्कर है । तात्पर्य यह है कि प्रियतम का संग ही परम पुरुषार्थ है । जिस उपाय से वह प्राप्त हो जाय वही ग्रहण करने योग्य है ।

लई सौंह सी ..... लाये कान ।

किसी नायिका का कृष्ण से प्रेम हो गया है, उसके पूर्वराग (प्रेम होने की दशा) का अनुभावों के द्वारा उद्घाटन करता हुआ कवि कहता है कि गोपी ने तो मुरली की ध्वनि को छोड़कर अन्य शब्द या संगीत को सुनने की सौगन्ध-सी खा ली है । अर्थात् इसने प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं वंशी का स्वर सुनने के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं सुनूँगी । यह कैसे जान लिया ? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह रात-दिन वन की ओर अपने कान लगाये कि कहीं वही ध्वनि सुनाई दे जाय, लगन लगाये रहती है । नवीन प्रेमिका का स्वभाव होता है कि सदा प्रिय का शब्द सुनने की उत्कण्ठा रहती है । उसके ध्यान में लगी रहने से अन्य किसी का शब्द उसे नहीं सुहाता । वन की ओर कान लगाने की उत्सुकता नामक संचारी भाव व्यंग्य है । अन्य

शब्द को न सुनने के व्यापार से विरति अर्थात् अन्य व्यापारों से रुचि हटना रूप विरहावस्था व्यक्त होती है।

लाभ लगे ..... बड़ी बलाइ।

नायिका कृष्ण का रूप देखकर उन पर रीझ गई है, उसका मन अपने वश में नहीं रहा है, आँखें रात-दिन उन्हीं को देखने के लिए तड़पती रहती हैं। इससे नायिका की दशा बहुत बुरी हो रही है। वह सारा दोष आँखों पर मढ़ देती है। कहती हैं, देखो इन नयनों ने जो कि कृष्ण के सौंदर्य के लालची थे, उनके नेत्रों से लड़कर, उनसे मिलकर कुछ सांठ-गांठ कर ली, गुप्त बातचीत कर ली। इस बातचीत में इन्होंने मुझे बेच डाला है। इसलिए ये आँखें तो बड़ी मुसीबत हैं। स्वार्थ अपना, बेच दिया मुझे। दलाल भी दो ओर के मिलकर सामान को बेच दिया करते हैं। इसीलिए नेत्रों को दलाल बता दिया है। नेत्रों के रीझने से मन का बिकना प्रसिद्ध है। कवि रहीम ने भी कहा है कि—

रहिमन मन महाराज के, दृग से नाहिं दिवान।
देखि जाय रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान॥

अस्तु, कवि ने इस दोहे में भी पूर्वराग का वर्णन किया है। जैसे कि संस्कृत के साहित्याचार्यों ने वर्णन किया है—

'चक्षूराग: प्रथमं चित्तासंगस्ततोऽथ संकल्पः।' अर्थात् पहले नेत्रों का राग अर्थात् नेत्र दर्शन होता है, इसके पश्चात् मन आसक्त होता है, इसके पश्चात् मिलन के विचार होते हैं, आदि।

लाल तिहारे ..... पलौ न।

नायिका नायक को प्रथम दर्शन में देखकर ही रीझ गई है, उसकी अवस्था जागरण तक पहुँच चुकी है, वह नायक को उलाहना दे रही है कि प्यारे! तुम्हारे रूप की भला बताओ यह कैसी अनोखी रीति है, तुम्हारा रूप कैसा विचित्र है, क्योंकि जिससे पल भर के लिए भी जिसकी आँखें लग जाती हैं, जो एक दृष्टि भरकर भी उसे देख लेता है, फिर पल भर के लिए भी उसकी पलक नहीं लगती। जब उस पर आँखें रीझती हैं, तब तो उसके प्रेम से ही आँखें बन्द होनी चाहियें। पर उलटी वह खुली रह जाती हैं, सदा देखने को उत्कण्ठित रहती हैं। साथ में विरोध भी दिखा रहा है कि जिसके

द्वारा पलक लगती है अर्थात् नींद आती है, उसी के कारण पल भर के लिए भी पलक नहीं लगती। जो औषध नींद लाने वाली हो, उससे यदि उलटा नींद का उचाट हो जाय तो कितना आश्चर्य है? यहाँ जिससे पलक लगती है, उससे पलक नहीं लगती, यह विरोधाभास अलंकार है। 'पलक, पलक और पलौ लाटानुप्रास है। पलक से दो अर्थ लेने से श्लेष अलकार भी है। पलक के दो अर्थ लिए है— १. पलक=पल भर भी, २. आँखों की बरोनियाँ।

लाल सलोने ..... मुँह लायि।

यह खंडिता नायिका की उक्ति है। खंडिता नायिका उसे कहते हैं जिसका पति सारी रात दूसरी प्रेमिका के पास रहे, प्रातः लौटकर घर आये, उसकी प्रतीक्षा में नायिका रात भर दुःख और क्रोध से भरी जागती रहे। उस पर भी यह प्रौढ़ा है। प्रौढ़ा पति को तीखे व्यंग्य सुनाने में निपुण होती है। यहां भी नायक पहले दिन किसी अन्य प्रेमिका के पास रहा है, नायिका के पास आकर वह प्रेम की बातें करने लगता है। किन्तु नायिका चतुर होने से उसके छल को भाँप जाती है और जमींकन्द से उपमा देती हुई कहती है कि हे लाल, हे प्यारे तुम अत्यन्त सुन्दर हो तथा अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हो। तुम्हारा प्रेम भी है, इसलिये तुम मुझे प्रिय हो, तथापि तुम्हारा यह कपट मुझे थोड़ा दुःख देता है, जैसे कि नमकीन और तेल में खूब तलकर बनाया हुआ भी जमींकन्द थोड़ा भी कच्चा रह जाय तो मुख में खुजली उत्पन्न कर देता है। तात्पर्य यह है कि तुम सुन्दर तो हो और प्रेम भी रखते हो, पर तुम्हारा यह कष्ट अच्छा नहीं लगता कि तुम कहते तो यह हो कि मैं तुम्हें ही बहुत प्रेम करता हूँ पर तुम प्रेम करते हो दूसरी से अधिक। इस प्रकार श्लेष से संकीर्ण उपमा अलकार है।

कहा भयौ जो ..... उड़ायक हाथ।

कोई नायिका बिछड़े प्रिय को सन्देश दे रही है कि हे प्रिय! यदि हम दोनों एक-दूसरे से बिछड़ भी गये है तो क्या हो गया? मेरा मन तो तेरे ही मन के साथ है, मेरा मन तो तेरे ही पास है। तुमसे पृथक् होकर भी मेरा प्रेम कम नहीं हुआ है। उदाहरण देकर कहती है कि देखो जब कोई पतंग उड़ाते है तो पतंग उसके हाथ से पृथक् होकर आकाश में कहीं दूर उड़ी जाती है

पर रहती वह उड़ाने वाले के ही हाथ में है। पतंग की डोर पतंग वाले के हाथ में ही रहती है।

यहां आध्यात्मिक अर्थ भी निकलता है कि आत्मा यद्यपि परमात्मा से पृथक् होकर इस संसार में आ जाती है पर उसकी प्रेरणा परमात्मा के ही हाथों में रहती है। इस प्रकार यहां अर्थान्तरन्यास अलंकार है और अभिधा-मूला व्यंजना है।

हौं ही बौरी ..... सीतकर नांव।

कोई नायिका विरह के संताप से जल रही है। उसे चन्द्रमा की किरणें भी दाहिका प्रतीत हो रही हैं। इसलिये वह कहती है कि क्या मैं ही विरह वेदना के कारण पगली हो गई हूँ कि चन्द्रमा को दाहक समझ रही हूँ अथवा सारा गाँव ही पागल हो गया है जो चन्द्रमा को शीतकर अर्थात् ठण्डी किरणों वाला बताता है। न जाने ये सभी लोग क्या विचार करके चन्द्रमा को शीत किरणों वाले नाम से पुकारते हैं। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा का नाम शीतकर प्रसिद्ध है, परन्तु नायिका के लिये वह जलाने वाला सिद्ध हो रहा है। अतः वह सोचती है कि क्या मै ही विरह वेदना से पागल हूँ जो मैं इसे दाहक मान रही हूँ क्योंकि मेरा मत तो एक ओर है और सारे गांव का एक ओर। एक तो त्रुटि कर सकता है पर सभी तो भ्रम में नहीं पड़ सकते। परन्तु यहां केवल भ्रम ही नहीं है यहाँ तो भ्रम प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है कि किरणें जला रही हैं। इसीलिये उसे विश्वास होता है कि वास्तव में चन्द्रमा शीतकर नहीं है, यह तो गाँव वालों को ही भ्रम हो गया है। सन्देह और भ्रम अलंकार हैं। नायिका के विरह ताप की अभिव्यक्ति की है।

कहलाने एकत ..... दाघ निदाघ।

प्रसिद्ध है कि कवि बिहारी को ग्रीष्म ऋतु में शिकार खेलने के लिये गये राजा जयसिंह ने एक बार कहा कि ऐसा पद्य बनाओ, जिसमें साँप और मोर तथा मृग और बाघ एक स्थान पर दिखाये गये हों तब कवि ने इस दोहे की रचना की थी। कवि कहता है कि इस गर्मी के कारण व्याकुल होकर साँप और मोर, मृग और शेर परस्पर का स्वाभाविक वैर छोडकर एक स्थान पर एकत्रित होकर बैठे हैं। इसलिए इस ग्रीष्म ऋतु की लम्बी जलन ने सम्पूर्ण विश्व को

तपोवन अर्थात् तपस्वी ऋषियों का आश्रम बना दिया है। साँप और मोर का स्वाभाविक वैर है, मोर साँप को खा जाता है, इसी प्रकार बघेरा मृग को खा लेता है। तपस्वियों के शान्त आश्रम वनों में सात्त्विक वृत्ति की प्रधानता होने से क्रूर जीव भी अपने स्वाभाविक वैर त्याग देते हैं। ग्रीष्म ऋतु के प्रभाव से इस समय शेष जगत् में भी जीवों ने परस्पर का वैर भुला दिया है और एक-दूसरे के पास बैठे हैं। इसलिए ग्रीष्म ऋतु ने शेष जगत् को भी तपोवन बना दिया है। काव्यलिंग अलंकार है।

दुसह दुराज ..... रविचन्द।

कवि कहता है कि एक देश में दो राजाओं के होने पर दुःखों का समूह क्यों न बढ़ जाय? देखो अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्र एक राशि पर एक साथ आकर संसार में और भी अँधेरा बढ़ा देते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी देश में दो राजा हो जायें तो अपना-अपना शासन चलाते हैं। वे प्रजा के सुख का साधन बनाने के स्थान पर उसके लिए भार बन जाते हैं। अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर आ जाते हैं। उसी दिन रात को सबसे अधिक अंधकार बढ़ जाता है। अर्थात तरन्यास अलंकार है।

कहैं यहै ..... राजा रोग।

समाज में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं', इसी बात को कवि अन्य प्रकार से कह रहा है कि सम्पूर्ण वेद, स्मृतियाँ और चतुर तथा समझदार व्यक्ति सब इसी बात का समर्थन करते हैं कि पाप, राजा और रोग केवल दुर्बल को दबाया करते हैं। शक्तिशाली जो भी कार्य करता है, उसके लिए उचित बन जाता है, साधारण और असमर्थ व्यक्तियों के लिये वह पाप हो जाता है। दुर्बल व्यक्ति को बात-की-बात में रोग दबा लेते हैं। राजा के कानून और दण्ड का प्रभाव भी उसी पर होता है। शक्तिशाली पर किसी का प्रभाव नहीं जमता। इसी बात को लक्ष्य करके महाभारत में कहा है :—

सर्वो बलवतां धर्मः सर्व बलवतां स्वकम्।
सर्वं बलवतां पथ्यं सर्व बलवतां शुचिम्॥

अर्थात् बलवान् व्यक्ति के सभी कार्य धर्म हैं, संसार में प्रत्येक वस्तु उसकी है। उसके लिए प्रत्येक वस्तु हितकारक या रोगनाशक है, उसके लिये सब कुछ पवित्र है। राजनीति, वैद्यक और समाज के नियम उस पर लागू नहीं होते।

सबै हँसत ..... गवारे गाँव ।

कोई गुणी व्यक्ति मूर्खों के बीच में चला गया । वहां उसकी गुणवत्ता का सभी लोग उपहास करने लगे । इसी को लक्ष्य करके कवि कह रहा है कि देखो नगर निवासी—सभ्यता के नाम पर ये मूर्ख किस प्रकार ताली पीट रहे हैं । इस गँवारों के गाँव में बसने से गुणी होने का सारा अभिमान चला गया । गुण वालों की महत्ता गुण-ग्राहक ही जानते हैं । गंवारों को उसका ज्ञान नहीं होता । तात्पर्य यही है कि हे गुणी ! तू गुणी होकर इन गंवारो के बीच में आ फँसा । भला यहाँ तेरा आदर कौन करता । तूने यहाँ बस कर भूल ही की है । अन्योक्ति अलकार है ।

जो चाहो चटक ..... चीकने चित्त ।

इस दोहे में कवि मित्रता में स्वार्थ बुद्धि के त्याग की आवश्यकता बताता है कि यदि तुम चाहते हो कि मित्रता अपनी चमक न छोड़े और मित्र भी मैला न हो अर्थात् मित्र के हृदय में किसी प्रकार की मलिनता न आने पाये तो तुम प्रेम की चिकनाई से स्निग्ध मन को कभी स्वार्थ-बुद्धि—रजोगुण रूपी धूलि को मत छुवाओ । तात्पर्य यह है कि यदि एक मित्र के हृदय में स्वार्थ की बुद्धि आ जाती है तो दूसरे मित्र के मन में भी मलिनता आ जाती है । इसीलिये स्वार्थ-बुद्धि नहीं आनी चाहिये । कवि इस अर्थ को रूपक के अलकार द्वारा वर्णन कर रहा है । स्नेह के दो अर्थ हैं—प्रेम और तेल । तात्पर्य प्रेम की चिकनाई से है । हृदय पर प्रेम की चिकनाई चढ़ने से वह उज्ज्वल हो जाता है । स्वार्थ की धूलि के स्पर्श से वह चिकनाई छूट जायगी । किसी पात्र की चिकनाई छुड़ाने के लिए उसे धूल से या बालू से माँजा जाता है । जैसे धूल के द्वारा वह चिकनाई नहीं रहती, इसी प्रकार स्वार्थ के कारण प्रेम भी नही रहता । श्लेष और रूपक अलंकार हैं ।

नल की अरु ..... ऊँचो होय ।

मनुष्य और नल के पानी का स्वभाव या दशा एक ही समान होती है । वह जितना नीचा होकर चलेगा उतना ही ऊँचा चढ़ता जाता है । नल को भूमि में जितनी गहराई से ले जाया जायेगा, उसका पानी उतना ही ऊँचा चढ़ जाता है । इसी प्रकार मनुष्य जितना नम्र होकर चलता है, अभिमान नहीं करता, उतनी ही उन्नति करता है । क्योंकि अभिमानी व्यक्ति का पतन हो जाता है,

इसलिए वह उन्नत पद नहीं पा सकता । नम्र व्यक्ति सबका आदर करता है, इसलिए उसकी श्रेष्ठता भी स्वीकार करते हैं । तभी वह उन्नति पाने में समर्थ होता है । अर्थ-श्लेष अलंकार है ।

मीत न नीत ..... जोरिये करोरि ।

कवि कृपण व्यक्ति के ऊपर व्यंग्य करके कहता है कि हे मित्र ! यह नीति या उचित मार्ग नहीं है कि स्वयं गलीत होकर अर्थात् दुःख पाकर धन को जोड़ा जाय । धन का उपयोग जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सुलभ करके उसे सुखी बनाने में ही है । इसलिए धन जोड़ने का यह उचित मार्ग नहीं है कि स्वयं भूखे और नङ्गे रहो या रूखा-सूखा खाकर कष्ट उठाओ और धन का सग्रह करते रहो । हाँ, संग्रह अनुचित भी नहीं होता यदि खा-पीकर और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं पर खर्चने के पश्चात् कुछ जुड़ सकता हो, तो करोड़ों जोड़ डालो । **उसमें कोई अनौचित्य नहीं है ।** अनुप्रास अलंकार है ।

इहीं आस ..... ये फूल ।

किसी दाता का वैभव समाप्त हो गया है, तथापि याचक या उसके सेवक उसके आस-पास मँडराते ही रहते हैं कि फिर जब इसका भाग्योदय होगा, इसका नष्ट वैभव पुनः प्राप्त होगा तब हमें भी पुनः धन मिलेगा । इसी तात्पर्य को अन्योक्ति के द्वारा कहता है कि भौरा गुलाब के पौधे की जड़ में बसन्त बीत जाने पर भी जो चक्कर काटता रहता है, वह इसी आशा में कि फिर भी वसन्त ऋतु आयेगी और इन डालियों पर पुनः फूल लगेंगे ।

को छूट्यो ..... जात ।

संसार का मायाजाल—ममता-मोह ऐसा कठिन है कि एक बार इसमें फँसकर फिर निकलना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है, इस भाव को लेकर कवि कह रहा है कि हे मृग ! तू क्यों व्याकुल हो रहा है ? इस जाल में एक बार पड़ने के बाद फिर कौन छूट पाया है । जैसे-जैसे सुलझकर, उस जाल के सिकुड़ते फन्दों को खोलकर भागना चाहता है, तैसे-तैसे और भी उलझता जाता है । जाल का ढंग यह रहता है कि उसमें फँस जाने के बाद निकलना कठिन हो जाता है । फँसने वाला प्राणी निकल भागने के लिये जैसे-जैसे पैर झटकता है, वैसे-वैसे फन्दा और भी कड़ा होता जाता है । मृग को कहता है कि तू इस

जाल से न निकल पाने के कारण दुःखी न हो। क्योंकि यह दशा केवल तेरी ही नहीं है प्रत्येक की यही दशा होती है।

यह कवि की अन्योक्ति है। वास्तविक प्रस्तुत अर्थ दो हैं, एक शृंगारी पक्ष में, दूसरा आध्यात्मिक पक्ष में।

शृंगारी पक्ष—कोई व्यक्ति किसी नायिका के प्रेम में बहुत आसक्त है। वह बहुत कुछ प्रयत्न करता है कि मन को उधर से हटाये, पर वह जितना प्रयत्न हटाने का करता है, उतना और उधर आसक्त होता है। इस पर उसका मन परेशान रहता है। कवि उसे लक्ष्य करके कहता है कि अरे मन! तू भला क्यों दुःखी हो रहा है, इस रूप के फन्दे में एक बार पड़कर कौन हट सका है? जैसे-जैसे इससे छूटना चाहता है, वैसे-वैसे और भी आसक्ति बढ़ती जाती है। यह तो स्वाभाविक नियम है।

आध्यात्मिक अर्थ—मन सांसारिक माया मोह में आसक्त है। अतः उसको समझा रहा है कि हे मन! इस सांसरिक माया के बन्धन से कौन छूट पाया है, अतः तू दुःखी मत हो। यह बंधन ऐसा है कि एक बार इसमें पड़ने के पश्चात् कोई नहीं छूट सकता। जैसे-जैसे उससे छूटना चाहता है, तैसे-तैसे और आसक्त होता है। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

कर ले सूंघि ..... गाहक कौन।

कोई गुणी गंवारों के बीच चला गया। वे लोग उसकी बातें सुनकर चुपचाप रहे। किसी ने आदर नहीं किया। उसको अपनाया नहीं। इसको अन्योक्ति द्वारा कहता है कि ये सभी गांव वाले गुलाब का इत्र सूंघकर उसकी प्रशंसा करके चुप रह गये है। भला हे गन्धी—हे इत्र बेचने वाले व्यक्ति इस गंवार गाँव में अथवा छोटे-से गाँव मे तेरे गुलाब के इत्र को खरीदने वाला कौन है। तात्पर्य यही है, कि यहां गुणियों का आदर करने वाला कोई नहीं है। इनके आगे अपनी विद्या का परिचय देना व्यर्थ है। अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

बै न यहाँ नागर ..... गाँव गुलाब।

किसी मूर्खों के प्रदेश में किसी विद्वान् या कवि का जन्म हुआ है। परन्तु वहाँ के निवासियों ने उसका महत्त्व नहीं जाना और उसे साधारण व्यक्ति-सा ही समझते रहे। ऐसे व्यक्ति को लक्ष्य करके कवि कहता है कि यहाँ चतुर नागरिक या रसिक व्यक्ति नहीं है जिनके बीच तेरा आदर हुआ करता है। हे

गुलाब ! तू तो इस छोटे-से गाँव में खिलकर अनखिले के समान ही हो गया है। नगरवासी तो गुलाब का महत्त्व जानते है, वे उसका आदर करते है, इत्र निकालकर बरतते हैं। परन्तु इन गाँव वालो को उसकी इस उपयोगिता का ज्ञान नहीं है। इसलिये उसका विकास भी व्यर्थ हो गया है। तात्पर्य यही है कि हे कवि ! नगरों में तो बड़े-बड़े गुणग्राही और रसिक व्यक्ति रहते हैं जो तेरा आदर करते थे। इस गांव में उनका अभाव है, इसीलिये वे लोग तेरा महत्त्व नहीं जानते। यहाँ तेरा जन्म लेना व्यर्थ ही रहा। अप्रस्तुतप्रशंसा, लाटानुप्रास, छेकानुप्रास और विरोधाभास अलंकार है।

जदपि पुराने ..... **मराल**।

यद्यपि बगुले पुराने है, उन्हें रहते हुए पर्याप्त समय हो गया है, अनुभवी हैं, तथापि वे तालाब में सर्वथा बुरी चाल चलते है, क्योंकि मछलियाँ पकड़ना और धोखा देना ही उनका काम है। ये हंस यदि नये भी है, नये ही आये है, तो क्या हुआ, ये फिर भी अपने रूप और गुणो से सबके मन को हरने वाले है। तात्पर्य यह है कि राजदरबार में कुछ नये कवि आये है उनको पहले से वहां रहने वाले कवि या अन्य दरबारी ईर्ष्यावश नही रहने देना चाहते। उनके लिए कवि कहता है कि ये लोग राजदरबार में पहले से रहकर यहाँ के नियमों को जान गये हैं तो क्या हुआ ? इनका व्यवहार बहुत बुरा है, ये लोग दुष्ट है, अपनी कुटिलता से चुगली खा-खाकर दूसरों को नही टिकने देते। यद्यपि ये नये कवि अभी दरबार में नवीन ही आये हैं और यहाँ के नियमों को नही जानते, तथापि ये अपने सद्गुणो के सबके मन को हर लेने वाले हैं। उनकी चतुराई भयंकर है, इनकी सरलता मन को हरने वाली है। इसलिये इनका आदर करना चाहिए। इसमें भी अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

को कहि सकै ..... **वे फूल**।

कवि कहता है कि बड़ों से यदि बड़-से-बडी भूल हो जाय तो भी उनसे कौन कह सकता है कि तुमने यह भूल की है। देखो, विधाता ने गुलाब की इन काँटों वाली डालियों में कैसे सुन्दर फूल दिये हैं। अर्थात् ऐसे फूल किसी सुन्दर पोदे पर लगने चाहिएँ थे, पर लगे है कांटे वाली डालियो में। यहाँ भी अन्य अर्थ ध्वनित होता है कि यदि एक साधारण से घर में कोई गुणवान् व्यक्ति उत्पन्न हो या किसी नीच व्यक्ति के घर में कोई अनिन्द्य सुन्दरी उत्पन्न हो

जो उपभोग में न आ सके तो विडम्बनामात्र होगी क्योंकि ऐसी सन्तान उच्च कुल में ही उत्पन्न होने योग्य है।

बहकि बडाई··· ·····गुडहर फूल।

तू अपनी बडाई में भूलकर क्यो मस्त हो रही है। भ्रमर के मन को मालती के फूल के अतिरिक्त गुड़हर या जपा का फूल अच्छा नही लगता। तात्पर्य यह है कि कवि किसी सुन्दरी को जो कि अपने सौंदर्य के गर्व पर मस्त है, कह रहा कि तू अपने सौन्दर्य का गर्व मत कर। नायक के मन को तो वही सुन्दरी पसन्द है। उसके मन को जो अच्छी लगे, वही सुन्दरी है। केवल अपने आप अभिमान करने से कोई सुन्दर नहीं समझा जाता। सुन्दर फूल वही है जो भ्रमर को अच्छा लगे। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

पंट पाँखे ·····तुही विहंग।

यहां कवि किसी सन्तोषी को देखकर कह रहा है कि हे पक्षी कबूतर! संसार में एक तू ही सुखी है। तेरे पंख ही वस्त्र हैं, कंकर तेरा खाना, कबूतरी जो तेरी पत्नी है, सदा तेरे साथ रहती है। इसलिये तुझे किसी प्रकार की चिन्ता नही है। तात्पर्य यह है कि संसार में वे लोग सदा दुःखी रहते हैं, जिनकी आवश्यकताएँ अधिक हैं। रात-दिन कपडे, अन्न और पत्नी के वियोग की चिन्ता उन्हें सताती रहती है। परन्तु जिसको किसी प्रकार की आवश्यकता ही नही, उसे क्या दुःख होगा। इससे अपरिग्रह की भावना पर बल दिया है। सम्भव है, दरबार में पर्याप्त समय तक रहने के पश्चात् बिहारी को वैराग्य हो गया हो। अप्रस्तुतप्रशसा अलंकार है।

दिन दस आदर·····तो सनमान।

कोई व्यक्ति राज्य का आश्रय पाकर गर्व करने लगा, वह अपनी बडाई मारता था। कवि उसे लक्ष्य करके अन्योक्ति द्वारा कहता है कि हे कौवे! दस दिन आदर पाकर तू आज अपनी बडाई कर ले, पर यह सम्मान तेरा सदा नहीं रहेगा। जब तक श्राद्ध के पन्द्रह दिन हैं, तभी तक तेरा आदर है, इसके पश्चात् तुझे कोई भी न पूछेगा, सभी ठुकरायेंगे। श्राद्ध के दिनों में लोग कौवों को बलि देते है, पर बाद मे उन्हे दुतकारा जाता है। इसी प्रकार उस मनुष्य को कवि कहता है कि तू दस दिन के लिए यह आदर का पद पाकर अपनी

बड़ाई कर ले। जब यह अवधि बीत जायेगी, तब तुझे कोई भी न पूछेगा। अप्रस्तुतप्रशसा अलकार है।

मरत प्यास ..... बलि को बेर।

कवि कहता है कि देखो समय का ऐसा चक्कर है कि तोता तो पिंजरे में पड़ा प्यासा मर रहा है और बलि (श्राद्ध का अन्न) देने के लिए कौवों को बड़े आदर से बुलाया जा रहा है। यह आश्चर्य का ही विषय है। श्राद्ध के दिनों में लोग कौवों को भोजन बुला-बुलाकर देते हैं। उस समय उन्हें यह अवकाश नहीं रहता कि तोते की भी देख-भाल कर ले। तात्पर्य यह है कि विपरीत समय आने पर दुर्जनों का लोग सम्मान करते है और जो सज्जन हैं, उनकी उपेक्षा कर देते है। अप्रस्तुतप्रशसा अलकार है।

जो सिर धरि ..... पद रियल पाँव।

जिस मुकुट को सिर पर पहनकर राजा-महाराजा बड़ा आदर प्राप्त करते हैं, यदि कोई यह सोचकर कि मेरा मुकुट है, मैं चाहे जहां पहनूँ उसको पावों में पहरने लगे तो मुकुट तो इस विषय में कुछ नहीं कहेगा, पर पहनने वाला ऐसा करके अपनी मूर्खता ही प्रकट करता है। तात्पर्य यह है कि जैसे मुकुट शिर पर धारण करने योग्य होता है, पर कोई उसे पैरों में पहनने लगे तो उसी की मूर्खता का ज्ञान होगा कि इसको यह भी ज्ञान नहीं किस वस्तु का उपयोग कैसे होता है। इसी प्रकार यदि कोई राजा गुणी व्यक्ति के गुणों का अनादर करके उसे छोटे पद पर नियुक्त करता है या उससे उसके अयोग्य काम लेता है तो यह काम लेने वाले प्रभु की ही निन्दा का कारण होता है। अप्रस्तुत-प्रशंसा अलकार है।

चले जाहु ..... ओड़ कुम्हार।

किसी राजदरबार में कोई विद्वान् या गुणी व्यक्ति चला गया है। वहाँ पर ऐसे व्यक्ति का सम्मान नहीं होता, मूर्ख और नीच व्यक्तियों का वहाँ प्रभुत्व है। उसको लक्ष्य करके कवि कहता है कि हे व्यापारी तू यहां कहाँ आ गया है? यहाँ से चला जा, यहां हाथियों का व्यापार करने वाला कौन है? तू नहीं जानता कि इस नगर में केवल धोबी, ओड़ (एक जाति) और कुम्हार रहते हैं जो कि गधों की ही पहिचान रखते है। भला हाथियों का व्यापार ये लोग क्या करेंगे। तात्पर्य यह है कि यहा तो कोरे धूर्त और मूर्ख व्यक्ति एक-

त्रित हो गए है । ये लोग भला गुणी और विद्वान् का महत्त्व क्या जाने ? ये तो केवल चाटुकारी ही पसन्द करते है । अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है ।

विषम वर्षादित · मूढ़ पयोधि ।

वृष राशि के सूर्य वाले समय अर्थात् ज्येष्ठ के महीने में जो कठिनाई से बुझने वाली प्यास लगती है, उसको मतीरे अर्थात् तरबूज ढूँढ़ ढूँढकर उनके पानी से शान्त करके लोग जीते है । इस प्रकार वह तरबूज ही भला जो ऐसे समय में प्यासे लोगों की प्यास बुझा देता है । किंतु असीमित परिमाण से रहित और अथाह जल से भरे, बिना किसी प्रयोजन के अर्थात् किसी काम न आने वाले समुद्र को मारो अर्थात् ठुकरा दो, तात्पर्य यह है कि गर्मी के मौसम में जेठ के महीने में जब लोगों को तीव्र प्यास सताती है तो लोग तरबूज का पानी पीकर अपनी प्यास बुझा लेते है । किंतु समुद्र में इतना अनन्त पानी भरा रहता है, पर वह किसी काम नहीं आता । इसी प्रकार कोई बहुत धनी हो, पर उसका धन किसी दुःखी के काम न आता हो तो वह तिरस्कार के योग्य है । उसकी अपेक्षा वह व्यक्ति श्रेष्ठ है जो कि साधारण स्थिति का होकर भी दूसरों की सहायता कर देता है । यहाँ पर व्यतिरेक और अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार है ।

गिरि ते ऊँचे · पगार ।

जिस प्रेम रूपी समुद्र में रसिक व्यक्तियों के पहाड़ से भी ऊँचे अर्थात् महान् हृदय मग्न हो जाते है, वही पशु के समान मूर्खों के लिए कम गहरा नाला है । पर्वत अचल होता है, पर रसिक व्यक्तियों के मन उससे भी अधिक ऊँचे हैं, अधिक भावपूर्ण है, प्रेम के अथाह समुद्र में वे गोता खा जाते हैं अर्थात् प्रेम का आनन्द वे ही भोग पाते है । परन्तु जो लोग गंवार है, वे उस प्रेम का महत्त्व नहीं जानते और उसे उपेक्षा योग्य ही समझते हैं । यहां रूपक, उल्लेख और विरोध अलंकार है ।

चटक न छाड़त · रंग चीर ।

सज्जनों का गहरा प्रेम घटता-घटता भी अपनी चमक नहीं छोडता । अर्थात् समय बीतने पर यदि उस प्रेम में कुछ कमी भी आ जाय तो भी उनकी चमक थोड़ी बहुत बनी रहती है । वह प्रेम सर्वथा नष्ट नही होता । उदाहरण देते है कि देखो, चोल के अर्थात् मंजीठ के रंग में रंगा हुआ वस्त्र चाहे फट

जाय, पर उसका रंग फीका नहीं पड़ता। उसका रंग नहीं उतरता। चाहे कितना ही पुराना क्यों न पड़ जाय। यहाँ कवि ने दुर्जनों के प्रेम से तुलना की है। दुर्जनों का प्रेम थोड़े ही समय तक रहता है, उसके पश्चात् समाप्त हो जाता है। उसका कोई चिन्ह भी शेष नहीं रहता। इस प्रकार दृष्टान्त, विशेषोक्ति और अनुप्रास अलंकार हैं।

तन्त्री नाद ..... सब अंग।

वीणा का संगीत, रसीली कविताओं का आनन्द और प्रेम भावना का रंग ये तीनों अपूर्व हैं, इनमें जो नहीं डूबे, जिन्होंने इनका आनंद नहीं लिया, या जो इनके रसास्वादन में तल्लीन नहीं हुए, वे तो डूब गए। जो सम्पूर्ण अंगों से अर्थात् पूर्ण मन से इन में डूबे, जिन्होंने तल्लीन होकर इनका आनन्द लिया वे मनोज रूपी समुद्र से पार हो गए। इसमें विरोधाभास और और लाटानुप्रास अलंकार हैं।

कालि दसहरा ..... बिन काज।

कोई गुणी व्यक्ति उपयुक्त अवसर पर इधर-उधर घूमता फिर रहा है, उसका अवसर बीतने वाला है; इसके विषय में सचेत करता हुआ कवि उसे कह रहा हैं कि हे नीलकंठ! कल को दसहरा बीत जाएगा जो कि वर्ष भर में तेरे सम्मान का एक ही दिन तो है। अरे नासमझ! जरा मन में कुछ तो लज्जा कर! तू बिना ही कारण पेड़ों में क्यों छिपता फिर रहा है। एक दशहरे के दिन तो तेरा आदर होता है, उसी दिन तू यदि दिखाई न दिया तो फिर तुझे कौन पूछेगा। इतना प्रिय होकर भी तू निर्गुण के समान इधर-उधर क्यों छिपता है। तुझे लज्जा किस बात की है। तात्पर्य यह है कि ज्येष्ठ के महीने में जो दशहरा आता है, उस दिन नीलकण्ठ पक्षी के दर्शनों का माहात्म्य माना जाता है। इसी प्रकार उपयुक्त सभा आदि के अवसरों पर ही गुणी व्यक्ति के गुणों का प्रदर्शन होता है। ऐसे समय पर तो उसे जान-बूझकर सबके समक्ष आना चाहिए। पर जब वह इधर-उधर छिपता फिरेगा, या झिझकेगा, तो लोग उस पर हँसेंगे। इसलिए गुणी होते हुए उसे छिपने या लजाने की आवश्यकता नहीं है। अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार है।

समै समै ..... रुचि होय।

कवि कह रहा है कि संसार में कोई भी वस्तु स्वभावतः भली या बुरी

लाखों-करोड़ों की संख्या वाली सेना को समुद्र के पार कर दिया। तेरे कर्म तो पत्थर के समान भारी है जो कि तुझे इस संसार रूपी समुद्र में डुबा देंगे। पर भगवान् राम की कृपा ही ऐसी है कि इन कर्मों से भी तुझे इस भवसागर के पार लगा सकेगी। रूपकातिशयोक्ति और पर्यायोक्त अलंकार हैं।

भजन कह्यो ..... भज्यो गवार।

कवि कहता है, हे मन! जिस ईश्वर को भजने के लिए तुझे कहा, उससे तू दूर भागा, एक बार भी नहीं भजा, और जिन विषय-वासनाओं से तुझे दूर भागने को कहा, हे मूर्ख! तू ने उनका पर्याप्त सेवन किया। यहाँ 'भजन' के दो अर्थ है, भक्ति करना और भागना। इसी प्रकार 'भज्यो' के भी भजा और भागा, दो अर्थ है। इसलिए यमक अलंकार है। विषय-वासनाओं को छोड़कर ईश्वर भजन की प्रेरणा दी है।

दूरि भजत ..... रग गोपाल।

भगवान् गुणों का विस्तार करने के समय अर्थात् जब भक्त अपने गुणों का बखान करने लग जाता है, अपने आपको प्रभु का महान् भक्त कहकर अपने गुण बताने लग जाता है तब प्रभु यह जानकर कि इसका हृदय अहंकार से पूर्ण है, दूर भाग जाते हैं, उस पर कृपा नहीं करते। किन्तु निर्गुण होने पर अर्थात् जब वह अपने गुणों का अभिमान छोड़कर सर्वथा दीन हो, निरहंकार वृत्ति में अपने आपको सर्वथा पतित और शरणापन्न मानता हुआ प्रभु को सच्चे और विनयशील मन से आत्म-निवेदन करता है तो प्रभु भी पतंग के समान इसके हृदय में शीघ्र पास आ जाते हैं। इसमें प्रभु की पतंग से उपमा दी है। निर्गुण और गुण शब्द श्लिष्ट है। पतंग के पक्ष में लगाना होगा कि गुण अर्थात् धागे के विस्तार के समय अर्थात् जब पतंग उड़ाने वाला धागा छोड़ता जाता है तो पतंग दूर होती चली जाती है; पर जब निर्गुण हो जाय अर्थात् उसका धागा समेट लिया जाय या तोड़ दिया जाय तो वह सर्वदा पास आ जाती है। इसी प्रकार यदि गुणों का अभिमान करते रहें तो भगवान् दूर होते चले जायेंगे। यदि निरहंकार वृत्ति से अपने आपको सर्व अवगुणों की खान समझकर प्रभु के चरणों में अर्पित कर दिया

तो वे भी सदा आश्रय देने के लिए निकट ही रहते हैं। श्लेष और उपमा दोनों अलंकार हैं।

पतवारी माला ..... करि नाव।

कवि कहता है कि हे मनुष्य! तू माला को 'पतवार' (नाव की दिशा बदलने का यन्त्र) बनाकर पकड़ और भगवान् के नाम को नाव बना ले, इस प्रकार संसार रूपी समुद्र को पार करले। इससे पार होने का दूसरा कोई और उपाय नहीं है। पतवार नाव की दिशा बदल देती है, माला भी मन की दिशा बदलकर भगवान् की ओर लगा देगी। मन जब भगवान् में लग जायेगा तो ईश्वर का नाम भी सचाई से जपा जायेगा। इस प्रकार मुक्ति हो जायेगी। रूपक अलंकार है।

मन मोहन ..... उर धारि।

कवि कहता है कि हे मन! यदि तुझे मोह या आसक्ति करनी है तो सांसारिक पुत्रादिक से मोह न करके मोहन कृष्ण से कर, उनमें मन को रमा ले। देखना है तो साधारण ललनाओं के सौन्दर्य को छोड़कर बादल के समान सांवले श्यामसुन्दर को देख। यदि विहार करना है, तो कुञ्जों में विहार करने वाले कृष्ण से विहार करो। उन्हीं में मन रमाओ। यदि किसी को मन में धारण करना है, किसी को दिल में बसाना है, तो बजाय किसी रमणी के गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले भगवान् को धारण करें, तुच्छ रमणी को बसाने से कोई लाभ न होगा, गिरधारी को बसाने से वे कभी मन से टलेंगे भी नहीं। तात्पर्य यही है कि मन को सब ओर से हटाकर श्रीकृष्ण में लगा ले। परिकराकुर अलंकार है।

नीकी दई ..... बारन तारि।

कवि कहता है कि हे गोपाल! आपने कानों में अँगुली अच्छी दी, मेरी 'त्राहि त्राहि' की सारी पुकार फीकी पड़ गई है, आपको सुनाई नहीं देती मानों आपने एक बार पुकार होते ही गजेन्द्र का उद्धार करके उस दिन के पश्चात् तारक की पदवी को त्याग दिया है। तात्पर्य यह है कि गजेन्द्र की एक हरि की पुकार करते ही उसकी रक्षा करने आप दौड़ पड़े थे। पर मालूम होता है कि पतित तारन की पदवी आपने हाथी का उद्धार करने के बाद ही छोड़ दी। नहीं तो अनसुनी क्यों करते। यदि स्वाभाविक रूप से

पुकार सुनाई न दी होती, तो कुछ और बात थी । पर आप तो अन्तर्यामी है, इसलिये न सुनने की बात ही नहीं उठती । यहाँ तो जान-बूझकर कानों में अंगुली दे रखी है । जो जान-बूझकर सुनी अनसुनी कर दे, उससे और क्या कहें । काव्यलिंग और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं ।

दीरघ साँस ..... सुकबूल ।

कवि कहता है कि हे मनुष्य ! जब तेरे जीवन में दुःख के समय में घड़ी आती है, तब तो तू लम्बे-लम्बे सांस मत लिया कर । जब सुख का अवसर आता है, तब सुख देने वाले प्रभु को मत भूल । अरे दुःख के समय में हाय-हाय क्यों करता है । विधाता ने जो कुछ तुझे दे दिया है, ईश्वरेच्छा समझकर स्वीकार कर । तात्पर्य यह है कि मनुष्य पर जब कभी संकट पड़ता है तब तो वह चिल्ला-चिल्लाकर ईश्वर को पुकारता है, जब सुख के दिन आते है, तब उसका नाम भी भूल जाता है, यह अनुचित है । जिस ईश्वर से सुख पाना चाहता है, उसके दिये दुःख को भी प्रसन्नता से स्वीकार करना चाहिये ।

ब्रज वासिन ..... कहां ते होई ।

यदि ब्रजवासियों का प्यारा धन—श्री कृष्ण—जिसके आगे और कोई धन अच्छा नही लगता या जिसके प्राप्त होने पर अन्य धन पर मन नहीं जाता, मन में नहीं आया या उसे मन में नही बसाया तो भला बताओ कि सुचित्तता अर्थात् पवित्र मन कैसे हो । तात्पर्य यह है कि जब तक श्रीकृष्ण को अपने मन में नहीं बसाया, तब तक मन पवित्र नहीं हो सकता उसमें केवल विषय कामना ही भरी रहती है ।

कीजै चित ..... गोपीनाथ ।

कविवर बिहारी कहते हैं कि हे गोपीपति ! आप अपने चित्त में वही विचार कीजिये, वही उपाय सोचिये, अर्थात् वही कृपा-भाव रखिये जिससे कि मैं भी अन्य पापियों के साथ ही तर जाऊँ । आपको अन्य पपियों का तो उद्धार करना है ही, उस रेले में मुझे भी एक धक्का दे दीजिये । आप मेरे गुण और दोष के समूह को मत गिनो । कवि का तात्पर्य यह है कि और पापियों के पापों पर जैसे आप सहसा दया कर देते हैं, उनके पापों की गहराई का विचार नहीं करते, ऐसे ही मेरे पापों को भी मत गिनो, केवल मेरी बारी

मैं पाप गिनने की परिपाटी मत चलाइये । अन्यथा मेरे जैसे का तो उद्धार ही असम्भव हो जायेगा । इससे कवि ने अपने पापों की अधिकता बताई है ।

थोरेई गुन · के दानि ।

इस पद्य में कवि प्रेम का उपालम्भ दे रहा है भगवान् को कि हे भगवान् आप तो पहले थोड़े-से गुणों से ही प्रसन्न हो जाते थे, वह स्वभाव आपने अब छोड़ दिया है । हे कन्हैया ! अब तो तुम भी कलियुग के आज के-से दानी बन गये हो । कलियुग के दानी अधिक चापलूसी कराने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से कुछ देते है । जैसे वे लोग बहुत खुशामद करवाते हैं, भगवान् को उपालम्भ दे रहे हैं कि मालूम होता है, तुम्हें भी अधिक खुशामद कराने का अभ्यास पड़ गया है । तभी तो इतनी विनती करने पर भी नहीं सुनते । काव्यलिंग उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

कब को टेरत · जग बाय ।

हे श्याम सुन्दर ! मैं दीन दुःखी या कातर होकर कब से आपको पुकार रहा हूँ, परन्तु तुम सहायक नहीं होते । हे जगदगुरु ! हे संसार भर के पिता हे जगत् के नेता, सूत्रधार ! प्रतीत होता है कि इस चापलूसी प्रिय जगत् की हवा तुम्हें भी लग गई है । जिस दरबार में धूर्त लोग बैठ जाते हैं, वे अपना मायाजाल राजा पर भी डाल देते हैं । इसलिये स्वार्थी संसार का असर उसके स्वामी होने के कारण भगवान् पर भी लग गया कि वे पुकारों को अनसुनी कर देते है । यह कवि के आत्मगत अनुभवों का उद्गार प्रतीत होता है ।

कोऊ कोटिक · दारन हार ।

कवि कहता है कि कोई चाहे करोड़ों की सम्पत्ति जोड़े और कोई हजारों की । पर मेरी सम्पत्ति तो केवल सम्पूर्ण विपत्तियों का भञ्जन करने वाले यदुपति श्रीकृष्ण हैं । इसमें भगवान् पर अनन्य विश्वास प्रकट किया है ।

ज्यो ह्वै हौं · गोपाल ।

कवि कहते हैं कि हे गोपाल ! मैं जैसा भी होऊँगा, होता रहूँगा, अर्थात् मेरी जो दशा होनी होगी, हो जाएगी । मैं अपनी चाल पर हूँ । अपने रास्ते से चल रहा हूँ, इस पर चलते हुए जो कुछ होना होगा देखा जायगा । पर आप मुझे तारने के लिये हठ मत करो । मैं बहुत पतित हूँ और मेरे

उद्धार बहुत कठिन है। इसलिए व्यर्थ का प्रयास मत करो।

मोहि तुम्है ..... निबाहन लाज।

अब कवि प्रेमपूर्ण चुनौती दे रहा है कि हे यदुपते हे कृष्ण! अब मेरी और आपकी बहस पड गई है, बाजी लग गई है। क्योंकि मेरा कार्य पाप करना और आपका कार्य उद्धार करना है। अब देखना है कि मैं पाप करता थकता हूँ कि आप पाप काटते काटते थकते हैं। भक्त प्रेम में ऐसी ललकार दे देते है। सूरदास ने भी अनेक स्थानों पर ऐसी चुनौतियाँ दी हैं। अब आपको और मुझे दोनों को अपना-अपना पद निभाने की लज्जा है। मैं तो पतित होने के नाते अपने स्थान पर डटकर पाप कर रहा हूँ। आपको पतितपावन की पदवी निभाने की लज्जा है।

करो कुबत..... त्रिभंगी लाल।

हे दीनों पर दया करने वाले प्रभो! संसार भले ही मेरी निंदा करे, पर मैं अपने स्वभाव और मन की कुटिलता को नहीं छोड़ूँगा। क्योंकि मन की कुटिलता या टेढ़ेपन को छोड़ देने पर इस सरल और सीधे मन मे तीन स्थान से टेढ़े तुम दुःखी हो जाओगे। भगवान् बंसी बजाते हुए पैर, कमर और शिर तीन स्थानों से टेढ़े हो जाते हैं। टेढी वस्तु टेढ़े हृदय मे ही रह सकती है। कुटिलता छोड़ देने पर मन सीधा हो जायेगा। उसमे टेढ़े प्रभु जी नहीं रह सकेंगे। काव्यलिंग अलंकार है।

मोहूँ दीजै..... गुननि।

कविवर बिहारी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! मैं आपकी शरण में हूँ। जैसे मोक्ष आपने अनेक अजामिल आदि पापियों को दिया, इसी प्रकार मुझे भी मुक्ति प्रदान करो, क्योंकि पापियों के बीच मे मेरी भी गणना है। यदि आप मुझे मुक्ति नहीं देना चाहते और दण्ड के रूप में मुझे बन्धन में बाँधकर सन्तोष है तो अपनी गुणरूपी डोरी से बाँध लो। गुण के दो अर्थ है।

हरि कीजत..... दरबार।

कवि विनय कर रहा है कि हे प्रभो! मैं हजारों बार प्रतिदिन यही विनती करता हूँ कि ऐसी कृपा कीजिये कि जैसे-तैसे भी मैं अपने कर्मों की भयंकरता को विचारकर डरता रहूँ और आपके दरबार में अर्थात् आपके आश्रम में शरणागत होकर पड़ा रहूँ।

तो बलिये ..... कीओर ।

हे चतुर नन्दकिशोर ! यदि आप मेरे कर्मों पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे और उनकी परीक्षा करेंगे तो बलिहारी है । तब तो मेरे साथ भली ही बनी, तुम गौर करके इनकी परीक्षा करके देख लो । अर्थात् अच्छी प्रकार देखोगे कि पाप करने में यह कितना आगे रहा । तब तो आपको दया आयेगी ही ।

जात जात ..... घरी में मोष ।

कवि कह रहा है कि मनुष्य के पास जब धन आता है, तब तो वह और अधिक पाने की इच्छा करता है । पर धन जाने लगता है, तब वह कहता है 'चलो इतना भी रह जाय तो बहुत है' इसमें और नहीं चाहिये । जैसा सन्तोष यों धन घटने के समय होता है, वैसा यदि धन प्राप्ति के समय हो जाय तो घड़ी भर में मोक्ष मिल जाय । मनुष्य को अन्य इच्छाएँ रहें नहीं, मन ईश्वर में लग जाय । झंझटों से छुटकारा हो जाने के कारण मुक्ति हो जाती है ।

———

*

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

शब्दार्थ

पृ० ३५०—भुजबन्ध=भुजाओं का बन्धन। धराये=पकड़े हुए। अचैन=आकुलता। कंज=कमल। माताये=मस्त हो गये। कदली वन=केले का वन। प्रेम पगे=प्रेम पूर्ण। रंग-रस-रारनि=प्रणय कोप, प्रेम में रूठना। विपिन-बिहारन की=वन में क्रीड़ा करने की। दिवैया=देने वाली। सुख रासिन=सुख का समूह। अघात=तृप्त। जुड़ात=शीतल होते थे। घिरियो करैं=जला करती हैं। हेरिबोइ=देखने वाले, ढूंढ़ने वाले। हिरिबो करैं=खोजे जाते है। हुते=थे। जाम=पहर। क्रीट=मुकुट, किरीट। धराइ=पहन कर। बलाइ=संकट। सील सनी=सुशीलता पूर्ण, ठण्डी। बात=वायु, बातें। दुदिन=बादल वाला दिन। हरियाने तें=वर्षा से, हरियाली से। निफल=निष्फल। निबारि=दूर कर देंगे। सुधाकर मुखीनि=चन्द्रमुखियों का।

पृ० ३५२, ३५३, ३५४—कछार=गीली भूमि। अरुझानी=उलझ गई। गुठाने से=ठगे गये से। गले मे=ग्लानि पूर्ण। हूल हूले=कम्पित, घबराये। हेरत=देखते। हिराने=हैरान। समोई=समाई। विभूति=वैभव। पोई=व्याप्त। प्रभेद=भिन्न। थहरानी=कांप उठी। रिसानी=क्रोध में भर गई। बररानी=बड़बड़ाने लगी। बिथकानी=बेसुध हो गई। रंजन=प्रसन्न करना उमाहि=फुलाकर। मुकुर=दर्पण। भखिबो=खाना। निरूपि चुके=वर्णन कर चुके। त्रिकुटी=भौंहों के बीच।

पृ० ३५५, ३५६—दरिबे को=दूर करने को। बैन-पाहन=वचनरूपी पत्थर। प्रतिबन्ध=रुकावट। बानक=ढंग, तरीका। उतै=उधर ही। गुहारि=सलाम या नमस्कृत। सारंग=मृग। सीरी=ठण्डी।

पृ० ३५७, ३५८—बिहाइ=छोड़कर। दरैगी चूरेंगी। झार=लपट। सांसति=कष्ट। ललकि=उत्कण्ठा से, चाव से। कनूका=टुकड़ा। छिगुनी=छोटी अँगुली। छेम-छत्र=कुशल रूपी छत्र।

पृ० ३५९, ३६०—कूर=मूर्ख। छतीसे=छत्तीस घाट का पानी पिये, चालाक। बिलग=पृथक्। प्रान मूरि=जीवन के मूल, आधार। बंमतिका-वली=बमन्ती लता की पंक्ति। बाम=उलटा, विपरीत। मीन मेख=दोष, कमी।

पृ० ३६१—पतन=पराजय, गिर जाना। नतन=नम्रता, झुके हुए।

पृ० ३६२—सारत=पोंछते है। उद्गार=भाव। हिरानी=खो गई। उधिरानी=ऊपर खो गई। दरेरनि=खाइयों में। भूरि=बहुत। नाठी=छोटी।

व्याख्या

(प्रसंग—यह कवि द्वारा कुछ परम्परा और कुछ कल्पना द्वारा लिखा गया है। श्रीकृष्ण उद्धव के साथ यमुना-स्नान के लिये गये थे। वहाँ पर खिले हुए कमलों को देखकर उन्हे सहसा व्रज का स्मरण हो आया। उनकी दशा देख-कर उद्धव ने उन्हें ज्ञान का उपदेश देना आरम्भ किया। इस पर कृष्ण ने उद्धव को कहा कि तुम एक बार व्रज भूमि में जाओ, और गोपियों को जो मेरे विरह में व्याकुल हैं, यह ज्ञान समझाओ। यदि उन्होंने तुम्हारे उपदेश को मान लिया तो हम भी स्वीकार कर लेगे। उद्धव व्रज भूमि में गये वहाँ के वाता-वरण में वे भी वैसे ही हो गये। कवि ने मौलिक रीति से उद्धव-गोपी संवाद का वर्णन किया है)।

आए भजबंध .... आए हैं।

श्रीकृष्ण परम सखा उद्धव के कंधों में भुजाओं का बंधन किए अर्थात् दोनों हाथ उनके गले में डालकर जैसे-तैसे भवन पर आए हैं। प्रेम-विह्वलता के कारण उनके पैर पृथ्वी पर सीधे न पड़कर लड़खड़ा रहे हैं। उद्धव द्वारा पकड़े न जाकर वे डगमग करके पैर भूमि पर टेक रहे है। रत्नाकर कवि कहते हैं कि वे मुख से न कुछ बोल रहे हैं, न कुछ समझते हैं, बेसुध हैं, न नेत्र ही खोलते है, उनके चित्त में आकुलता छाई हुई है। अब कवि इस विह्वलता का कारण प्रकट करता है कि यमुना में बहते हुए कमल में श्री राधा के शरीर में

मिलने वाली मधुर गन्ध पाकर इस प्रकार मतवाले हो गए है कि जैसे कदली वन का ध्यान करके गजेन्द्र मस्त हो जाता है। श्रीकृष्ण यमुना में स्नान करने गए थे, किन्तु स्नान करने के पश्चात् पुनः नये सिरे से प्रेम की नदी से नहा आए हैं। स्नान की पुनरावृत्ति हो गई। पहले यमुना में नहाए, पर कमल को देखते ही राधा का स्मरण हुआ, जिससे प्रेम की भावना उमड पडी, उसमें भी नहा लिए हैं। स्मरण अलंकार है। कृष्ण की प्रेम-विह्वलता का वर्णन करके उनके उत्कृष्ट प्रेम की व्यंजना की है। साथ में उपमा अलकार भी है।

नंद औ ..... को आवती।

श्रीकृष्ण अपनी मानसिक दशा का वर्णन उद्धव से करते है कि हे उद्धव! हमें ब्रजवासियों की सुधि नित्य ही बुलाने के लिये आया करती है। प्रतिदिन उनका स्मरण हो आता है, जिससे प्रतीत होता है कि वे हमें बुला रहे है। यह स्मृति कैसी है, इसका वर्णन करते हैं कि वह सुधि बाबा नन्द और माता यशोदा के प्रेमपूर्ण पालन और बड़े दुलारपूर्वक किए गए भरण-पोषण का लोभ उत्पन्न कराती है, अर्थात् अभी भी इच्छा होती है कि पुनः उनके पास जायें और उनके द्वारा किए गए प्रेमपूर्ण पालन का आनन्द लें। रत्नाकर कवि कहते है कि वहाँ अर्थात् ब्रज भूमि की चन्द्रमा की कांति से भूषित परम सुन्दरी मृग के नेत्रों से सुन्दर नयनो वाली गोपिकाओं के मधुर गुणों का गान कर रही है, अर्थात् उनके उत्कृष्ट गुणों का भी स्मरण कराती है। यमुना तटवर्ती हरी-भरी भूमि में होने वाले रास-विहार और प्रेम में होने वाले प्रणय कोप अर्थात् मान-मनौवल की तथा वनो में किये गये विहारों की हबस अर्थात् कामना उत्पन्न करती है। तात्पर्य यह है कि अभी भी उस ब्रज में जाकर रास-विहार करने की साध मन में उठती है। यह ब्रजवासियो की याद सुख के समूह को देने वाली है। अर्थात् इस स्मृति द्वारा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। ऐसी स्मृति सदा हमें भुलाने को ही आती है।

रूप रस ..... फिरिबो करैं।

ब्रज में निवास के समय की दशा की वर्तमान स्थिति से तुलना करते है कि देखो जो नेत्र पहले उन गोप-बालाओं के सुन्दर रूप रूपी रस का पान करते हुए तृप्त नहीं होते थे. आज वे ही आँसू बनकर

ऊपर उमड करके नीचे गिरा करते हैं। पहले रूप के रस का पान करते थे, अब आँसू बहाया करते हैं। रत्नाकर कवि कहते हैं कि देखो जिन गोपियों को देख-देखकर ये आँखें शीतल हो जाती थीं, आज उन्हें स्मरण करके कुम्हार के आवे की भाँति जला करती हैं, समय के परिवर्तन से परिस्थिति मे या इन आँखो की दशा में इतना उलट-फेर हो गया है कि ये आँखें जिन्हें देखकर फिर जाती और फिर उन्हें देखा करती थीं। अर्थात् एक बार देखकर जब इन आँखों को लौटाया जाता तो ये फिर लौट-लौटकर वहीं दौड़-दौड़कर जातीं, आज वे देखने वाली आँखें स्वय ही उसको देखने को फिरती है, तरसा करती है। ये नेत्र सदा ब्रज के जिन कुंजो में घूमा करते थे, अर्थात् उनकी सुन्दर शोभा को देखा करते थे, आज वे ही कुंज इन आँखों में फिरा करते है। विशेष अलंकार है।

मोर के पखौवन ..... करि हैं कहा।

श्रीकृष्ण कहते है कि ब्रज भूमि में पहना गया मोर के सुन्दर पखों का बना चमकीला मुकुट छोड़कर अब यहाँ मथुरा में मणियों से जडा हुआ मुकुट धारण करके क्या करेंगे अर्थात् वह तो उनके सामने कुछ भी नही है। रत्नाकर कवि वर्णन कर रहा है कि भगवान् कृष्ण उद्धव से कहते है कि आज यहाँ मथुरा में हमें छहों रसों वाले पदार्थ खाने को मिलते हे पर ब्रज में मिलने वाले उस चिकने और प्यार भरे अर्थात् प्रेम से दिये हुए सरस माखन के बिना उन पकवानों को चबाकर क्या करेगे अर्थात् व्यर्थ हैं। ब्रज को छोड़कर यहाँ हम पृथ्वी का भार उतारकर इन्द्र और अन्य देवताओं का कष्ट हरने को आये हैं। परन्तु उन सच्चा प्रेम रखने वाले गोपों, गोपबालाओं और अपने बाल-सखा ग्वालों को अपने विरह की आग में तड़पाकर इन्द्र आदि देवताओं की विपत्ति को दूर करके भी क्या करेगे। अर्थात् जो बेचारे हम पर अनन्य भाव से आश्रित हैं, उन ब्रजवासियों को तो विरह की आग में तड़पायें, इधर देवताओं के कष्टों को हरें तो क्या किया, अर्थात् यह सब व्यर्थ है। अहा! ब्रज भूमि में मिला हुआ गोविन्द अर्थात् गोपति और गोपाल जैसा प्यारा कर्म और प्रेममय नाम छोड़कर अब तीनों लोकों के स्वामी के नाम से पुकारे भी गये तो क्या? अर्थात् वे ही नाम प्रिय थे। वास्तव में उनको ठुकराना उचित नहीं है।

सील सनी ..... रसाने तैं।

इसी समय पूर्व दिशा की नमी या जल के छींटों से भरी सुरुचिपूर्ण अर्थात् सुखदायक पवन चली। इससे मुँदी हुई आँखे खुल गईं और उनमें कुछ और ही चमक प्रकट हुई। व्याकुलता के कारण चंचल घनश्याम अर्थात

श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के हृदय में सहसा एक चमक उठी, तात्पर्य यह है कि एक भावना के रूप में नई कान्ति उत्पन्न हुई। इसमें कवि वर्षा का भी वर्णन कर रहा है। वर्षा ऋतु में पानी के कण लिये ठंडी-ठंडी पूर्वी हवा चलती है जिससे वस्त्रों और मकानों में सील या नमी-सी आ जाती है। बादलों में रह-रह करके बिजली चमकती है। कृष्ण के पक्ष में तो अर्थ है कि शील अर्थात् सुन्दर स्वभाव से सुरुचिपूर्ण पहले की अर्थात् ब्रजनिवास की बातें चलीं तो प्रसन्नता से श्रीकृष्ण की मुँदी आँखें खुल गईं और चमक उठीं, उनमें अपूर्व कान्ति दिखाई दी। दूसरे पक्ष में नमी से भरी पूरब की ठंडी हवा चलने से मिदुराने—बादल के कारण अंधेरा छा जाने से और ही कान्ति उठी। इसी समय व्याकुलता के कारण श्री घनश्याम—श्यामसुन्दर के चचल मन में एक आशा की बिजली चमक उठी जो कि दस रूपी दिशाओं में थी, बिजली बादल में चमकती है, पर किसी दिशा में चमकती है, कृष्ण बादल बनाये हैं, उनका हृदय ही बादल का अन्तर है, कृष्ण के मुख पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दी है, इसमें कुछ-कुछ दांत खुल गये हैं, वही दिशा हैं। आशा शब्द के यहाँ दो अर्थ लिये हैं : १—दिशा, २—आशा या उम्मेद। इस प्रकार भावना या आशा की बिजली चमकी, स्वर्ग लोक में दुर्दिन छा गया, जिस दिन आकाश में बादल छाये हों, उसे दुर्दिन कहते हैं। श्रीकृष्ण के ब्रज जाने की आशा से देवलोक के लिये तो बुरा दिन हो गया, क्योंकि पुनः ब्रज मे रम जाने पर कृष्ण से अपने उद्धार की आशा न रहती। वर्षा की बूँद बरस जाने से ब्रज के लिए दिन शुभ हो गया, तथा कृष्ण की आँखों से ब्रज की स्मृति में आँसू बहने से ब्रज के लिये शुभ दिन हो गया कि भगवान् पुनः उधर आयेंगे। श्रीकृष्ण की आँखों के कोरों में जल का प्रवाह बह, आँसुओं की धारा बही, नदी की धारा कृष्ण के नेत्रों के किनारे बही, किन्तु श्रीकृष्ण की दशा को देखकर द्रवित हुए, उद्धव के हृदय-पट से धैर्य बह गया। वर्षा में नदी उमड पड़ती है, उसके तीर पर जो कुछ भी होता है, नदी की धारा में बह जाता है। यहाँ भी जब अश्रु-वर्षा हुई तो कृष्ण के नेत्रों के कोरों में नदी उमड पड़ी, उसके प्रवाह में उद्धव के हृदय की स्थिरता भी बह गई। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण को प्रेम-विह्वल देखकर उद्धव का ज्ञान स्थिर मन भी रस के प्रवाह में भीग गया। इस पद्य में श्लेष, रूपक, असंगति अलंकार है।

प्रेम नेम..... लहैं हम।

श्रीकृष्ण को उद्धव ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया और कहा कि आप तो ज्योति-स्वरूप हैं, आपको ऐसी विकलता नहीं दिखानी चाहिये। जो ज्ञान

द्वारा आपको पाने का प्रयत्न करें, आप उन्हें दर्शन दीजिये, इस प्रकार क्यों किसी के वियोग में अपनी मर्यादा खोकर विकल होते हैं। इस पर भगवान् उत्तर देते हैं कि हे उद्धव ! तुम जब ब्रज में अपने उपदेश का सफल प्रचार कर आओगे और गोपियों को यह ज्ञान दे आओगे, तो हम भी इस निष्फल अर्थात् व्यर्थ कुछ काम न आने वाले प्रेम के व्रत को हृदय में से निकालकर उसमे आनन्द का घर या खजाना (जैसा कि तुम कहते हो) भर लेंगे।

रत्नाकर कहते हैं कि चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली उन गोपियों का ध्यान आँसुओं मे धोकर अर्थात् उनकी याद में आँसू बहा बहाकर मन में से उन्हें निकाल-निकालकर ब्रह्म की ज्योति को जलाकर उससे जल लेंगे। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म निराकार और प्रकाशस्वरूप है। उद्धव कहता है कि हृदय में उस ब्रह्म की ज्योति को जलाओ और उसी का ध्यान करो। कृष्ण कहते हैं कि अब तो हम गोपियों का स्मरण करके उनके विरह की आग में जल रहे हैं, तुम्हारे कहने से ब्रह्म-ज्योति की आग में भी जल लेंगे। एक बार तुम जरा गोकुल गाँव की धूल तो लगा आओ, फिर हम तुम्हारे इस ज्ञान पर विश्वास कर लेंगे। तुम यदि गोपियों को समझा लोगे तो हम मन से, आत्मा से, कानो से, शिर और आँखों से अर्थात् बड़े आदर से हे उद्धव ! तुम्हारी शिक्षा को स्वीकार कर लेंगे, तुम्हें स्वय कहेंगे कि आओ, हमें उपदेश दो।

लेके उपदेश..... .....के भार में।

उद्धव श्रीकृष्ण का उपदेश और गोपियों को विरह से बचा लेने का सुन्दर यश कमाने का उत्साहपूर्ण भाव लिये हुए थे। वे बड़े उत्साह से चले कि मुझे गोपियों को विरह वेदना से उबारने का सुन्दर यश मिलेगा। पर रत्नाकर कवि कहते हैं कि विरह-वेदना से विकल श्रीकृष्ण की दशा देखकर उद्धव भी इस प्रकार विकल हो गये कि मन सँभाल में न रहा। उन्हें अपनी सुध-बुध न रही। वे मथुरा से जो ज्ञान की गठरी लादकर लेकर चले थे, उसकी गांठ न जाने कहाँ खुल गई और सब कहाँ छरक अर्थात् बिखर गई, सब धीरे-धीरे यमुना की हरी-भरी भूमि में बिखर गई। उनके पास ज्ञान की यही तो पूंजी थी, वही रास्ते में बिखर गई। कुछ तो मार्ग में आने वाले तमाल के वृक्ष की डालियों में रुक गई या रह गई और कुछ करील की झाड़ियों में उलझकर रह गई। उद्धव कोरे-के-कोरे रह गये। तात्पर्य यह है कि उद्धव जब ब्रज को चले थे, तब तो उन्हें अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान था, पर जब उन्होंने कृष्ण की दशा देखी तो उनकी चुस्ती तो वहीं समाप्त हो गई। जब वे ब्रज की हरी-भरी भूमि में पहुँचे तो उनका ज्ञान धीरे-धीरे लुप्त होने लगा। कुछ तो

उनकी वृत्ति तमाल वृक्षों में रम गई और कुछ हरी-हरी करील की झाड़ियों में। ज्ञान की अनुभूति कुछ भी शेष नहीं रही। यहाँ कवि ने उद्धव की तुलना उस छोटे व्यापारी से की है जो कि कोई चंचल जैसी वस्तु की गठरी लादकर व्यापार के लिये अन्य गाँव में जाता हो, किसी कारण उसका ध्यान कहीं और लगा हुआ हो, इसी बीच में गठरी की गांठ अनजाने में ढीली पड जाय तो गठरी में बंधी वस्तु धीरे-धीरे नीचे बिखरने लगती है और मनुष्य के देर तक सावधान न होने पर सारी ही बिखर जाती है। वह बिना पूँजी का रह जाता है। पूँजी उस धन को कहते है जो वह व्यापार में लगाता है। उद्धव पर उपहासमूचक व्यंग किया है।

भेजे मन भावन ..... सकै लगीं।

उद्धव ब्रज में पहुँच गये, नन्द के घर जाकर ठहरे। ब्रज के गाँवों में बिजली की भाँति समाचार फैल गया कि श्रीकृष्ण के भेजे हुए उनके से स्वरूप वाले कोई सज्जन मथुरा से आये हैं। इसका परिणाम क्या हुआ, इसका वर्णन करते हैं। जैसे ही, ज्योंही प्यारे श्रीकृष्ण के भेजे हुए उद्धव के आगमन का समाचार ब्रज के गाँवों में गोपियाँ पाने लगी, रत्नाकर कवि वर्णन करते हैं कि तैसे ही गोपियों के झुण्ड के-झुण्ड दौड-दौड़कर नन्द की बैठक में आने लगे। सबकी सब अपने कमल के समान चरणों के पंजों के बल पर उचक-उचककर, आगे भीड होने के कारण दिखाई न देने से पंजों के बल खडी होकर आगे को उभरती हुई चिट्ठी देख-देखकर क्षोभ या उत्सुकता से छाती छूने लगी अर्थात् उत्सुकता के कारण धडकने कलेजे को थामने लगीं। सबकी सब आतुरता के साथ सहसा पूछने लगी कि हमारे लिये क्या लिखा है, हमारे लिए क्या लिखा है। इसमें कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण बहुत सुन्दर रूप में किया है।

दीन दसा..... हिराने से।

उद्धव ने ब्रजबालाओं की कृष्ण के विरह में जो दशा देखी, कवि उसका वर्णन करता हुआ उद्धव पर पड़ने वाले प्रभाव पर प्रकाश डालता है। कवि कहता है कि ब्रज भूमि की उन युवतियों की विरह के कारण करुणाजनक दशा देखकर उद्धव ठगे-से रह गए, उनका ज्ञान के बड़प्पन का सारा अभिमान जाता रहा। रत्नाकर कवि कहते हैं कि उनके मुख में कोई बात ही कहने के लिए न आ सकी, करुणा के कारण आँखों में आँसू भर लाए। लजाकर कंपित से हो गए अथवा ललचाने-से लगे। वे सूखे से, थके-से, चकित होने के कारण हक्के-बक्के-से, थकान से पीड़ित से लगते थे, मानो वे कुछ भूल गए हों या भ्रम में पड़ गए हों, डरे हुए हों या किसी ने मूक बना दिये हों। वे ग्लानि

भरे लगते थे, मानो विचलित हो उठे हों, हृदय में उनके मानो बड़ा होल पड़ गई थी, बड़ी वेदना-सी भर गई हो। 'हाय' दुःख सूचक शब्द है जो कि उद्धव की विवश दशा का व्यंजक है। उद्धव उस समय ऐसे हो रहे थे जैसे वे कुछ हार आए हो या स्वयं हरे गए हो उनसे कुछ छीन लिया गया हो, कुछ खोये हुए से वे केवल देखते रह गए। कारक दीपक अलंकार है।

पंच तत्त्व में ..... सब कोई है।

अब उद्धव गोपियों को उपदेश देने लगे हैं कि हे गोपियो! यदि यों कहें कि सच्चिदानन्द अर्थात्—सत्—नित्य, सदा वर्तमान, चित्—सदा ज्ञानमय —आनन्द—सदा आनन्दस्वरूप इन तीनो उपाधियो से युक्त ब्रह्म की सत्ता पांच तत्त्वों में अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के मूल तत्त्वों मे है, तब तो वह हममें, तुममें और उनमें अर्थात् कृष्ण में समान रूप से समाई है व्याप्त है। रत्नाकर कवि कहते है कि पञ्च भूतो की अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन सृष्टि के मूल कारण पाँच महाभूतों की विभूति अर्थात् सामग्री सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थों मे समान रूप से व्याप्त है। जैसे कृष्ण मे इन पंच भूतों की सत्ता है, ऐसे ही अन्य हम, तुम और शेष प्राणियो मे है। संसार में वैसे सब कुछ एक है, इनमे कोई अतर नही है, यह तो प्रतिबिम्ब के कारण ही भेद प्रतीत होता है। माया के जाल से या विस्तार से ही एक वस्तु के अनेक भेद दिखाई देते हैं। जैसे दर्पण में एक ही वस्तु अनेक रूप में दिखाई देती है, इसी प्रकार ब्रह्म से अभिन्न होता हुआ भी यह नाम-रूपात्मक जगत् विभिन्न रूपों में उससे पृथक् दिखाई देता है। इसलिए तुम अपनी आँखों पर पड़े भ्रम के पर्दे को उतारकर ज्ञान दृष्टि से देखो कि कृष्ण सब में हैं और सब कृष्ण में है। उद्धव का तात्पर्य यह है कि परमात्मा नित्य है, ज्ञानमय है और आनन्दस्वरूप है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इनके सार से जो सारी सृष्टि बनी हुई है, उसमें परमात्मा सूक्ष्म रूप से रमा हुआ है। हमारे-तुम्हारे शरीर भी उन पांच तत्त्वों से ही बने हैं इसलिए वह हम तुम सब में ही है, उसके लिए विकल होने की आवश्यकता नही है। सम्पूर्ण संसार उनसे बना होने से एक ही है, केवल माया के प्रभाव से यह जगत् पृथक् दिखाई देता है। वास्तव मे इसका अस्तित्व नहीं है। सर्वत्र सूक्ष्म रूप से ब्रह्म रूप मे श्रीकृष्ण ही विराजमान है। वे हममें और तुममें सदा रहते है। ज्ञान से देखो तो उनका साक्षात्कार होगा। गोपियो ने वास्तव में अपनी उक्ति में पंच तत्त्वों में सच्चिदानन्द की सत्ता का उल्लेख किया था, पर इसमें वक्रोक्ति हो गई है उनके पाँच तत्त्व रूप, रस, स्पर्श, गन्ध और शब्द हैं जिनमें आनन्द की सत्ता है। उद्धव उसका अर्थ और ही लगाते हैं। इस प्रकार कृष्ण को सदा उनके

पास ही बताकर उनके विरह में विकल न होने और ज्ञान दृष्टि द्वारा उनका साक्षात्कार करने का उपदेश देते है।

सुनि सुनि ..... सुखानी हैं।

उद्धव के उपदेश का प्रभाव गोपियों पर क्या पड़ा; इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उद्धव की ऐसी अकथनीय— जिनका वर्णन भी कठिन है, बातों को कानों मे सुनकर अर्थात् कानों में पड़ते ही कुछ गोपियां तो काँप उठीं कोई उसी स्थान पर हक्की बक्की रह गई, बेसुध-सी हो गई। रत्नाकर कवि कहते है कि कुछ तो क्रोध मे भर गई है, कोई बड़ बड़ाने लगीं, कोई फूट फूट-कर रो पड़ी, कोई बहुत बेचैन हो गई, कोई चकित-सी रह गईं, कुछ पसीने से भीग गईं, कृष्ण प्रेम में उनकी विरह वेदना तीव्र हो गई, जिससे उनके शरीर में स्वेद नामक सात्त्विक भाव आ गया। कोई आँखों में आँसू भरकर रह गईं, अर्थात् कुछ की आंखों में आँसू भर आए। कोई मूर्छित होकर चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। कोई श्याम-श्याम की पुकार लगाकर फूट-फूट-कर रो पड़ीं, कोई कोमल हृदय को थाम कर डर कर सूख गईं।

षट रस ..... बजावैं हैं।

गोपियाँ श्रीकृष्ण की कुशलता पूछ रही है कि हे उद्धव ! भला बताओ तो सही, छहो रसों वाले पदार्थ तो मन को सदा ही प्रसन्न करते हैं, ऐसे पदार्थ तो सब कहीं मिल सकते है, पर उन्हें कभी प्यार से दिया हुआ मक्खन भी मिलता है ? अर्थात् राजमहलों में छहो रसों वाले पकवान तो सदा ही मिलते रहते है ? पर उस प्यार मे मक्खन कौन देता होगा जो उन्हे हमारे यहाँ से मिला करता था। रत्नाकर कहते हैं कि यशोगान करने वाले भाट तो सब ही होंगे अर्थात् केवल दरबार में खड़े होकर स्तुति तो बहुत कर देंगे, पर सच-सच बताओ कि ऐसे कितने है, जो उनको प्यार से दुलारते है, अर्थात् ऐसे बहुत कम होंगे ! वे इन्द्र के समान रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठकर ससार में चारों ओर अपना शासन या राजकार्य चलाते हैं, पर ये तो बताओ कि भला कभी वे यमुना के तट पर जाकर किसी वट वृक्ष के नीचे, बड़ के पेड़ की छाया में पसली फुलाकर वंशी भी बजाया करते हैं या नहीं ? तात्पर्य यह है कि वे मथुरा जा-कर राजाधिराज तो बन गए है, पर कभी उन्हें इस ब्रजवासी जीवन की याद आती है या नहीं ?

काहू दूत ..... बिचारी को।

पहले पद्य में तो गोपियों ने कृष्ण की अवस्था पूछी। अब वे उद्धव की खबर लेती हैं। कहती है कि उद्धव ! तुम कहते तो यह हो कि मैं श्रीकृष्ण का सदेश लेकर आया हूँ, प्रचार कर रहे हो ब्रह्म का, इसलिए हम पूछती हैं कि

तुम कृष्ण के दूत हो या किसी ब्रह्म के दूत बनकर ब्रज की स्त्रियों की बुद्धि को फेरने के लिए यहाँ आये हो। रत्नाकर कहते हैं कि तुम प्रेमी का संदेश लेकर आये हो पर प्रेम का मार्ग नहीं जानते हो, अनाड़ी की नीति या अनाड़ियों का तरीका लाकर अड़ा रहे हो। प्रेमियों की बातें, व्यवहार सब विदग्धतापूर्ण होते हैं, अनाड़ीपन के, नहीं। तुमने यह कहा है कि सम्पूर्ण संसार ब्रह्म रूप होने से कृष्ण से अभिन्न है, यदि हम ऐसा मान भी लें कि कृष्ण में और हम में तात्त्विक दृष्टि से भेद नहीं है, यह बात कि हम और कृष्ण एक हैं, यह अभिन्नता की भावना ऐसी धारणा हमें अच्छी नहीं लगती। ब्रह्म और कृष्ण की एकता तो हम मान भी लें किन्तु अपने आप को कृष्ण से अभिन्न नहीं मान सकतीं। भाव-दृष्टि से हम कृष्ण और ब्रह्म की एकता भी पसन्द नहीं करतीं। कृष्ण के साथ हमारी अभिन्नता या कृष्ण की ब्रह्म के साथ अभिन्नता मानने से क्या हानि होगी, यह बताती हैं कि यदि बूंद समुद्र से एकरूप हो जाय तो समुद्र की जलनिधिता का कुछ न बनेगा न बिगड़ेगा, जिस समुद्र में हजारों नदियां नित्य पड़ती हैं, उसमें एक और बूंद पड़ जाने से उसकी स्थिति में क्या अन्तर आ सकता है अर्थात् कुछ नहीं। पर बेचारी बूंद का बूंदपन नष्ट हो जायगा। समष्टि में व्यष्टि के एकरूप हो जाने पर एकमात्र समष्टि रह जाती है, व्यष्टि का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, इसी प्रकार ब्रह्म में कृष्ण की एकता हो जाने से उसका व्यक्तिगत वैशिष्ट्य लुप्त हो जायगा। कृष्ण से अपनी अभिन्नता भी हम नहीं मान सकतीं, ऐसा करने से हमारी पृथक् सत्ता का ही लोप हो जायगा। हमें अपना व्यक्तित्व नहीं मिटाना है। एकता में प्रिय और प्रियतम का भेद ही क्या होगा? फिर तो सारा प्रेम और अब तक की सारी वेदना सब व्यर्थ हो गई। इसलिये यह अभिन्नता हमें नहीं चाहिये। यहाँ कवि ने चतुराई से शांकर अद्वैतवाद का भी खण्डन कर दिया है। अद्वैतवाद में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता मानकर ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता स्वीकार की है, वहाँ आत्मा द्वारा अपने स्वरूप का ज्ञान पा लेना ही मुक्ति समझी जाती है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद और विष्णु स्वामी के शुद्धाद्वैतवाद में जीव की सत्ता ईश्वर से पृथक् है, वह ब्रह्म से अभिन्न न होकर उसका अंश है, इसीलिए प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा जीव परमात्मा का अनुग्रह पाना चाहता है। भक्त ईश्वर में एकरूप होकर अपने व्यक्तित्व को लीन करने की इच्छा कभी नहीं करता। इसीलिए गोपियां कृष्ण के साथ अपनी अभिन्नता स्वीकार नहीं करतीं। रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

चिन्ता मनि ..... लखिबौ कहौ

सुन्दर चिन्तामणि रत्न को धूल में फेंककर तुम मन रूपी दर्पण में कांच को सुधार या सजा कर रखने को कहते हो। अर्थात् जैसे कोई चिन्तामणि

रत्न को तो फेंक दे और काच को धो और साफ करके सँभाल कर रखना चाहे। इसी प्रकार तुम भी साक्षात् कृष्ण को भुलाकर अनजाने उस निर्गुण ब्रह्म की उपासना को कहते हो। रत्नाकर कवि वर्णन करते है कि गोपियाँ उद्धव को कहती है कि हे उद्धव ! तुम्हारी बुद्धि को बलिहारी है, तुम कृष्ण के विरह की आग को जो हमे अन्तर ही अन्तर में जलाये दे रही है, बुझाने के लिए हम से वायु खाने को कहते हो, प्राणायाम करके पवन का आहार करने को कहते हो। अच्छा उपचार बता रहे हो कि हवा से आग और धधकती है, तुम उसे बुझाने के लिए बरतने को कहते हो। हमारा अन्तर प्रथम ही जल रहा है, इस वायु भक्षण से और भी जलकर राख हो जायगा। कितना दुःख है कि तुम्हे ऐसा कहते दया भी न आई। कैसे विचित्र हो कि जिस कृष्ण के रूप-रंग को हम प्रत्यक्ष देख चुकी हैं, उन्हे भुलाकर तुम उस निर्गुण ब्रह्म के, जिसे वेद और शास्त्र सर्वथा रूप और किसी भी प्रेम आदि रस से रहित घोषित कर चुके हैं, रूप का ध्यान करने और उसका आनन्द लेने के लिए कहते हो। भला ध्यान के लिए तो साकार रूप की आवश्यकता होती है, उस ब्रह्म को सब शास्त्रकार रूपहीन कह ही चुके है, भला ध्यान कैसे रखे, जो स्वयं नीरस, निराकार, तटस्थ है, उसका आनन्द कैसे ले सकती है। आश्चर्य और दुःख तो इस बात का है कि जिस निराकार को इतने बड़े ब्रह्माण्ड मे ढूँढकर भी नही पा सकते, तुम हमसे उसे भँवों के बीच में आँखें बन्द करके देखने को कहते हो। जो इतना खोजने पर भी विश्व भर मे नही मिलता उसे भला आँखे बन्द करके भँवो में कैसे पा सकती है। निदर्शना अलंकार है।

आए हौ ..... बसावो ना

गोपियाँ उद्धव को कहती है कि हम जानती हैं, तुम मथुरा से हमें योग सिखाने के लिए आए हो, तो हे उद्धव ! तुम ये वियोग की बाते हमसे मत करो। यहाँ वक्रोक्ति से योग का अर्थ मेल या सयोग ले लिया है, इसलिये अर्थ संगत हो गया कि जब तुम सयोग का उपाय सिखाने आये हो तो वियोग के उपाय को क्यों बताते हो (योग साधना के उपदेश से गोपियों को विश्वास दिला दिया था कि अब कृष्ण नही आयेंगे)। रत्नाकर वर्णन कर रहे है, गोपियां कहती है कि तुमने मथुरा से आकर हमे जो दर्शन दिया है, वह दुःख दूर करने के लिए दिया है, पर इन बातों से तुम उलटा दुःख बढा रहे हो। जब दुःख दूर करने को आये हो तो दुःख अधिक तो न बढाओ। अर्थात् तुम्हारी बातें सर्वथा दुःख देने वाली हैं। इन्हे समाप्त करो। हमारा यह मन रूपी दर्पण सहसा टूट जायेगा, जिस मन में श्री कन्हैया की मूर्ति हम बसाये बैठी

है, वह कोमल दर्पण है, सहसा टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा। इसलिये ये कठोर वचनरूपी पत्थर मत चलाओ। पत्थर लगने से शीशा फूट जाता है, यह स्वाभाविक ही है। एक मन को लुभाने वाले कृष्ण को इस मन में बसाया था, उसने तो हमें सर्वथा उजाड़ दिया, हमें बर्बाद कर दिया, अब तुम अनेक मनमोहन मत बसाओ। एक ने तो यह दशा कर दी, अब तुम्हारे ब्रह्म को बसाकर क्या करेंगी? विषम अलंकार है।

नेम व्रत संजम के ..... वारि चुकी।

गोपियां उद्धव को कहती हैं कि तुमने योग और उसके आचार की हमें शिक्षा तो दी है, पर यह तो सोचो कि जब हम स्त्रियों के योग्य लोक-लाज और कुल की मर्यादा के बन्धन या रोक को ही तोड़ चुकी हैं तब भला योग के नियम, चान्द्रायण आदि व्रत और इन्द्रिय-दमन आदि कठोर बन्धनों के पिंजड़े में कौन पड़े। एक बन्धन तुड़ाकर दूसरा बन्धन गले लगाना कौन स्वीकार करेगा। जब हम प्रतिज्ञा करके कृष्ण प्रेम में तन्मय होकर अपने तन और मन की सुध-बुध या संभाल को टाल या भुला चुकी हैं तो भला गुणों के गौरव या महत्त्व का लगर कौन लगाये, इनका आशय या रोक कौन लगाये, हम तो कृष्ण के प्रेम में तन्मय हो जाने का सीधा उपाय या मार्ग निश्चित कर चुकी हैं, ऐसी दशा में योग साधना के समुद्र में सांस रोककर डुबकी कौन लगाये, जब सीधे मार्ग से कार्य हो तो कठिन मार्ग को कौन पकड़ेगा। हे उद्धव! भला तुम सोचो तो सही कि जबकि हम अपने मन रूपी माणिक्य या लाल को ही कृष्ण पर न्यौछावर कर चुकी हैं तो इस मुक्ति रूपी मोती का मोल-मोल या सौदेबाजी का क्या करना है। मन ही जब कृष्ण पर न्यौछावर कर दिया तो मुक्ति रूपी मोती को लेकर हम भला क्या करेंगी। इसलिए अपने योग सन्देश को अपने पास ही रखो। हमें इसकी आवश्यकता नहीं है। अर्थापत्ति अलंकार है। साथ में निरंग रूपक भी है।

रंग रूप रहित ..... करि हैं कहा।

उद्धव रूप, रेखा, रंग आदि से रहित ब्रह्म का उपदेश देते हैं तो एक गोपी कहती है कि हमें कृष्ण के बिना सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थ ही रूप रंग से रहित दिखाई देते हैं, संसार की किसी वस्तु में हमें रूप और रंग के दर्शन नहीं होते, सब फीकी लगती है। भला यह बताओ कि उसी प्रकार के एक रंग-रूपहीन ब्रह्म का ध्यान करके क्या करेंगी? अर्थात् उसका क्या लाभ होगा? उससे भला हमें क्या धीरज मिलेगा? तुम कहते हो कि हृदय में ब्रह्म ज्योति को जलाओ और उसके दर्शन करो, मन को उसमें लीन करो, पर भला बताओ

कि हम तो पहले ही विरह की आग में जली पड़ी हैं, अब और जलकर क्या करेंगी। इस ब्रह्म-ज्योति को हृदय में सुलगाकर और क्या जलेंगी ? जले हुए की तो आग पहले ही तेज प्रतीत होती है। गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव ! कृपा करके इस अपने बतलाये हुए अलक्ष्य अर्थात् दिखाई भी न देने वाले, अरूप अर्थात् जिसका कोई रूप या आकार नहीं है, ऐसे ब्रह्म को उधर अपने पास ही रहने दो; भला यह बताओ जो पहले ही रूप और आकार से रहित है जिसके शरीर भी नहीं और जो दीखता भी नहीं, ऐसे ब्रह्म से हमारे कौन-से कठिन काम सिद्ध होंगे। कड़े काम उससे होते हैं, जो कि हृष्ठ-पुष्ठ शरीर वाला हो, इसका तुम कहते हो कि शरीर ही नहीं; शरीर वाला कुछ सुन्दर और देखने योग्य होता तो हम कहतीं चलो हमें देखकर मन ही बहला लेंगी, पर वह दोनों में से किसी काम का भी नहीं है। ऐसी दशा में भला हम उसे लेकर क्या करेंगी ? एक अनंग—अर्थात् शरीर रहित कामदेव की साधना करने से हमारी सारी साध अर्थात् कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं। अब इस दूसरे अनंग अर्थात् निराकार ब्रह्म की साधना करके क्या लेंगी ? यहाँ तीव्र व्यंग्य किया है कि इस अनंग अर्थात् काम की साधना ने ही तो हमारी यह दशा की है, आज विरह की आग में तड़प रही हैं, दूसरे अनंग की साधना से न जाने क्या दशा होगी। यमक और वक्रोक्ति अलंकार है।

कर बिनु ..... आई है।

अब गोपियाँ बताती हैं कि अरूप या निराकार ब्रह्म क्यों काम नहीं आ सकता। वे कहती हैं कि ब्रह्म को हम तब अपना सकती हैं, जब कि वह कृष्ण के सारे कामों को करे। पर जब उसके शरीर ही नहीं है तो भला उन कामों को वह कैसे पूरा कर सकता है। कृष्ण तो हमारी गाय दुहा करते थे, पर वह ब्रह्म बिना हाथों के हमारी गाय कैसे दुहेगा ? कृष्ण थिरक-थिरककर नाचते और हमें प्रसन्न करते थे, पर उस ब्रह्म के जब पैर ही नहीं हैं तो भला वह थिरक-थिरककर नाच के हमें कैसे प्रसन्न करेगा ? कृष्ण हमारे यहाँ मक्खन खाते थे, वंशी बजाकर हमारा मन हर्षित करते थे, पर जब उस ब्रह्म के मुख ही नहीं है तो वह कैसे मक्खन खायेगा और कैसे होठों पर रखकर मधुर वंशी बजायेगा ? गौओं को कैसे मधुर शब्द में रँभाने को प्रेरित करेगा, क्योंकि कृष्ण जब वंशी बजाते थे तो गायें भी अपना मुख उठाकर कान खड़े करके उनको चारों ओर से घेर कर रँभाने लगती थीं, यह कार्य भला ब्रह्म से कैसे होगा ? इतना ही नहीं, कृष्ण तो ब्रज के गाढ़े साथी थे। सदा ब्रजवासियों की विपत्तियाँ दूर किया करते थे, पर जब तुम्हारा ब्रह्म कान और आँखों के

बिना है तो भला वह देखे-सुने बगैर ही इन सीधे-सादे ब्रजवासियों की विपत्ति कैसे दूर करेगा। ऐसी दशा में हे उद्धव ! भला बताओ तो सही कि तुम्हारा ऐसा निराला, अदृश्य कोई अर्थात् जिसके विषय में हमने कभी कुछ जाना ही नहीं, ऐसा ब्रह्म हमारे क्या काम आयेगा ? यहाँ एक अनोखे प्रकार से उद्धव का मजाक उड़ाया है कि तुम्हारा ऐसा विचित्र ब्रह्म तो अजायबघर में ही रखने योग्य है, और तो किसी काम में वह आने वाला है नहीं। व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

जोग कौ रमावै ..... कमेरी हैं।

उद्धव के अपनी रट लगाते रहने से गोपियाँ चिढ़कर कहती हैं कि हे उद्धव जी महाराज ! आपने बड़ी कृपा की, बस अब हमारे लिये और तो काम रहा ही नहीं है, योग रमाना अर्थात् जोगन बनकर राख लगाना रह गया है, या यहाँ समाधि लगाया करें, मन को एकाग्र करके ब्रह्म की ज्योति जलाये इस प्रकार दुःख और सुख की साधना से सर्वथा छुड़ा दी हैं। रत्नाकर के शब्दों में गोपियाँ कहती है कि न जाने क्यों बिना बुलाये ही तुमने सांस रोककर प्राणायाम साधने की इच्छा दिखेगी है अर्थात् बताई है। तात्पर्य यह है कि इस साधना की हमें कोई आवश्यकता थी ही नहीं, फिर अपने आप न जाने क्यों इसका प्रचार करना आरम्भ कर दिया है, तुम यमराज से डरते हो तो हम यमराज की कुछ जमा नहीं रखतीं, अर्थात् हमें यमराज का कुछ देना नहीं है, यदि हमें उसका कुछ देना हो तो डरें, पर जब हमारा यमराज से कोई लेन-देन नहीं तो उसका हमने क्या बिगाड़ा है जो हम उससे डरें। न हम देवताओं के राजा इन्द्र के ऐश्वर्य का ढेर चाहती है जो किसी की चापलूसी करें। हे उद्धव ! हम तुमसे स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि हम तुम्हारे किसी ब्रह्म के बाबा की नौकरानी नहीं हैं, हम तो केवल एक कृष्ण की दासी हैं। हमें न तुम्हारे ब्रह्म से किसी बात की इच्छा है, न हमारे से उसका कोई सम्बन्ध है, इसलिये उसकी बात हमसे कुछ मत कहो। हम तो एकमात्र कृष्ण का आदेश पालने वाली हैं। उससे सम्बन्ध रखने वाली कोई बात हो तो कहो।

वाही मुख ..... डरिबौ कहा।।

गोपियाँ कहती हैं कि हम तो श्रीकृष्ण के उसी सुन्दर मुख की किरणें चाहती हैं, सदा हमें उसी मुख की कान्ति प्रिय है, हमें तुम्हारे ब्रह्म की ज्योति का क्या करना है। रत्नाकर कवि कहते हैं कि चन्द्रमा की उपासना करने वालों को सूर्य की किरणों को नमस्कार करके जलने से क्या काम। जो शीतल और सुखदायक वस्तु का प्रेमी है उसे दाहक वस्तु से प्रेम क्यों होने,

लगा। जब ब्रह्मा के बनाये संयोगो मे सबको भोग रही हैं अर्थात् जो कुछ हमारे भाग्य में विधाता ने लिख दिया है, वह सब हम भोग रही हैं, इसके शोक में भगवान् की प्राप्ति के लिये योग की साधना क्या करें। जब हमारा मन ब्रज के चन्द्रमा श्रीकृष्ण की ओर चकोर बन गया है, फिर भला विरहाग्नि की चिनगारियों से क्या डरें। भाग्य में विधाता ने संयोग और वियोग दोनों लिखे थे, पहले संयोग भोगा, अब वियोग की दशा भोग रही हैं, ऐसी दशा में इस दुःख से बचने के लिये ब्रह्म की योग-साधना क्या करें। चकोर अंगारे चुगा करता है। जब कृष्ण चन्द्रमा है और मन को उनकी ओर लगा रहने वाला चकोर बना दिया तो भला विरह की चिनगारियों से डरना ही नही चाहिये। क्योंकि चकोर तो उन चिनगारियों को ही चुगेगा। इसलिये ब्रह्मज्ञान की हमें कोई आवश्यकता नही है। यही तात्पर्य है। निदर्शना अलंकार है।

नैननि के नीर ..... उदबासैं हम।

उद्धव को गोपियाँ उत्तर देती हैं कि तुम कहते हो कि इस मन में ब्रह्म की ज्योति बसाओ। पर थोड़ा यह तो विचार करो—**हम** जिसको आँसुओं के पानी और सात्त्विक भावजन्य रोमाञ्च रूपी खस के द्वारा ठण्डा करके ठण्डी हुआ करती है, रत्नाकर कवि वर्णन करते हैं कि गोपियाँ उद्धव को कह रही हैं कि भला कहो कि विरह की आग में तपने पर गम-गर्म विरह की श्वासों को हम जिसमें नहीं जाने देती। इस प्रकार जिस मन रूपी मन्दिर को हमने बड़े प्रयत्न से शीतल करके रखा है, आज भला तुम्हारे कहने मात्र से उसे गर्म करने के लिये ब्रह्म की ज्योति या दीप जलायें? पहले तो बड़े विश्वास के साथ इस शीतल मन रूपी मन्दिर में हमने कोमल शरीर वाले नन्द के पुत्र श्यामसुन्दर को बसाया और अब विश्वासघात करके इस मन को तपाकर उसे तंग करके इसमें से निकाल दें। अच्छी बात कही तुमने, समाज की मर्यादा है कि किसी के साथ विश्वासघात न करो। पर तुम हमें विश्वासघात करने को कहते हो। आज तक तो हमने स्वयं विरह की अग्नि में तपकर भी इस मन को सन्तप्त न होने दिया कि कहीं प्यारे नन्दकुमार को कष्ट न हो, पर इस नई ज्योति को जलाने से तो यह मन तप जायेगा। इस पद्य में कवि ने मकान को ठण्डा करने के लिये लोक में किये जाने वाले शीतलोपचार का कुशलता से वर्णन किया है। गर्मी के दिनों में मकानों के द्वारों पर खस की टट्टियाँ लगाते हैं और फुहारेदार नलों से हर समय उन्हें तर रखा जाता है। गर्म लूओं को भीतर जाने से रोका जाता है। गोपियों ने भी रोमाञ्च को

खम की टट्टी बनाया है, उसको आँसुओं के पानी से सींचती हैं। विरह के उष्ण विश्वास ही लुएँ है। इस प्रकार परिणामालंकार बनाया है।

कीजै ज्ञान ..... हरि हैं नहीं।

अब गोपियाँ उद्धव को चुनौती देती हैं कि तुम जो चाहे सो कर लो, पर हम कृष्ण को नहीं भुला सकतीं। कहती है कि हे उद्धव! इस ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश पहाड़ों की चोटियों पर जाकर करना, इस ब्रज भूमि में तुम्हारी यह कला तनिक भी काम नहीं देगी। जगलो में रहने वाले तपस्वी मुनियों के बीच में इस ज्ञान की चर्चा करो। ब्रज में तो सब प्रेमी रहते है, इस पर ज्ञान के उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होगा। सूर्य का उदय भी पर्वत शिखर पर ही होता है। रत्नाकर कहते है कि यह प्रेम का वृक्ष सूखने नहीं पायेगा और इसकी डालियाँ और पत्ते तिनके के समान भी नही घटेंगे। इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पायेगी, तात्पर्य यही है। हे उद्धव हमारी जिह्वा सुन्दर चातकी बन गई है, इसलिए अब यह पी-पी छोड़कर दूसरी रट नही लगायेगी। पपीहा 'पी-पी' की ही रट लगाया करता है, इसी प्रकार हमारी जीभ भी दूसरी रट नहीं लगायेगी। तुम लौट-पौट कर अर्थात् प्रयत्न करके बातों का बतङ्गड़ क्यो बनाते हो, तुम्हारे कहने से हमारे मन में से घनश्याम कभी नहीं जा सकते। परम्परित रूपक व निरङ्ग रूपक अलंकार है।

नेम व्रत सजम..... जाइगौ।

गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव! योग सम्बन्धी नियम, चान्द्रायण आदि व्रत और इन्द्रिय-दमन के अखण्ड आसन लगाकर हम जहाँ तक सम्भव होगा, जहाँ तक निगले जायेंगे, साँसों को घोट लेगी या रोक लेगी, अर्थात् योग के लिये जैसे खान-पान सम्बन्धी नियम, इन्द्रियों का दमन आदि आचारों का पालन अवश्यक होता है, वह भी कर लेंगी, अखण्ड पद्मासन लगाकर प्राणायाम भी साध लेगी। रत्नाकर कवि कहते हैं कि हम योगियों की भाँति इन रेशमी वस्त्रों को छोडकर मृगछाला ओढ लेंगी और धूल भी शरीर से मल लेंगी चाहे शरीर क्यों न छिल जाये। स्त्री का शरीर पुरुष के शरीर की अपेक्षा कोमल होता है, इसलिये धूलि रमाना उनके लिये अस्वाभाविक है, पर गोपियाँ कहती है कि चाहे हमारा अंग क्यों न छिल जाय पर हमें धूल लगाना भी स्वीकार है, हम पाँच अग्नियों की ज्वाला को भी सह लेंगी, जिन्हें देखकर तुम्हारा यह कठोर हृदय भी कांप जायगा। कठोर इसलिये कहा है कि स्त्रियों को जो ऐसा कठोर तप करने को कहता है, वह कठिन हृदय ही तो है, तुम्हारे कहने से हम ये सब कष्ट प्रसन्नता से सह लेंगी, पर निश्चय से यह

कह दो कि ऐसा करने से प्यारा कन्हैया हमें प्राप्त हो जायगा। तात्पर्य यह है कि उद्धव ने गोपियों को जिस प्रकार का योग-साधन करने का उपदेश दिया गोपियाँ कहती है किसी ब्रह्म जैसे की खातिर तो हमें यह साधना स्वीकार्य नहीं है, यह अवश्य है कि यदि ऐसा करने से कृष्ण मिल जायेगा तो हम चाहे ये हमारे लिये बहुत कठिन साधन हैं, जैसे भी बनेगा कर लेंगी। चाहे जैसे हो हमारा प्रयोजन इतना है कि हमें कृष्ण की प्राप्ति हो जाय। उसके लिये जो कुछ भी सामने आ पड़ेगा, कर लेंगी। पर कम-से-कम यह विश्वास तो दिला दो कि ऐसा करने से कन्हैया मिलेगा। अन्यथा हम नहीं करेंगी।

साधि लैहैं .... लाला हूँ।

गोपियाँ कहती हैं कि योग के कठिन विधानों अथवा नियमों को साध लेंगी, उनका अभ्यास कर लेंगी, कपड़े छोड़कर कमर में मृगछाला भी लपेट लेंगी. रत्नाकर कवि वर्णन करते हैं कि गोपियाँ उद्धव को उत्तर दे रही हैं कि हम तुम्हारे कहने के अनुसार शरीर में राख भी मल लेंगी, बड़ी उत्सुकता से धूप और सर्दी, गर्मी और सर्दी भी सह लेंगी। तात्पर्य यह है कि हठ योग के अनुसार जैसे गर्मियों में पञ्चाग्नि की साधना करनी होती है और सर्दियों में सर्दी सहनी पड़ती है, उनको भी बहुत कुछ सह लेंगी। हे उद्धव! तुमने तो कहने योग्य और न कहने योग्य सब कुछ कह लिया, अब यदि आज्ञा हो तो ये ब्रज की स्त्रियाँ भी तुम्हें कुछ उत्तर दें। जब तक इतनी साधना का फल प्यारे नन्दलाल कृष्ण भी नहीं मिले तो भला बताओ कि ब्रह्म को पाकर हम क्या करेंगी, अगर ब्रह्म मिल भी गया तो क्या मिला। ब्रह्म के मिलने से हमें क्या मिलेगा अर्थात् क्या लाभ होगा।

प्रथम भुराइ ..... कि धौं चेला हैं।

गोपियाँ कह रही हैं कि पहले तो कृष्ण ने हमें फुसलाकर प्यार के पाठ पढ़ाकर, प्रेम करना सिखाकर हमारे शरीर और मन विरह की अग्नि के तपेले या पानी गर्म करने के पात्र बना रखे है। अर्थात् पहले तो उन्होंने छल किया कि स्वयं हमें बहका-फुसलाकर प्रेम के फन्दे में डाल दिया, प्रेम करना सिखा दिया, जब हमें अपने वश में देखा तो अपने आप तो मथुरा भाग गये और हमें विरह की आग में जलने को छोड़ गये। इसके पश्चात् हे उद्धव! आप श्रीमान् जी आये हैं जो कि साँस घोटने के झगड़े या बखेड़े डाल रहे हैं, अर्थात् उन्होंने तो प्रेम करने का उपदेश दिया, आप साँस रोककर दम घोटने का बखेड़ा फैला रहे हो। उस पहले कष्ट को दूर करने के स्थान पर तुम अपने उपदेशों से उसे और बढ़ा रहे हो। व्यंग्य के रूप में कहती हैं कि वाह

क्या कहने, ऐसे-ऐसे अच्छे उपदेशदाताओं की भी इस ब्रज में अच्छी और नित्य रेल-पेल या भीड़-भाड़ मची रहती है। वे कृष्ण तो जो यहाँ प्रेम सिखाया करते थे, मथुरा में जाकर कुबड़ी का योग—सम्बन्ध रूपी योग विद्या पाकर योगी-भोगी और व्यंग्य के तौर पर योग साधना करने वाले फकीर बन गये हैं, तात्पर्य यह है कि हमें तो वे योग साधना-प्राणायाम का उपदेश भेज रहे हैं और आप कुबडी के योग अर्थात् समागम का आनन्द ले रहे हैं। वाह रे योगी जी ! बलिहारी है आपके योग को ! अब उद्धव को पूछती हैं कि हाँ श्रीमान् जी, आप तो बताइये कि आप भी जब उनके योग-सन्देश को लेकर आये हैं तो आप भी वैसे ही होंगे, पर यह समझाइये कि आप उनके गुरु जी हैं या चेला जी ? तात्पर्य उनका यही है कि जैसे गुरु वैसे चेला। तुम सब एक थैली के चट्टे-बट्टे हो। तुम्हारा कोई विश्वास नहीं।

दोनाचल ..... पठायो है।

गोपियाँ कहती हैं कि यह कोई द्रोणगिरि पर्वत के शिखर का टूटकर दूर बिखरा हुआ कण नहीं है जिसे छोटी अंगुली पर उठाकर पृथ्वी पर कल्याण और रक्षा का छत्र फैला दिया है। जैसे कृष्ण ने पहले बचपन में गोवर्धन को अंगुली पर उठाकर ब्रजवासियों की रक्षा की थी। वह पर्वत नहीं कि जिसे अपने स्थान से जिस किसी प्रकार से उठा लिया जा सके। इसलिये गोपियों का कहना यही है कि गोवर्धन पर्वत जैसे उठा लिया था, इस प्रेम को डिगाना ऐसा आसान मत समझो। रत्नाकर कहते हैं, गोपियों ने कहा कि देखो, यह पत्नी और पति अथवा उस नई श्रेष्ठ वधू कुबड़ी का कूबर नहीं है जिसे उन्होंने प्रेम भरे हाथों से थोड़ा छूकर ही दूर कर दिया। प्रसिद्ध है कि जब श्रीकृष्ण कंस को मारने के लिये उसके यज्ञ में गये थे, उन्हें मार्ग में कुब्जा मिली थी, जो कि कंस की दासी थी। उसने कृष्ण को शरीर में लेप करने के लिये चन्दन दिया। श्रीकृष्ण ने उसका एक पैर पाँव से दबाकर हाथ से ठुड्डी पकड़कर ऊपर को उठा दी, इस एक झटके से उसका कुबड़ापन नष्ट हो गया और वह एक सर्वांग सुन्दरी बाला बन गई। कंस को मारने के पश्चात् कृष्ण-बलराम उसका मनोरथ पूर्ण करने उसके यहाँ गये थे। गोपियों के लिये वह सौत बन गई है। इसीलिये वे कहती हैं कि यह कुबड़ी का कूबर नहीं है जिसे उन्होंने हाथ लगाकर ही दूर कर दिया है। यह तो नेत्रों का व्रत धारण करने वाली, रात दिन आँसू बहाकर क्षुधित नेत्र रखने वाली गोपियों का प्रेम रूपी पर्वत है, जिसके भार से अर्थात् जिसकी गुरुता से उनका अर्थात् श्रीकृष्ण का भी मनोभाव दब गया है, उन्होंने भी

इसकी गुरुता को मान लिया है ; वे यद्यपि पता लग गया है कि भ्रमर के समान प्रेम-वंचक ही हैं तथापि हमारे प्रेम रूपी पर्वत की गुरुता या महत्त्व को मानते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि सुजान अर्थात् भली प्रकार जानकर कृष्ण ने भी अर्थात् इस महत्त्व को जानकर भी न जाने क्या जानकर अर्थात् क्या विचारकर जान-बूझ कर अनजान बनकर उसकी गुरुता को भुलाकर इस प्रेमाचल को बातों में उड़ा देने के लिये तुम्हें भेज दिया है। नहीं जानते होते तो कोई आश्चर्य नहीं, पर जानते हुए भी ऐसा किया, इसका आश्चर्य है। रूपक अलंकार है।

सुन्दर सलोने ..... पठाये हो।

इसी बीच में तर्क द्वारा विचार कर गोपियाँ कहती हैं कि अहा! हम जान गईं, तुम प्यारे कृष्ण के भेजे हुए नहीं हो, बल्कि उस दुष्टा कुबड़ी के भेजे हुए हो। कृष्ण ऐसा निष्ठुर सन्देश नहीं दे सकते। कहती हैं कि तुम अत्यन्त सुबड़ अर्थात् सुगठित शरीर वाले, लावण्यपूर्ण अंगों वाले श्यामसुन्दर चतुर या जानकार कन्हैया के जो कि दया के खजाने हैं, दूत बनकर नहीं आये हो। नाम तो तुम लेते हो कि हम कृष्ण के दूत हैं, वे तो प्रेम के व्रत को निभाने वाले हैं, अतः यह उनका सन्देश कदापि नहीं हो सकता। इसलिये हमें शक होता है कि तुम झूठी बात बना रहे हो, तुम ज्ञान की श्रेष्ठता के बड़े अभिमान में फूले फिर रहे हो। इसलिये हमें ठगने के लिए तुमने कुछ प्रतिज्ञा कर रखी है, ऐसा प्रतीत होता है। ज्ञान पर बल देने वाले प्रेम की उपेक्षा करते हैं, इस प्रेम को असफल और बदनाम करने के लिये तुमने यह धोखेबाजी करनी सोची है। खेद है कि तुम रसिकों—प्रेमियों में सर्वश्रेष्ठ कृष्ण को बदनाम करते हो, पर हमारी समझ में तो उस दुष्टा कुबड़ी के भेजे हुए हो। उसने पहले तो कृष्ण को वहाँ रोक लिया और फिर सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि गोपियों की प्रेम पुकार को सुनकर कृष्ण फिर ब्रज को चल दें, इसलिये उसने हमारा प्रेम छुड़वाने के लिये तुम्हें यहाँ भेज दिया है, तुम भी झूठ बोलते हो कि मुझे कृष्ण ने भेजा है। पर यह सन्देश कृष्ण का नहीं हो सकता। यह तुम्हारी अपनी घड़न्त है।

आए हो पठाए ..... पांच ह्वै।

दूसरी गोपी कहती है कि मुझे विश्वास है कि हे उद्धव! तुम निश्चय ही उस छत्तीसे अर्थात् छत्तीस घाट का पानी पिए, महा चालाक, ठग के भेजे ही उसके अंश रूप बावन वीर बनकर आए हो। जादू वाले कहा करते हैं कि अमुक देवता के बावन वीर हैं जो कि उसके सारे कार्य करते हैं, तुम भी उस कृष्ण के वीर बनकर हमें भुलाने का कार्य करने आए हो। रत्नाकर कहते हैं कि ह

उद्धव ! तुम व्यर्थ ही गहरे जाल न फैला ओ, कितना ही आगे क्यों न बढ़ोगे पर सड़े बाईस ही रहोगे अर्थात् अपने उद्देश्य में सफल न होने पाओगे। यह तुम जाँचकर देख लो । प्रेम और योग में, योग साधना में छठा और आठवां योग पड़ा है, इनकी कुण्डली में छठा और आठवां योग पड़ा है अर्थात् ये छठे और आठवें स्थान पर पड़े है, इनका तो कभी मेल ही नहीं हो सकता । भला हीरा और कांच होकर भी दोनों एक कैसे हो सकते है। प्रेम और योग में इतना भेद है जितना कि हीरे और कांच में रहता है। इसीलिए योगरूपी कांच को लेकर प्रेम रूपी हीरे को गँवा देना यह तो मूर्खता होगी। तुम तीन गुण—सत्त्वर-जस्तम, पांच तत्त्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश गोपियों को बता रहे हो पर यह तुम्हारी तीन पाँच भी अर्थात् दलीलबाजी भी बेकार है। यह भी तीन-तेरह अर्थात् तितर-बितर हो जायगी। इसमें कवि ने मुहावरों का प्रयोग किया है।

चाहत निकारन..... हमारे में।

गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम उन कृष्ण को हमारे हृदय से निकालना चाहते हो सो इसका योग अर्थात् इसका उपाय और शक्ति तुम्हारे योग और मन्त्र में नहीं है। तुम हमारे हृदय से कृष्ण को योग साधना का प्रभाव डालकर नहीं निकाल सकते । रत्नाकर कवि वर्णन करते हैं कि गोपियां कह रही हैं कि देखो, किसी को अलग करने में महा अन्याय और नीति के विरुद्ध कार्य होता है। दो मिले हुओं को यदि एक-दूसरे से अलग किया जाय तो यह नीति के विरुद्ध माना जाता है, यह मैं पुकारकर कहती हूँ । अर्थात् तुम जो ऐसी चेष्टा कर रहे हो, यह सर्वथा अन्याय है। यहाँ एक भाव और रखा गया है कि यदि किसी को बलपूर्वक किसी दूसरे से पृथक् किया है तो अन्याय समझा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जिसे अलग करना चाहते हैं, वह दूना पास आता है। इसलिए तुम जैसे-जैसे कृष्ण को हमारे मन से निकालने के लिए योग-साधना आदि का उपदेश दोगे, उतना वे हमारे अन्तर में और स्थान बनायेंगे। इसलिए यदि उन्हें अलग करना ही है तो हम उपाय बतातीं हैं। इस अन्याय से बचने के लिए तुम उनको शीघ्रता से यहाँ लाकर हमारे हृदय से लगाओ। हमारी छाती से उन्हें लगाकर इसके पश्चात् सचेत होकर या सावधान होकर फिर मन में उन्हें पृथक् करने का उपाय सोचना। अलग करने के प्रयत्न से तो वे और निकट आते हैं, यदि पास लाओगे तो वे दूर जायेंगे। क्योंकि हमारे जीवन के मूल कारण, हमारे जीवन के आधार प्यारे

कन्हैया जैसे-जैसे हममे दूर बसते जा रहे है, तैसे तैसे वे हमारे मन रूपी दर्पण में प्रविष्ट होने जा रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मन से उन्हें निकालने का उपाय योग का उपदेश न होकर उनका संयोग कराना है। अब तो वे हमारे मन में बसे हैं, जब वे हमारे हृदय से लग जायेंगे, तब वे भीतर से बाहर आ जायेंगे। विचित्र अलंकार है।

हरि तन ..... सुनि पावै ना।

दूसरी गोपी कहती है कि उद्धव महाराज! अपना पोथी-पत्रा सँभालो और चल दो यहां से। ये योग और ब्रह्मज्ञान की कहानी समाप्त करो। वहीं बरसाने में राधा के कानों में यह बात पड गई तो आंसुओं की वह गंगा बहेगी कि तीनों लोक बह जायेंगे। इसलिए कुशल इसी में है कि अपनी इस कथा को रोक दो। कहती है कि श्री कृष्ण के शरीर की कान्ति के पात्र नेत्रों के अंचल से अर्थात् कोरों से विरह की तपन के कारण सहसा उमड़कर वेग से न दौड़ पड़े। रत्नाकर कहते है कि वह आँसुओं की गंगा सहसा ब्रह्म के द्रवित रूप गंगा की भांति तीनों लोकों के घरों में उत्पात न मचा दे। यह पल भर में कैलाश पर्वत के अभिमानपूर्ण शंकर को भी कहीं पाताल में जाने के लिए रस तल में न पहुँच दे। तुम्हारी यह कथा कहीं बरसाने (राधा के गाँव) में न फैल जाए और राधा कहीं इस वाणी या चर्चा को आधे कान से भी अर्थात् स्पष्ट रूप से तनिक भी न सुनले। अन्यथा उसके नेत्रों में श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति का जो जल भरा पडा है, वह आंसू बनकर बहने लगेगा। गंगा भी भगवान् के चरण रस मे उत्पन्न मानी जाती है। जैसे उस गंगा ने ब्रह्मा के कमण्डल मे निकलते ही त्रिभुवन में हलचल मचा दी थी, इसी प्रकार यह आंसुओं की गंगा भी उत्पात कर देगी। वह गंगा कैलाश के साथ शंकर को भी पाताल पहुँचाने को प्रस्तुत थी, पर शंकर का रूप देखकर मुग्ध हो गई और उनकी जटाओं में रम गई पर यह इस प्रकार बीच में नही रहेगी। यह तो अवश्य कैलाश के सहित शिव को पाताल में पहुँचाकर छोड़ेगी। इस प्रकार यह आँसुओं की गंगा यदि उमड़ चली तो फिर किसी से रुकेगी नहीं। अतः इसका न बहना ही अच्छा है। ऐसी कोई चर्चा मत चलाओ कि जिससे यह गंगा बह ही निकले। उपमा और व्यतिरेक अलंकार हैं।

आतुर न होहु ..... बहि जाइगी।

अन्य गोपिका कहती हैं कि हे उद्धव! तुमने ब्रह्म का उपदेश तो दिया, पर अभी उसकी परीक्षा शेष है। तुम अधिक विकल न होओ, थोड़ा धैर्य रखो

अब दीवाली आ रही है, यदि पहले की भाँति इन्द्र की कृपा पुनः प्राप्त हो गई अर्थात् पहले भी दीवाली के अवसर पर इन्द्र की पूजा रोकने से ही उसका कोप हुआ था। पर उस समय तो श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत द्वारा ब्रज की रक्षा कर ली थी पर अबकी बार श्री कृष्ण तो यहाँ है नहीं। सम्भव है, पुराना बदला लेने के लिए इन्द्र पुनः वैसी वर्षा कर दे। तब तुम जो यह ज्ञान दे रहे हो कि मनुष्य ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने पर साक्षात् ब्रह्म बन जाता है, इस ज्ञान की परीक्षा कर ली जायगी। यदि तुम्हारे ब्रह्म ने पर्वत को धारण करके तथा इन्द्र के इस नवीन कोप से ब्रज की रक्षा करके पूजा का नैवेद्य ग्रहण कर लिया तब तो तुम्हारी यह बात किसी प्रकार रह जायगी। अर्थात् तब तो हम मान लेंगे कि तुम्हारा कहना यथार्थ है कि ब्रह्म और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि वह कृष्ण जैसा काम कर लेगा। और यदि ऐसा नहीं किया अर्थात् वह गोवर्धन को उठाकर ब्रज की रक्षा न कर सका तो समझ लेना कि हमारी इस विरह की वेदना के साथ-साथ जो कि बहुत भारी या असह्य है, तुम्हारी सारी ब्रह्मज्ञता अर्थात् तुम्हारा ब्रह्मज्ञान भी बह जायेगा। तात्पर्य यह है कि यदि तुम्हारा ब्रह्म ब्रज की रक्षा न कर सका तो उस वर्षा में हम बह जायेंगी, जिससे हमारी विरह वेदना दूर हो जायगी। पर तुम्हारे ब्रह्म ज्ञान का सारा प्रभाव भी समाप्त हो जायगा। तुम भी बहोगे और तुम्हारा ब्रह्मज्ञान भी चला जायेगा और न उसका कोई महत्त्व ही रहेगा।

विकसित..... बरसाने में।

एक गोपी कहती है कि हे उद्धव! ब्रज की क्या दशा देखते हो, यहाँ तो सदा वसन्त रहता है। उसी का वर्णन कर रहा है कि वनों में वसन्त के आगमन से खिली हुई वसन्ती-लताओं का केसरी वर्ण गोपियों के विरह-वेदना के कारण पीले पड़े हुए अंगों में दिखाई देता है। वसन्त ऋतु आने पर वासन्ती लता विकसित होती है, यहाँ गोपियों के विरह वेदना से पीले पड़े शरीर ही वासन्ती बने हुए हैं। तुलसी के पौधों में जो मंजरी लगी है, वही समझो बगीचों के आमों में बौर आ गए हैं। उमंग में पड़कर गोपियाँ जो कृष्ण की पुकार लगाती हैं, यही कोयल की पुकार है। वसन्त में पतझड़ होता है यहाँ भी युवति वृन्द के अंगों का ह्रास होता जा रहा है। 'तन नि समूह' यहाँ श्लिष्ट है। एक अर्थ है तरुणियों का समूह, दूसरा अर्थ है वृक्षों का समूह। इस प्रकार युवतियों के अंगों का दुर्बल होना ही पतझड़ है। उनके लम्बे-लम्बे साँसों की अधिकता में दक्षिण की वायु है। गोपी कहती है कि हे उद्धव! इन विरुद्ध रहने वाले कामदेव रूपी ब्रह्मा की सृष्टि में क्या त्रुटि है, यहाँ तो बरसाने में

सदा वसन्त ही बना रहता है। तुम्हारे ब्रह्म के संसार में दोष हो सकते हैं। क्योंकि उसमें तो कभी गर्मी आती है, और कभी सर्दी पर यहां तो सदा वसन्त ऋतु रहती है, यह है भी कामदेव रूपी ब्रह्मा की सृष्टि। क्योंकि विरह की सृष्टि उसी ने की है। इस पद्य में रूपक और व्यतिरेक अलंकार हैं।

हाल कहा .....।

दूसरी गोपी कहती है कि हे उद्धव! तुम हमारा हाल क्या पूछते हो, सारी बालायें, सारी स्त्रियाँ विह्वल होकर बुरी दशा में पड़ी हैं। यदि तुम्हें यहाँ की दशा का पूर्ण ज्ञान करना है तो दो-एक दिन यहाँ रहकर सबकी दशा आँखों से देखकर तब जाना। हे उद्धव! यह विरह का रोग बहुत कठिन या असाध्य है, यह वर्णन के योग्य नहीं है, इसे तुम कोई सीधे अर्थात् सुखी का सन्देश मत मान लेना। यह जैसा-तैसा सन्देश नहीं है। यदि हमारे सरताज, हमारे प्यारे वे श्रीकृष्ण, हमारे देवता, जो अब मणि मुकुट धारण करने लगे हैं, वो यदि हमारी दशा कोई उचित अवसर देखकर पूछने लगें तो तुम अपनी ओर से कुछ न कहना केवल जो कुछ दशा तुम यहाँ देखकर जाओगे, वही लिखा देना। एक आह भर, हाय करके, आँखों में आँसू भरकर कुछ कहने की इच्छा करके फिर हिचकी लेकर रह जाना। इसी से हमारी दशा का ज्ञान हो जायगा। सूक्ष्म अलंकार है।

नन्द जसुदा ..... कहि दीजियो।

गोपियाँ कहती हैं, देखो उद्धव तुम कहीं ऐसा न हो कि मथुरा जाकर नन्द, यशोदा और राधा के दुःखों का विस्तार से वर्णन करने लग जाओ। क्योंकि ऐसा करने से हमारे प्यारे दुःखी होंगे। हम उन्हें दुःखी नहीं करना चाहतीं। इसलिए तुम वहाँ जाकर नन्द, यशोदा, गायों, ग्वालों और गोपियों की तथा वृषभानु के घर की (राधा से तात्पर्य है) भी बात मत चलाना। रत्नाकर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से निवेदन किया कि हम सब हा-हा खाकर अर्थात् गिड़गिड़ाकर विनती करती हैं कि यहाँ के प्रपंच या विस्तृत हाल से जरा भी मत पिघलना। अर्थात् यहाँ के लोगों की करुण दशा देखकर वहीं कुछ कहने बैठ जाओ, तो यह कुछ भी मत करना। यदि तुमने ऐसी कोई बात कही या यहाँ की दशा का स्मरण करके कोई लम्बी साँस ले ली तो उनकी आँखों में आँसू भर आयेंगे और उनका मुख भी उदास हो जायगा, हाय! यह तो बहुत दुःख की बात होगी। इसलिए ब्रज के दुःखों और कष्टों के कारण कोई लम्बी सांस मत लेना। हे उद्धव! तुम कृपा करके बस, इतना कहना कि हमारा नाम बताकर और गाँव बताकर केवल कृष्ण से हमारी राम-राम कह देना। कृष्ण को यह पता लग जाय कि किस गांव की किस

गोपी ने राम-राम कही है, इसलिए नाम और गाँव बताना तो आवश्यक है, विशेष कुछ नहीं कहना। क्योंकि हम कृष्ण का जी नहीं दुखाना चाहतीं। यहाँ कवि ने बहुत भावुकता से काम लिया है। यदि गोपियाँ कोई सन्देश देतीं तो उसमें वह मार्मिकता न आने पाती जो केवल इस 'राम-राम' में है। इसमें गोपियों के प्रेम की उज्ज्वलता लक्षित होती है कि वे आप दुःखी रह सकती हैं पर कृष्ण को दुःखी नहीं करना चाहतीं।

आये लौटि..... रतन लै।

उद्धव गोपियों से बिदा होकर मथुरा को लौट आये। उस समय उनकी मानसिक स्थिति का वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है कि गोपियों के इस प्रकार कहने पर उद्धव लज्जित होकर अपने नेत्र नीचे पृथ्वी की ओर झुकाये मथुरा को लौट आये। जब मनुष्य कहीं से लौटकर आता है तो साथ में कुछ लाता भी है; उद्धव ब्रज में क्या-क्या कर आये, यह बताते हैं कि सब सुखों के साधने या प्राप्ति का प्रेम-रूप सरल-सा उपाय लेकर आये। पहले वे ज्ञान की महत्ता स्वीकार करते थे, किन्तु अब मोक्ष आदि के सुख पाने का सरलतम उपाय शुद्ध और घनिष्ट प्रेम को मानने लगे। रत्नाकर कवि कहते हैं कि अपना महान् ज्ञानी होने के गुण का महत्त्व खोकर और ब्रह्म-ज्ञान अभिमान-रूपी दुर्ग का पूर्ण पतन अर्थात् पराजय लेकर लौटे। किसी दुर्ग का पराजित हो जाना उसका पतन कहा जाता है। नेत्रों में आंसू भरे हुए थे, हृदय में गोपियों के प्रेम और उनकी दशा को देखकर एक गहरी व्यथा और टीस भरे हुए, पराजय के कारण मन में भरी दीनता या ग्लानि और विकलता के बोझ से नम्रता लिए थे अर्थात् नीचे को झुके हुए थे। जिस पर बोझ रखा होता है, वह नीचे की ओर झुक ही जाता है। अपनी सुन्दर वैराग्य रूपी तूम्बी में प्रेम का रस भरकर और ज्ञान की गूदड़ी और झोली में गहरे अनुराग अर्थात् प्रेम का रत्न लेकर मथुरा लौटे। ज्ञानी के नाते पहले विरक्ति लिए थे, उसके स्थान पर तो अब प्रेमानन्द था, ज्ञान के स्थान पर अब प्रेम भावना ने अधिकार कर लिया था। इसीलिए पहले कह दिया कि वे ब्रजभूमि से पूर्ण पराजय लेकर लौटे थे। कृष्ण के पास से यही प्रण करके गये थे कि मैं गोपियों को अवश्य ज्ञान से प्रभावित कर दूंगा पर स्वयं ज्ञान के स्थान पर प्रेम को स्वीकार कर लिया था। रूपक अलंकार है।

प्रेम मद छाके..... पठाई है।

उद्धव की दशा का वर्णन कर रहा है कि प्रेम की मस्ती में तृप्त हुए उद्धव के पैर कहीं के कहीं पड़ रहे थे, सारे अंग थके हुए थे, नेत्रों में ढीलापन

या आलस्य शोभा पा रहा था। आँखें झूम-सी रही थीं। रत्नाकर कवि कहता है कि उद्धव इस प्रकार चकित से आ रहे थे, मानो किसी भूली हुई बात को स्मरण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। महानता होने के कारण वे वंशी और मक्खन को पृथ्वी पर नहीं रखते। लोक में ऐसा करते हैं कि हाथों में कुछ सामान हो और आँखों में पानी आ जाए या माथे पर पसीना हो तो सामान नीचे रखकर पसीना पोंछते हैं या आँसू पोंछ लेते हैं। पर उद्धव उन दोनों वस्तुओं का इतना सम्मान करते हैं कि उन्हें भूमि पर नहीं रखते। इसलिए आँखों में भरे हुए आँसुओं को बाँहों से अर्थात् बाँहों पर स्थित कपड़े से पोंछते हैं। हाथ से क्यों नहीं पोंछते कि एक हाथ में तो माता यशोदा का दिया हुआ सुन्दर मक्खन शोभा पा रहा है दूसरे में राधा की भेजी हुई वंशी ले रखी है। इस प्रकार लेखक ने अन्त में संगति कर दी है। माता यशोदा का प्यार से दिया हुआ मक्खन आदर के योग्य था ही, प्यारी राधा द्वारा दी गई मनमोहन की वंशी भी उपेक्षणीय नहीं थी। क्योंकि वह श्याम को बहुत प्यारी थी, दोनों वस्तु महत्त्वपूर्ण होने से भूमि पर रखने के योग्य न थी।

राजरे पठाये ..... की भार में।

उद्धव श्रीकृष्ण से अपना सारा वृत्तान्त वर्णित करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! मैं आपके भेजने पर अपने ज्ञान के गुण-गौरव के भाव से बहुत फूला हुआ योग का उपदेश देने के लिए ब्रज गया था। रत्नाकर के शब्दों में उद्धव कहते हैं कि वहाँ गया तो सही, परन्तु मेरी सारी चतुराई और वह बड़ी भारी ज्ञान के अभिमान की भावना उन गोपियों की अत्यन्त करुणाजनक दशा में न जाने कहाँ खो गई। तात्पर्य यह है कि उनकी दशा को देखकर मेरा सारा ज्ञान का अभिमान लुप्त हो गया। न जाने वह उन गोपियों के लम्बे-लम्बे साँसों में ऊपर को कहीं उड़ गई, अथवा कहीं उनकी आँसुओं की धारा में गल-गलकर बहकर लुप्त हो गई। पानी में अधिक समय तक पड़ी रहने से वस्तु गलकर घुल जाया करती है। अथवा उन गोपियों के दुःखों की फटी खाइयों में पड़कर भिचकर चूर-चूर हो गई, अथवा न जाने उनके विरह की अग्नि की ज्वाला में जलकर राख हो गई है। कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। सन्देह अलंकार है।

लैकैं पन ..... गांठी ते।

उद्धव कह रहा है कि आपने जो अमूल्य और सूक्ष्म अर्थात् रहस्यमय प्रण लेकर कि यदि ब्रजवासियों ने ब्रह्म ज्ञान को स्वीकार कर लिया तो हम भी प्रेम को छोड़कर तुम्हारे ब्रह्म ज्ञान को अपना लेंगे, इस प्रकार मुझे ब्रज में

भेजा, इसका मूल्य वहाँ सांठी के बराबर कुछ भी नहीं बैठा। नीरस या कम रस वाले पर कठोर गन्ने को साठी कहते हैं। ब्रह्म ज्ञान को सांठी के बराबर भी किसी ने नहीं गिना। सांठी के गन्ने में बहुत परिश्रम करने पर अर्थात् कठिनाई से चूसने के पश्चात् कुछ रस तो निकल ही आता है। पर इस ब्रह्म ज्ञान में इतनी साधना कर के पश्चात् भी कुछ आनन्द का अनुभव प्रतीत न हुआ। इसलिये तात्पर्य यही है कि इसका किसी ने मूल्य नहीं समझा। रत्नाकर कहते हैं कि मैंने स्थान-स्थान पर पुकारा, स्थान-स्थान पर गोपियों के समूहों में इसका उपदेश दिया, अपनी छोटी बुद्धि से मैं वृषभानु की ड्योढ़ी में भी घूमा। अर्थात् वहाँ राधा को भी मैंने यह सन्देश सुनाया, पर वहाँ भी इसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। जो कुछ ब्रह्म का तत्त्व आपने प्रदान किया था, वह सब खो गया। अब उसे आप ही स्वयं खोज लीजिये, हमें तो वह ढूँढकर भी खोजकर भी नहीं मिला। हम तो इसी चक्कर में अर्थात् रह-रहकर उसे खोजने में गाढ़ी दही से मट्ठा बन गये अर्थात् तब तो दृढ़ और ठोस विचार लेकर सारपूर्ण होकर गये थे, परन्तु वहाँ जाकर उस ब्रह्म ज्ञान का कोई आदर न हुआ, अतः सर्वथा निस्सार रह गये। जैसे दही को बिलो लिया जाय तो उसमें केवल लस्सी रह जाती है, मक्खन पृथक् हो जाता है, इसी प्रकार हमारा सार तो उस ब्रह्म की खोज में चला गया हम खाली के खाली रह गये। हम वहाँ की अर्थात् उस ब्रज भूमि की धूलि को अंग-अंग में भरकर अर्थात् मलकर ले आये हैं, जहाँ की भूमि में हमारा ज्ञान का अभिमान गाठ में से गिर गया था। देखा जाता है कि यदि कोई वस्तु रेती या मिट्टी में बिखर जाती है तो लोग उस समय चुगना कठिन जानकर उसने भाग की ऊपर की मिट्टी को ही उठा लेते हैं। उद्धव कहते हैं कि ब्रज भूमि में हमारा ब्रह्म ज्ञान तो समाप्त हो गया। हम प्रेमवश होकर वहाँ की धूलि को अपने शरीर में रमा लाये हैं।

सारे पद्य का तात्पर्य यह है कि हे भगवान आपने यह भेदभरी प्रतिज्ञा करके मुझे ब्रज की ओर भेजा। पर वहाँ ब्रह्म ज्ञान का किसी ने आदर नहीं किया। मैंने अनेक स्थानों पर गोपियों को सन्देश दिया, पर किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। गोपियों को धीरज देना हमारे वश की बात नहीं आप स्वयं उनको धैर्य दीजिये। हम तो स्वयं अपना अभिमान खो चुके। हमारा ज्ञान तो वहीं समाप्त हो गया, उसके स्थान पर हृदय में इतना प्रेम भर गया है कि वहाँ की धूलि को भी शरीर में रमा लाये हैं। विषम और समासोक्ति अलंकार है।

छावते कुटीर..... .....धरते नहीं।

उद्धव अब अपनी प्रेम भावना को प्रकट कर रहे हैं कि उन पर ब्र का क्या प्रभाव पड़ा और वे कितने अनुरक्त हुए। वे कहते हैं कि यदि में आपके आदेश का चाव न होता वहाँ का समाचार लाकर आपको आपकी आज्ञा का ध्यान न होता अथवा वहाँ की दशा सुनाकर चिताने का—ज्ञान कराने का कि गोपियों की कितनी करुण दशा है शीघ्र उन्हें दर्शन दीजिये, ऐसा मन में चाव न होता या इच्छा नहीं हो हम वहीं कही यमुना के सुन्दर तट पर एक कुटी डाल लेते, उस आपके विहार की रेत पर से कभी भी गमन नहीं करते। उसे छोड़कर कही जाते। रत्नाकर कवि कह रहे है कि हम (उद्धव) आपके प्रेम की अर्थात् रहस्यमय कहानियाँ छोड़कर कानों और जिह्वा पर और कोई स्वाद नहीं लाते। यदि मधुर शब्द सुनते तो आपकी प्रेम लीला औ कुछ जिह्वा को आनन्द देना होता तो वही प्रेम लीला ध्यान से सुनते रहते हुए गोपियों और ग्वाल बालकों अर्थात् गोपो, आपके बाल सखा वृद्ध गोपों के उपडते आँसुओं को देखकर उनसे प्रलय के आगमन की स देखकर भी हम नहीं घबराते। प्रलय के समय सम्पूर्ण विश्व जलमय है है। गोपियों के आँसुओ का सतत प्रवाह देखकर प्रलय की सम्भावन पर भी उसमे बहने या डरने की भावना तनिक भी नहीं लाते। इस यदि आपको दशा समझाने की उत्सुकता न होती तो ब्रज गाँव को हम इधर पैर नहीं रखते। इस पद्य मे उद्धव ने कृष्ण को सूचि दिया कि उनकी दशा इतनी शोचनीय है कि मुझे न चाहते हुए भी उसका ज्ञान आपको कराने आना पड़ा है। इसलिये आप जो ठीक वही कार्य करें।

॥ इति ॥